श्रीपरमात्मा मन

श्री

ध्यानकल्पतरु

PARADISE OF MEDITATI[illegible]

by

SHRI AMOLAKH RISHIJEE

अनेक सूत्रों व ग्रंथों का दोहन कर मुमुक्षु
जनोंकी इच्छा पूर्ण करने के लिये

बालब्रह्मचारी मुनी श्री अमोलख ऋषिजीने

बनाया और

स्वर्गस्थ पिताजी श्री अगर चंदजी

समदरीया के स्मरणार्थ

गुलाबचंद गणेश[illegible] लि० [illegible]

रेसिडेन्सी बाजार दक्षिण हैद्राबाद
फाटक आणि कंपनी के छापखाने में सिद्ध किया
प्रत २५० मुल्य शुद्ध मति मत प्रत १ [illegible]
वीर संवत २४२६ [illegible] 1922



अगरचंदजी समदरीया

पुज्य पिताजी श्रीअगरचदजी समदरिया की सेवामे.—

आप मारवाड जेतारणपट्टीके नानणा ग्रामके रहवासी बडे साव ओसवाल सेठ वृद्धीचदजीके पुत्र थे आपका जन्म सं. स १८९९ के आषाढमे हुवा था और पुज्य श्रीजयमल्जी महाराजके सम्प्रदायके मुनीराज श्रीहरखचदजी महाराज के पास सम्यक्त्व धारन कर समा यिक व्रतादि यथाशक्त ज्ञानका अभ्यासकर यथाशक्त धर्मक्रिया करते थे स. १९१३ मे वेपार निमित दक्षिण सीकद्रावादमें आके रहे थे और हजारो रुपका वेपार कर लक्ष्मीकी वृद्धी करतेभी धर्मको हियसे नही भूले थे, नित्य सामायिक, चतुर्दशीयादी तीथीके उप वास वगेरे धर्मक्रिया करते रहते थे स. १९६३ मे तपस्वीजी श्रीकेवलऋषिजी महाराज बाल्ब्रह्मचारी श्रीअमोलखऋषिजी महाराज और मुनी श्रीसुखाऋषिजी महाराज ठाण ३ मार्गका महापरिसह सहनकरही यहा पधारे, उस खुशाल्मि आ बधाइ देनेवाले सेवकको पचपोशाककी बक्षीस करी थी और दर्शन कर प्रसन्न हो यथाशक्त धर्म वृद्धी करी थी यो ससार और धर्मकार्यका साधन करते स. १९६६ के फागण वद १० को सवजीवोंसे खमत खामणा कर, सथारा किया, फिर दो घडीके बाद देहोत्सर्ग हुवा

मैंने आपके कुल्मे जन्म लिया और बचपनसे आपको धर्म प्रायण देख सदगुरुकी सगतमे कुछ ज्ञान प्राप्तकर कुछ आत्मसुधारा करने समर्थ बना यह आपहीका प्रशाद है इसलिये यह आभार पत्र आपकी सेवामे सर्पण कर कृतज्ञ होता हू

आपका बालक

गुलाबचंद गणेशमल बीजराज

सीकद्रावाद, (हैद्राबाद)

आभार पत्र

जहा वर्षोंसे इस धर्मको ऊँचा लाने वाला इस तरफ कोइ उत्साही नजर नहीं आता था और न कोइ साधू मुनीराज परीषह सहन करके इतनी दूर आनेका ख्याल फरमाते थे वहा हमारे शुभ भाग्योदय से तपस्वि जी महाराज श्री श्री १००८ श्री केवल रिखजी महाराज और गुणवान भाग्यवान पंडितराज बालब्रह्मचारी मुनी श्री श्री १००८ श्री अमोलख रिखजी महाराज के पधारने और बिराजनसे जैसा साधू मार्गी जैन धर्मका प्रकाश इस तरफ हुवा है, वो आम तौरसे रौशन है, और ज्ञान वृधि के जो जो उपाय होरहे है व किये जारहे हैं वोही साबित करते हैं कि इस तरफ कितना जैन धर्म का उद्योत हुवा है हमारे नसीब से ऐसे नर रत्न इधर हाथ लग गये हैं कि जिनके सबबसे हम साधु मार्गी जैन धर्मको शक्ति मुजब दिपानेका साहस कर रहे हैं, है यह तमाम उक्त गुणवान मुनि राजों का ही प्रताप है

चार कमान
हैद्राबाद

साधु मार्गी
श्री श्वेताम्बर स्थानक वासी
जैन धर्म के अनुयायी

सेवकः—पंनालाल

रामलाल कीमती

॥प्रस्तावना॥

मोक्ष कर्म क्षया देव, स सम्यग्ज्ञानत· समृत्त·॥
ध्यान साध्य मतं तद्धि, तस्मात द्धित मात्मन·॥

इस जगत् वासी सर्व जीव एकान्त सुखके अभिलापी हैं, वो एकान्त सुख मोक्ष स्थानमे है; इसी सववसे सर्व धर्मावलम्बियो अपनी धर्म करणीका फल-मोक्षकी प्राप्ती बतलाते है और अलग २ मोक्षके नामकी स्थापना कर, उसकी प्राप्तीके लिये क्षप करते हैं. जो सर्व दुःखसे रहित, एकान्त सुखस्थान मय मोक्षहै, वो सर्व कर्मोके क्षयसे होता है कर्म क्षय करनेका उपाय दर्शानें वाला सम्यक (समकित युक्त) ज्ञान है, वो सम्यक ज्ञान ध्यानसे होता है योग वाशिष्ट ग्रन्थमे कहा है कि "विचारं परमं ज्ञान" विचार-ध्यान है सोही परमोत्कृष्ट ज्ञान है इस लिये ध्यानही एकान्त सुख प्राप्त करनेका मुख्य हेतू है परम सुखार्थी जनोको ध्यानके स्वरूपको जाणनेकी विशेष आवश्यकता समझ, यह "ध्यानकल्पतरू" ग्रन्थ रचा गया है इसमे शुभाशुभ, और शुद्धाशुद्ध ध्यान का स्वरूप समझ अशुद्ध और अशुभसे बच, शुभ और शुद्ध ध्यान कर.

नेकी रीति सरलतासे दरशाई गइ है जिससे इसे पठन मनन कर मुमुक्षु जन अपना इष्टार्थ सिद्ध करने का उपाय जान सकेंगे.

"जयतीति जैन" जैन शब्द जिनसे हुवा है, जिन शब्दकी धातू 'जय' है, जय शब्दका अर्थ जीतना, पराजय करना या तावेमें-काबूमें करना ऐसा होता है जीत शत्रूकी की जाती है. अपने सच्चे कट्टे और जालिम शत्रू राग द्वेष को जीते व कमी करे, वोही सच्चे जैनी व जैन धर्मी हैं. राग द्वेष न होय ऐसे पवित्र धर्ममें मतभेद पडना, या क्लेश होना असंभव है, क्यों कि पानीसे वस्त्र जलता नहीं है. यह जैन धर्मका सत्य प्रभाव फक्त दो हजारही वर्ष पहले इस आर्य भूमीमे प्रत्यक्ष द्रष्टी आताथा; हजारों साधू-साध्वियो और लाखो श्रावक, श्राविकाओं तथा असंख्य सम्यक द्रष्टी जीव सब एक जिनेश्वर देवकेही अनुयायी थे इस सम्पके परम प्रभाव से, या रागद्वेष रहित वीतरागी प्रवृतीके प्रभाव से, यह 'जैन धर्म' सर्व धर्मों से उच्च अद्वितीय पदका धारक था, बडे सुरेन्द्र नरेन्द्र इसे मान्य करते थे; अपार ऋद्धि सिद्धीयों का त्याग कर जैन भिक्षुक (साधू) बनते थे, और वीतराग प्रव्रती से आत्मसाधन कर सर्व इष्ट कार्य सिद्ध करतेथे, मोक्ष प्राप्त कर-

ते थे जिसका मुख्य हेतू यह ही दिखता है, कि वो महात्मा सूत्रमें कहे मुजब ज्ञान ध्यान मे विशेष काल व्यतीत करते थे श्री उत्तराध्ययनजी सूत्रके २६ में अध्ययनमे साधूके दिन कृत्य और रात्री कृत्य का बयान है, वहां फरमाया हैकि—

पढमं पोरिसी सज्झायं, बीयं झाण झियायइ॥
तइयाए भिक्खायरि,चउत्थी भुजो विसज्झाय॥१२॥

अर्थात्—दिनके पहिले पहरमें सज्झाय (मूल सूलका पठन) दूसरे पहरमें ध्यान (सूत्रके अर्थका विचार) तीसरे पहरमें भिक्षाचरी (भिक्षावृतीसे निर्दोष अहार प्रमुख ग्रहणकर भोगवे)और चौथे पहरमे पुनः सज्झाय, यह दिनकृत्य. और रात्रीके पहले पहरमे सज्झाय, दूसरे मे ध्यान, और "तइया निद्दा मोक्खंतु" अर्थात् तीसरी पहरमें निद्रा से मुक्त होवे. और चौथे में पुनः सज्झाय करे! यो दिन रात्रीके ८ पहर ज्ञान ध्यान में व्यतीत करते थे॥

तैसेही श्रावकों के लिये भी इसी सूत्र के ५ में अध्ययन में फरमाया हैकि—

आगारी य सामाइ यंगाइ, सड्ढी काएण फासइ॥
पोसह दूहउ पक्खं, एगराइ न हावए ॥२३॥

' अर्थात्–ग्रस्था वास में रहा हुवा श्रावक त्रिकाल सामायिक वृत‡ शुद्ध श्रद्धा युक्त स्फर्शे (करे) और अष्टमी चतुर्दशी दोनो पक्ष(पक्खी) के पोपध वृत* करे, ऐसा सदाधर्म ध्यान करता रहे, परन्तु धर्म करणी में एक रत्तिकी भी हानी नही करे, काळ व्यर्थ नही गमावे.

गतकालमें श्रावकोंकोभी एक दिनमें कमसेकम एक प्रहर और महीनेमें छे दिन पुर्ण धर्म ध्यानमें गुजारतेथे, और धर्म ध्यान ध्यानेमें ऐसे मशगुल वन जातेथे कि उनके वस्त्र भूपण और प्राण तक भी कोइ हरण करलेता तो उन्हे भान नही रहताथा! देखिये! कुंड कोलीयाजी, कामदेवजी वगैरा श्रावकोंके। श्रावकही ऐसे थे तो फिर मुनीराजोंकी तो कहना ही क्या!

जब वे ध्यान से निवृत हो अन्य कार्य मे लगते थे, तोभी ध्यान मे किया हुवा निश्चय उनके अतःकरणमें रमण करता था, जिससे अन्य स्वभाव–राग-द्वेष-विषय कषाय आदी दुर्गुणो को उनके हृदय में प्रवेश करने

---

‡ समभावमें प्रवृती करनेका वृत सामायिक वृत त्रिकाल करतेथे और

*ज्ञानादि गुणोंको पोषणेका पोपध वृत एक महीनेंमें छे करतेथे.

का अवकाशही नहीं मिलताथा, अपने कार्यसे निवृत अन्य के छिद्र दुर्गुण वगैरा गवेक्षण करने का परपच वी कथा वगैरा मे व्यर्थ काल गमाने की फुरसत ही नहीं पा ते थे, ज्ञान ध्यान सुकृत्यो मे निरंतर मग्न रहतेथे, जिस से जिन्ह का चित सदा शांत और स्थिर रहताथा जैन जैसे निर्दोष और पूंण पवित्र धर्म को पूर्ण प्रकाश मय- चनारक्खाथा। और उनके लिये मोक्षद्वार हमेशा खुला था अब देखीये अभीके जैन साधू श्रावकों की तर्फ वहू तसे तो ध्यानमें समझतेही नहीं हैं. कितनेक ध्यान और काउत्सर्गको एक ही कहते हैं, परंतु जो एक होता तो बारह प्रकारके तपमें अलग २ क्यो कहा? काउत्सर्ग तो काया को उत्सर्ग (उपसर्ग) के सन्मुख करनेका और ध्यान विचार करनेका नाम है

ध्यान के गुण पूरे नहीं जाणने से इस वक्त प्रा य. ध्यान नष्ट जैसाही होरहाहै जिससे वृत धारीयों को फुरसत मिली, स्वछन्द वृतीहो विकथादि अनेक परपचमे फसे, वैरागी के सरागी बने और धर्म के नाम से अनेक झगडे खडेकर मन मुख्तियार बन बठे अ- पना २ पक्ष बान्ध लिया, यह मेरा अच्छा और वह तेरा बुरा, मोक्ष का इजारा हमारे पन्थ वाले को ही है, अन्य सब मिथ्यात्वी हैं, हमारे को छोड अन्य को अ-

हार आदी देने, में तथा नमस्कार सन्मान करने भेंसम्य क्त्व का नाश होता है! अनंत संसार की वृधी होती है!! —वगैरा उपदेश कर वाडे वान्ध लिये?

देखिये वन्धूओं! राग द्वेष जीतने वाले जिन देवके अनुयायि यो का उपदेश? ऐसी २ विपरीत परूपणासे इस शुद्ध जैन मतके अनेक मतांतर होगये है, और एकेक की कटनी—सत्यानाशी का उपाय का विचार ध्यानमें करने में ही परम धर्म समझने लगे, जो कूयुक्तियों कर विवाद में जीते उसेही सच्चा धर्मी जान ने लगे, जो जरा संस्कृतादि भाषा वोलने लगे और कहानीयों रागणीयों कर प्रपदा को हॅसादे वोही पण्डित राज कहलाये, जो तरतम योग से साधू वने वोही चौथे आरेकी वानगी वजे, जो ज्यूनी मुहपति पूजणी रक्खी या टीले टमके किये वोही श्रावकजी कहलाये, और विषय कषाय के पोषणेसे ही धर्म माना! इत्यादी प्रत्यक्ष प्रवृतती हुइ इन क्षुलक वातों परसे ही विचारीये कि जैनी इन को कहना क्या? लाला रण जीत सिहजीने कहाहै—

जैन धर्म शुद्ध पाय कें, वरते विषय कषाय॥
यह अचंभाहो रहा, जलमें लागी लाय॥ १

उज्जैन की सिप्रा नदीके पाणीमे भैसे(पाडे)जल

(वल) मरे? ऐसा आश्चर्य जनक वनाव वन ने का सव-
व भैंसे की पीठ पर लदेहुवे चूनेही का था !! तैसे ही
जैन धर्म में रहे हुये जीव नित्य हीन दिशा को प्राप्त
होते हैं, इसका सवव उनके हृदय मे रहा हुवा विषय
कषाय इर्षा रूप क्षार ही है !! सखेदाश्चर्य है की जैन
धर्म जैसा सुधा सिन्धू में गोता खा कर ही, विषय
कषाय इर्षे रूप लाय (आग) शांत नहुइ !
हा इति खेद ! विषय कषाय राग द्वेष
इर्षे रूप लाय बुजणे का शांत करने का उपाय
ध्यानही है, कि जिसका प्रभाव प्राचीन कालमे प्रत्यक्ष
था उसे लुप्त जैसा हुवा देख, ध्यानका स्वरूप सरल-
ता से समझा ने वाला एक ग्रन्थ अलगही होने की
आवश्कता जान यह ध्यानकल्पतरू नामक ग्रन्थ श्री
उववाइ जी सूत्र, श्री उत्तरा ध्येनजी" सूत्र, श्रीसुयडांग
जी सूत्र श्री आचाराङ्गजी सूत्र और ज्ञानार्णव, द्रव्यस
ग्रह ग्रन्थ तथा कितेक थोकडो के आधासे स्व-मत्या
नुसार वनाके श्री जैन धर्मानुयायी यो को समर्पण-
करता हूं और चहाताहूंकि ध्यानकल्पतरू की शीत-
ल छाय में रमण कर, अशुभ और अशुद्ध ध्यान मे
निवृत शुभ और शुद्ध ध्यान मे प्रवृत न कर सच्चे जैनी
वन जैन धर्म का पुनरोद्धार करोगे ! और इच्छितार्थ सि
द्ध करने समर्थ वनोगे—विशेषु किमाधिक

धर्मो न्नती कांक्षी—अमोल ऋषि

"आवश्यकीय सुचना"

ध्यान नाम विचार का है, विचार अनेक तरह के होते हैं उन सब विचारों का संग्रह कर श्री सर्वज्ञने चार✻हिस्से किये है, उसके बाहिर एकभी विचार नही है. येही युक्ती शास्त्रानुसार व कुछ प्रज्ञानुसार इस "ध्यान कल्पतरु" ग्रन्थमे वापरी है. अधमसे अधम विचरानिगोदमे ले जाने वाला औरउच्चसे उच्च ध्यान-मोक्षमे ले जानेवाला सर्वका संग्रह इसमें आगयाहै, संसारमे ऐसा कोइभी कार्य नही है किजो बीन विचार (बिन ध्यान) होवे अर्थात् सर्व कार्यके अव्वल विचारही है,बिन विचार किसीभी कार्यका होना असंभवहै. कोइक अकस्मात् होजाय उसकी बात अलग.

संसारके शुभा शुभ सर्व विचार का चित्र दर्शना येही इस ग्रन्थ का मुख्य प्रयोजन है, इस लिये आर्त और रौद्र ध्यान के पेटेमेससारमे वर्तमान वरती हुई बहूतसी बातों का समावेश हुवाहै, जिसे पढ कर पाठक गणो को ऐसा विचार नहीं करना कि ग्रन्थ कर्ता ने सर्व संसार कार्य की उथापना करदी. मेरेउथापन करने से कुछ संसार कार्य बन्ध पडता नहीं है. यह तो अनादी सिलसिला महान सर्वज्ञ उपदेशके

✻ जो उप शाखा मे शुभ और शुद्ध ध्यान चार अलग लिये है, परन्तु उनका भी धर्म और शुक्ल ध्या मे समवेश होजाता हैं

ही नही अटका सके तो मे बिचारा कौनसी गिनती-मे, परन्तु जो कार्यारंभ किया उसका यथातथ्य स्वरूप यथा बुधि दर्शानायह ग्रन्थ कारकका मुख्य प्रयोजनहै, इसी सबब संसारमें प्रवृतती हुई बातोंका चित्रइसमे आया है.

यहतो निश्चय समझियेकि अव्वलके दोनो ध्यान एकांत निषेधकही हे, वो छूटने सेही आत्मा सुखानुभव कर शक्तीहे परन्तु ऐसा नही समझियेकि खोटे ध्यानी सर्व संसारी जन हैं सो सबकी कुगती होगी हां यहतो निश्चय हे कि खोटे ध्यानसे कुगती हीहोती है परन्तु ऐसा नहीहे की सर्व संसारीयो एकान्त कु-ध्यान केही ध्याने वाले हे, क्योकी बहुतसे ससारी वक्तसर धर्म ध्यानभी ध्याते हैं और अच्छे धर्म कृत्यभी करते हे जिससे शुभाशुभ फलकी मिश्रता होनेसे उनको सुखमिश्र देव गतीकी प्राप्ती होतीहै, वहां भी धर्म ध्यान ध्यानेसे पुनःउच्च मनुष्य गतीको प्राप्त हो फिर शुभ ध्यानकी विषेशता होनेसे शुद्ध ध्यानको प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे

अमोलख ऋषि

ग्रन्थ कर्ताका संक्षिप्त जीवन चरित्र वगैरा.

मालव देशके भोपाल शेहरमें औसवाल वडे साथ कॉसटीया गोत्रकेसेठ केवलचंदजी रहतेथे, उनकी पत्नी हुलासा वाइके कूंखसे सवंत १९३३ के भाद्रव वद्य ४ को पुत्र हुवा उसका 'अमोलख' नाम दिया. और एक पुत्र हुये वाद हुलासा वाइका देहान्त होगया, फिर केवलचन्दजीने सं १९४३ के चेतमे दिक्षा धारण कर पुज्य श्री काहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के महंत मुनी श्री खूबाऋषिजी महाराजके शिष्य हुये. औरज्ञानाभ्यास कर एकउपवाससे एक्कीस उपवास तकलड बन्ध और ३०–३१–४१–५१–६१–६३–७१ ८१–८३–९१–१०१–१११–और १२१ यहतपस्यातो छाछके आगरसे, और छे महीनेतक एकांतर उपवास वगैरे वहोतसी करीहे तथ पूर्व, पंजाव, मालवा, गुजरात, मेवाड, मारवाड दक्षिण वगैरा वहुत देश स्फर्शे हैं.

सं०१९४४ के फागनमे महात्मा श्री तिलोका ऋषीजि महाराजके पाटवी शिष्यश्री रत्न ऋषिजी महाराजके साथ श्री केवल ऋषिजी इच्छा वर (भोपाल) पधारे उसवक्त वहांसे दो कोश खेडी ग्राममें अमोलख चद अपने मामाके पासथे, मुनीआगम सुन दर्शनार्थ गये

और वैरागी पिता को देख वैरागी वने. और तुर्त फा ल्गुन वद्य २को दिक्षा धारन कर पिताके साथ हुये, पुज्य श्री खुव ऋपिजी महाराजके पास लाये तपस्वीजी श्री केवल ऋपिजीने संसार सम्बन्धके कारणसे श्री अमोल ख ऋपिजीको अपने शिष्य वनानेकी नाखुशी दरशाइ ,त वपुज्य श्रीके जेष्ट शिष्य आर्यमुनी श्री चेना ऋपिजी महा राजके शिष्य अमोलख ऋपिको वनाये, थोडेहीकाल वा द श्री चेना ऋपिजी और पुज्य श्री खुवाऋपिजी का स्वर्ग वास हुवा और फिर थोडे ही काल वाद तपस्वी जी- श्री केवल ऋपिजी एकले विहारी हुवे तव नजीकमें वि चरते श्री भेरूऋपी जी के साथ श्री अमोलखऋपिवि- चरे, उसवक्त (१९४८ फालगुनमें) औस वाल ज्ञाती के एक पन्नालालजी ग्रस्थने १८ वर्ष की वयमे दिक्षा धारन करश्री अमोलख ऋपिजीके शिष्य वनेथे उनको- साथ ले जावरे आये, वहा श्री— कृपा रामजी महारा ज के शिष्य श्री रूपचंदजी महाराज गुरू वियोग से- दुःखी हो रहेथे उनको संतोष ने श्री अमोलख ऋपि जी ने अपने शिष्य पन्ना ऋपिजी को समरपण किये देखीये एक येह भी उदारता ? फिर दो वर्ष वाद दि क्षा दाता श्री रत्न ऋपिजी महाराज का मुकावला होते श्री अमोलख ऋपिजी उनके साथ विचरने लगे

इन महा पुरूषोने श्री अमोलख ऋषिजी को जैनमार्ग दीपाने लायक जान तहामनसे ज्ञानका अभ्यास कराया सूत्रो की रहस्य समझाइ, जिस प्रसाद से अमोलख ऋषिजीने गद्य पद्यमें अनेक ग्रन्थ बनाये, और बना रहे हैं, और अनेक स्वमति परमति को समझाये और समझा रहे, हैं श्री अमोलख ऋषिजीके सवत १९५६ के फागुन मे ओसवालसंचेतीज्ञात्ती के मोती ऋषिजी नामके शिष्य हुवेथे. सं१९६०का चतुरमास श्री अमोलख ऋषिजीका घोड नदीथा (तब जैन तत्व प्रकाश नामे बडा ग्रन्थ शिर्फ ३ महीनेमें रचाथा) उसवक्त तपस्वी जी श्री केवल ऋषिजीका चतुर्मास अहमदनगरथा. चौमासे उतरे वाद समागम हुवा. तब तपस्वीजी कहने लगेकी मेरी वृद्ध अवस्था हुइहै, मुजे संयमका सहाय देना तेराकृतव्यहै तब अमोलख ऋषिजी स्वशिष्य सहित श्री तपस्वी जी के साथ विचरने लगे सं१९६१ का चतुर्मास श्री सिघके आग्राह से बंबइ हनुमान गली) मे कियायहां जैन स्थानक वासी रत्न चिन्तामणी मित्रमंडलकी स्थापना हुइ, और इस मंडलकी तर्फसे महाराज श्रीअमोलख ऋषिजी की बनाइ हुइ "जैनामुल्य सुधा" नाम छोटासी पुस्तक प्रसिद्ध हुइ यहां मोती ऋषिजी स्वर्गस्थ हुये उस वक्त हमारे पिताजी श्री पन्नालालजी

कीमती कार्यार्थ ववंइ गयथे, वहां महाराज श्री जीके दर्शन कर वीनंती करी के दक्षिण हैद्रावाद में जैनीयो के घर तो वहूत हे, परन्तु मुनीराज का आगम विलकुल नहीं है, जो आप पधारोगे तो वडा उपकार होगा. यह वात महाराज श्रीको पसंद आइ चर्तुमास वाद ववइ से विहार कर इगत पुरी पधारे, चर्तुमास किया, और यहां के श्रावक मूल चंदजी टॉटीया वगेरे ने महाराज श्री की वनाइ 'धर्म तत्व संग्रह' नामे ग्रन्थ की १५०० प्रतों छपवा के अमुल्य भेटदी. वहां से विहार कर वे जापुर(औरगावाद)आये यहां के श्रावक भीखम चंदजी संचेती ने "धर्म तत्व संग्रह" की गुजरातीमें १२०० प्रतो छपवाके अमुल्यभेट दी वहां सें जालणे पधारे और आगे विहार करने लगे तव सव श्रावको ने मना किया की इधर आगे कोइ साधु गये नहींहे, आप पधारोगे तो वडी तकलीप पावोगे परन्तु श्री वीर परमात्मा के वीर मुनीवरो आगे के आगे वढतेही गये और क्षुधा त्रषादी अनेक आति कठिण पीरसह सहन करते, अनेको को नवे भेपसे अश्चर्य उपज्याते अपुर्व धर्म का सत्य स्वरूप वताते स १९६३ जेष्ट सुदी१२ शनीवार को चार कमान पावन क[illegible] राम नारायणजीके दिये . [illegible] चेमे

इन महा पुरूषोने श्री अमोलख ऋषिजी को जैनमार्ग दीपाने लायक जान तहामनसे ज्ञानका अभ्यास कराया सूत्रों की रहस्य समझाइ, जिस प्रसाद से अमोलख ऋषिजीने गद्य पद्यमें अनेक ग्रन्थ वनाये, और वना रहे हैं, और अनेक स्वमति परमति को समझाये और-समझा रहे, हैं श्री अमोलख ऋषिजीके सवंत १९५६ के फागुन में ओसवालसंचेतीज्ञात्ती के मोती ऋषिजी नामके शिष्य हुवेथे. सं१९६०का चतुरमास श्री अमोलख ऋषिजीका घोड नदीथा (तव जैन तत्व प्रकाश नामे वडा ग्रन्थ शिर्फ ३ महीनेमे रचाथा) उसवक्त तपस्वी जी श्री केवल ऋषिजीका चतुर्मास अहमदनगरथा. चौमासे उतरे वाद समागम हुवा. तव तपस्वीजी कहने लगेकी मेरी वृद्ध अवस्था हुइहै, मुजे संयमका सहाय देना तेराकृतव्यहै तव अमोलख ऋषिजी श्वशिष्य सहित श्री तपस्वी जी के साथ विचरने लगे सं१९६१ का चतुर्मास श्री सिंघके अग्राह से वंवइ हनुमान गली) मे किया यहा जैन स्थानक वासी रत्न चिन्तामणी मित्रमंडलकी स्थापना हुइ, और इस मंडलकी तर्फसे महाराज श्रीअमोलख ऋषिजी की वनाइ हुइ "जैनामुल्य सुधा" नाम छोटासी पुस्तक प्रसिद्ध हुइ. यहां मोती ऋषिजी स्वर्गस्थ हुये उस वक्त हमारे पिताजी श्री पन्नालालजी,

कीमती कार्यार्थ ववंइ गयथे, वहां महाराज श्री जीके दर्शन कर वीनंती करी के दक्षिण हैद्रावाद मे जैनीयो के घर तो वहूत है, परन्तु मुनीराज का आगम विलकुल नहीं है, जो आप पधारोगे तो वडा उपकार होगा यह वात महाराज श्रीको पसंद आइ चतुंमास वाद ववइ से विहार कर इगत पुरी पधारे, चर्तुमास किया, और यहां के श्रावक मूल चदजी टॉटीया वगैरे ने महाराज श्री की वनाइ 'धर्म तत्व संग्रह' नामे ग्रन्थ की १५०० प्रतों छपवा के अमुल्य भेटदी. वहां से विहार कर वे जापुर(औरंगावाद)आये यहां के श्रावक खीखम चदजी संचेती ने 'धर्म तत्व संग्रह" की गुजरातीमे १२०० प्र-तो छपवाके अमुल्यभेट दी वहां से जालणे पधारे औ र आगे विहार करने लगे तव सव श्रावकों ने मना कि या की इधर आगे कोइ साधु गये नयीहै, आप पधा रोगे तो वडी तकलीप पावोगे. परन्तु श्री वीर परमा त्मा के वीर मुनीवरो आगे के आगे वढतेही गये औ र क्षुधा त्रपादी अनेक आति कठिण पीरसह सहन क रते, अनेको को नवे भेपसे अश्चर्य उपज्याते अपुर्व धर्म का सत्य स्वरूप वताते सं. १९६३जेष्ट सुदी१२ शनीवार को चार कमान पावन करी लाला नेनरामजी राम नारायणजीके दिये मकानमे चतुर्मास किया चौमासेमे

श्री सुखा ऋषिजी बीमार पडके फाल्गुन मासमे स्वर्गस्थ हुवे. आगे उष्ण ऋतू और वीकट मार्गके सवबसे श्रावको ने विहार नहीं करने दिया. दूसरे चातुर्मासमे श्री केवल ऋषिजी महाराज उपरा उपरी विमारीयों भोगवनेसे और वृध अवस्थाके कारण से विहार न होता देख, श्रावकोनेस्थिर वास रहनेकी विनंती करी हमारे सुभग्योदयसे महाराजजी श्री ठाणे २ सातामें विराजमान हैं. महाराज श्रीके सरल जमाने अनुसार चारों अनुयोगरूप सद्बोध श्रवणसे यहां धार्मिक और व्यवहारिकअनेक सुधारे हुवे है और हो रहे है.

यहां के लाला नेतरामजी रामनारायणजी ने "जैनतत्व प्रकाश" हजार पृष्टके बडे ग्रंथकी १२५० प्रत छपवाके अमुल्य भेट दी. नित्य स्मरणकी छोटी पुस्तककी ५०० प्रत अमुल्य भेट दी. तैसे पन्नालालजी जमनालालजी रामलालकीमतीने 'तत्वनिर्णय'की २००० प्रत और जैन 'सुबोधहीरावली'की १००० प्रत छापवा के अमुल्य भेट दी. तैसेही हैद्राबाद ज्ञानवृद्धिक खाते की तर्फसे 'केवलानंद छन्दावली' की तीन अवृत्तीकी ३५०० प्रत अमुल्य भेट दी. तैसेही उक्त लालाजी कीमतीजी और यादगीरी (हैद्राबाद) वाले सेठ नवलमलजी सुरजमलजी, तथा सोरापुर वेन्डरवाले चोथम

लजी सुलतानमलजीने 'भीमसेण हरीसेणकी' ढालकी १००० प्रत छपवाके अमुल्य भेट दी. तैसेही हैद्रावाद ज्ञान वृद्धिक खाताकी तर्फसे भक्तामरस्तोत्रकी १२०० प्रत छपवाके अमुल्य भेट दी. तैसेही सिकंदरावाद(हेद्रावाद) गुलावचंदजी गणेशमलजी समदरीया तर्फसे श्री गणेशवोधकी १००० प्रत तथारामलाल पनालाल कीमतीजीकी तर्फसे२५० प्रत यो१२५०प्रत छपवाकेअमुल्य भेट दी तैसेही जैन शिशु वोधनीकी ५०० प्रत ज्ञान वृधिक खातेका तर्फसे तैसेही लालजी कीमतीजी और घोड नदी (पुन) वाले कुंदन मलजी घुमर मलजी वापणा और सिकद्रावाद के गुलावचंदजी गणेशमलजी समदरीकी तर्फसे यह' ध्यानकल्पतरू"ग्रन्थ की१०००प्रतो अमुल्य भेट दीजातीहे. यों आजतक सुम्मार छ टीवडी १२५०० पुस्तकों तो अमुल्य भेटदी गइ हे. और सिकद्रावादके सेठ सागर मलजी गिरधारीलालजी तथा सहेसमलजी जुगराजजी की तर्फ से 'जैन तत्वप्रकाश" की दूसरी आवृती की१०००प्रत और अन्य२ग्रन्थों की तर्फ से १००० प्रतयों जैन तत्व प्रकाशकी २०००प्रतो (छपरही है) और सिकंद्रावाद के शिवराजजी रूगनाथ मलजी की तर्फसे मदन चरित्र ५७ खंड (१०८ ढाल) की १०००प्रते, और

तिर्थंकर सह श्री (९०९ तिर्थकरोके नाम की जिनवंदना) की १००० प्रतों, कीमती जी की तर्फसे और बारकस (हैद्रावाद) वाले बुद्धमलजी जवारमलजी मानमलजी दुगडकी तर्फसे और यादगिर (हैद्रावाद)वाले नवलमलजी सुरजमलजी तर्फसे जिनदास सुगणी चरित्र ४ खंड ४० ढाल १००० प्रतो और सिंहलकुंवरकी ढाल तथा भुवन सुन्दरीकी ढाल (दोनोकी १ पुस्तक) की १००० प्रतो यों सर्व ६००० पुस्तको छपवाके अमुल्य भेट देने का विचार हुवा हैं. यह सब प्रसाद महाराज श्री काही है. ग्रन्थ कर्ता को तो कोट्यान धन्यवाद हे ही; परंतु जो सन्मार्ग में द्रव्य व्यय कर सुज्ञान का लाभ अमुल्य अपणें स्वधर्मी भाइ को देते हैं उन्हे भी धन्यवाद हैं. यह अनुकरण सब साधूजी श्रावकजी करेंगे ऐसी नम्र अर्ज कर प्रस्तावनाकी समापती करता हूं.

गुणानुरागी—रामलाल पन्नालाल कीमती.

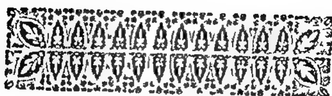
ध्यानकल्पतरूकी अनुक्रमणिका

पृष्ठ	ओली	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	ओली	अशुद्ध	शुद्ध
७६	नोट	दय	दहा	१३९	१५	इत्न	इतना
८५	१२	तज्ञान	प्रतिज्ञान	,,	२१	पय	पाये
,,	१७	पचरक	पचक्व	१४०	१२	तमश	तामश
,,	१९	प्रत	प्रति	१४१	१९	सुजें	मुजे
८८	१०	पातल	पाताल	१४३	५	मत्र	मत्रि
८९	७	सिनाय	सिवाय	१४४	२	कुब्ज	कुब्ज
९१	९	कापू	कापून	१४५	११	वत्क	वक्त
९२	२०	अपज्ञा	अपक्षा	१४७	२०	ल्वेंगे	लेवेंगे
९७	११	अशुनि	अशुची	१४८	२	असुरत्र	असुग्त्त
९९	११	४४३	३४३	१५०	२१	भोग	भोगवने
१००	२	मूर्न	मर्त	,,	१८	बचार	बेचारे
१०३	१२	स्पर्झेंद्री	स्पर्श्येंद्री	१५१	७	आपय	अपाय
१०८	५	दें	०	१५३	१९	पुम्नक	पुस्तक
,,	१८	उपद्रव	उपद्रव	१५४	९	नामेन	नमाने
१०९	नोट	माहे	मोह	,,	२१	मुख	मुखसे
	३	५ सत्य (सा	सच्चा भी नहीं	१५६	७	हिंस्र	हिंशा
		चाभी नहीं,	झुटाभी नहीं)	१५७	नोट	भवती	भक्ती
		झुठाभी नहीं)	पूसत्य भाण	१५८	५	आपमें	आपसमें
१२३	११	पक	पका	१५९	४	सम्य	सम्प
१२७	११	मानिस्तर	सानिस्तर	१६०	१	निदा	निन्दा
,,	१४	अङ्गी	अङ्गा	,,	५	दनि	दिन
१३१	११	कलद	कलेश	१६२	१८	और	०
,,	१५	पर्वादा	प्रपदा	१६४		बहुत जगह	
१३५	५	गति	गति रूप ४			उत्तरका अक्ष	
१३६	१४	हो	नह			र नहीं है	
१३६	२	द्वो	शब्दो	१६५	७	जुमलीवा	जुगलीया
१३८	२	लीजो	लोजाय	१६६	५	(मिथ्य	(मिथ्या)
,,	११	मोडके	मांहके तर्फ	१६८	५	मूत्रता	मूलका
१३९	६	स्थपन्न	स्थापन	१६९	४	देवो	देव

पृष्ट	ओली	अशुद्ध	शुद्ध
१६९	१६	आजीका	आजीवका
१७१	९	शास्र	शास्त्र
१७२	१७	रच	रचन
१७३	१८	मानने	मानरमाऊँहाने
१७३	१६	गपाइ	रुपाइ
१७४	१२	चितक्या	चितक्यो
१७५	९	पितका	पिताका
१७६	१८	फत्तर्शी	पथरी
१७७	३	गालिज	गालित
१८१	४	और १८१ प्र	१८५ १८६ प्र मेल है
१८३	३	शाक	शाक
१८४	१७	नल	नाल
१८५	१६	जोज	जाजन
१८६	१५	,,	,
१८६	१७	क्षक्षमे	सक्षपमें
१८९	१६	विचर	विचार
१९०	६	अज्ञ	आज्ञा
१९१	७	,	,,
१९४	२	क्रय	कृत
२०२	१४	माइकाती	माइक्ती
२०७	९	मता	सत्र
२०८	७	गवथे	देखिये
२१०	२	पापी	पापीको
२१८	१९	त्र	०
२१२	९	पश्च	पश्चा
२१२	नोट	७अग्नी	७ लक्ष अर्थी
२१९	१०	कदपी	कदापी
२२०	६	मोरक	माक्ख

पृष्ट	आली	अशुद्ध	शुद्ध
२२१	५	९	१
२२२	४	वृद्धी	वृद्धि
२२४	४	उसे	उस
२२६		यह नोट २२७में पृष्ट की है	
२२७		यह नोट २२६ मे पृष्ट की है	
२२६	नोट	निद	दिन
२३४	१६	मुनल	पुद्गल
२३५	८	नित	पिता
२४१	१३	अश्रय	आश्रय
२४१	१८	दानो	दोनो
२४२	१	जैस	जैसे
२४४	१	नशमे	नशेमें
२४४	६	अज्ञा	अज्ञान
२४६	६	अन्यजमे	अन्य जन्ममें
२४६	८	नशमे	नशेमे
२४६	११	वेसही	वैसेही
२४८	१६	सत्या	सत्य
२५०	३	मिथ	मिथ्या
	५	क्षत्र	क्षेत्र
२५४	६	आकले	अकाले
२५६	१	साटर	सात २
	३	कल	काल
	नोट	सुत्र	सुक्र
२६१	६	मिष्ट	मिष्टा
२७	१	मच	मक्का

पृष्ठ	ओली	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	ओली	अशुद्ध	शुद्ध
२७१	नोट	इसन	उसन	३१४	९	अनन्द	आनन्द
२९३	१६	निशुद्ध	विशुद्ध	३१५	१०	"	"
२७४	२१	विपत	क्षपति	३१६	८	मय	मान
२७८	१७	निमेमर्क	निर्ममें	३१८	१४	जया	जय
२७९	नोट	पागला	तथा पिगला	३२०	५	फीये	फिथे
२८०	१६	निगर्म	निर्मम	३२६	३	चारित्र	चारित्र
२८३	७	त्यान	त्याग	३२६	९	पय	पाये
२८६	७	चिरूप	चिद्रूप	३२६	नोट	डारिवही	डरीयारही
२८७	१	सोलडढ	साल ७ढ	३२८	६	व्हाम	वाह्यमें
२९०	७	मिमल	विमल	३२८	२	पटला	पल्टा
२९२	६	पिणड	पिण्ड	३२९	१	"	
२९२	८	सरीमे	सरीरमें	३२९	१२	पटना	पलटा
२९२	९	पिण्ड	पिण्ड	३३०	१७	मिथ्य	मिथ्या
२९६	नोट	अट	आठ	३३१	५	पवतमें	प्रवृतते
२९६		कादड	वडाकार	३३२	७	क्रिय	क्रिया
२९८	१	करनेका	करनेकाउपाय	३३५	१२	वह्य	वाह्य
२९९	१४	अवलोकन	अवलोकन	३३५	२	सधन	साधन
३००	नोट	हहमस्व	सो स्वभाव है	३३७	१०	किसा	किसी
३०१	१	भन	भाव और भव	३३७	३	टेवड	टेढे
३०१	८	आ स्ति	आस्ती	३३८	१०	जरामी	जराभी
३०२	४	अवक	अवक्तव्य	३३८	३	परपशुक	मेरपशूके
३०२	८	स्यत्	स्यात	३४०	९	स्वमासे	स्वभावसे
३०३	१८	प्राप्र	प्राप्त	३४	१७	क्षमका	क्षमाका
३०५	११	आर	और	३४१	२१	द्रा	द्वारा
३०६	३	मरङ्गल	महमाङ्गल	३४२	७	अपही	आपही
३०६	१०	अत्म	आत्म	३४७	९	परतणी	प्रणती
३०७	७	नजो	तजो	३४७	१४	टाक	ढाक
३१०	नोट	लोकालोक	लोकाकाश	३४७	११	प्रेमा	मक्षा
३१०	२	कसयल	कसायले	३५०	१	अपया	अपाया



श्री जिनवरेंद्राय नम

ध्यानकल्पतरु



मङ्गलाचरणम्.



अणुतरं धम्म-मुईरइत्ता, अणुत्तर झाणवर झियाइ, सु सुक्क सुक्क अपगड सुक्क, सखिद वेग तव दान-मुक ॥१॥ अणुत्तरग्ग परम महेसी, असेस कम्म स विसोह इत्ता सिद्धि गइ साइ मणत पत्ते, नणेग मीलेण य दंतणेण ॥२॥

सुयगडागसूत्र

श्रमण भगवंत श्री महावीर वृधमान स्वामी, प्रधान-श्रेष्ट धर्मके प्रकाशक, सर्वोत्तम उज्वलसे अती उज्वल, दोष-मल रहित, ध्यान को ध्याया कैसा उज्वल ध्यान ध्याया, तो के यथा दृष्टात-जैसा अर्ज्जुन सुवर्ण उज्वल होता है, पाणी के फेण उज्वल होते है, संख और चंद्रमाके कीर्ण उज्वल होते है, ऐसा वल्के इससे भी अधिक उज्वल, सर्व ध्यानो-

में श्रेष्ट, ऐसा सुकध्यान ध्याया. उस ध्यानके प्रशा दसे; महा ऋपिस्वर, समस्त कर्मोका नाश-क्षय कर निर्मळे हुये, जिससे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य, यह अनंत चतुष्टयकों प्राप्त कर; जो आदि सहित और अंतरहित, ऐसी सिद्ध गती, मोक्षगती, लोकके उपर, अग्रभागमें हैं; उसको प्रप्त करी. ऐसे श्रीमहावीर वृधमान स्वामी जीकों मेरा त्रिकर्ण विशुद्ध त्रिकाल नमस्कार होवो!

भूमिका.

श्लोक— ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं, फल चेति चतुष्टयम.
इति सुत्र समा सेन, सविकल्पं निग्रह्यते.

अर्थ—ध्याता कहीये ध्यान करनेवाले ध्यान कहीये ध्यान अवस्था धारण कर स्थिर बेठना, ध्येय कहीये किसी प्रकारका मनमें विचार करना; और फलं कहीये, उस विचारका उस (ध्याता) कों क्या फल मिलेगा, इन चारोंही वावतोंका, यथा बुद्धि इस ग्रंथमे दर्शानेका पर्यन्त करूगा. उसे पाठक गणो, दत्त चितसे पढके अशुभसेवच, शुभमे प्र- इष्टार्थ सिद्ध करने

स्कन्ध.

ध्यान शब्दकी धातू "ध्यै" हैं, ध्यैका अर्थ-अंतःकरणमें विचार करना- सोचना ऐसा होताहै. ध्यानके भेद शास्त्रमे इस प्रकार किये हैं.

शाखा.

सूत्र से किंतं झाणे, झाणे चउविहे पन्नते तंज्जहा, अट्टे झाणे, रुद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे उववाइ सूत्र

अर्थ—शिष्य सविनय प्रश्न करता है, कीगुरु महाराज, ध्यानके भेद कित्ने है?

गुरु—हे शिष्य, ध्यानके चार भेद भगवतने फरमाये हैं, वैसेही में तेरेसे अनुक्रमें कहताहू. १ आर्त ध्यान, २ रुद्र ध्यान, ३ धर्म ध्यान; और ४ सुक्ल ध्यान.

अंतःकरणमें विचार दो तरहका होता है १ कभी अशुभ अर्थात् बुरा और कभी शुभ अर्थात् अच्छा अशुभ विचारकों अशुभ ध्यान, और

या शुद्ध विचारको शुभ या शुद्ध ध्यान कहतेंहैं.

उपर कहे सूत्रमे अशुभ ध्यानके दो भेद कियेहै, आर्त ध्यान और रुद्र ध्यान. तैसे शुभ ध्यानकेभी दो भेद कियेहें— धर्म ध्यान, और सुक्ल ध्यान. इन चारोहीका सविस्तार वर्णव, आगे अलग २ शाखाओंमे किया जायगा.

" अशुभ ध्यान. "

उपर कहे चार ध्यानोंमेसे, अव्वल अशुभध्यानका वर्णव करताहूं, क्योंकि मोक्षार्थी, अशुभ ध्यान का स्वरुप समजेंगे, तो उससे बचके, शुभमें प्रवेश करनेको प्रयत्न वंत हो सकेंगे.

प्रथम शाखा "आर्तध्यान"

इस जगत निवासी, सकर्मी जीवोंकों, शुभाशुभ कर्मोके संयोगसे, इष्ट (अच्छे) का संयोग (मिलाप), और अनिष्ट (बुरे) का वियोग (नाश) तथा अनिष्टका संयोग, और इष्टका वियोग, अनादिसे होताही आया हैं, उससे जो मनमें सकल्प विकल्प उत्पन्न होता हैं; उसेही 'आर्त ध्यान' समजना. जिनेश्वर भगवानने, जिसके मुख्य चार प्रकार कहेहें .

प्रथम प्रतिशाखा 'आर्त ध्यानके भेद'

सूत्र अट्ठे झाणे चउ विह, पण्णते, तज्जहा, अमणुग संप उग सपउत्ते, तस्स विप्प उगसति, समणा एगययावी भवत्ति. मणुण सपउत्ते, तस्स अवीप्प उग साति समणा गएया अभवत्ति, आयंक सप उग सपउत्ते तस्साविप्पडग सत्ती ममणे गएया वीभवत्ति परिझूसीया काम भोग सपउत्ते, तरस अविप्पउग सत्ति, सनणे एगया भवात्ति.

उववाइ सूत्र

अर्थ—आर्त ध्यान चार प्रकारसे, भगवंतने फरमाया, सो कहतेहै १ अमन्योंग (खराब) शब्दादिक का सयोग होनेसे, विचार होवे की- इनका वियोग (नाश) कब होगा; इसकों अनिष्ट संयोग नामें आर्त ध्यान कहना २ मन्योग (अच्छे) शब्दादिकका, संयोग (प्राप्ती) होनेसें, विचार होवे की— इनका वियोग कदापी न होवो, इसे इष्ट संयोग आर्त ध्यान कहना ३ ज्वर, कुष्टादि अनेक प्रकारके रोगोकी प्राप्ती होनेसे, विचार होवे की— इनका शिघ्र नाश होवो इसे रोगोदय आर्तध्यान कहना ४ इच्छित काम भोग की प्राप्ती होनेसे

विचार होवे की- इनका वियोग कदापी न होवो. इसे भोगीच्छा आर्त ध्यान कहना

प्रथम पत्र-"अनिष्ट संयोग".

१ "अनिष्ट संयोग नामें आर्त ध्यान," सो-जीवने अपने सरीरकों, स्वजन स्नेहीयादि कुटम्ब को, सुवर्णादि धन्नको, गोधुमादि (गहूआदि) धान्य (अनाज) गवादि (गायादि) पशु, और घरादिकों अपने सुख दाता मानलिये हैं. इनके नाश करने-वाले, सिंह-सर्प-विच्छू-षटमल-ज्यूकादि जानवर, शत्रू चोर- नृपादि मनुष्य, नदी-समुद्रादि जलस्थान, अग्नी, वच्छनाग-अफीमादि विष, तीर-तरवारादि शस्त्र, गीरी-कंदरादि, मृतिकास्थान, तथा भूतादि व्यंतर देव; इत्यादि भयंकर वस्तुके नाम श्रवणकर, स्वरूप अवलोकन (देख) कर, या स्मरण होनेसे, तथा प्राप्त होनेसे. मनको सकल्प विकल्प (घबरावट) होवे. तब इनके वियोगकी इच्छा करे की, ये मेरा जीव लेने क्यों मेरे पीछे लगे हैं, मुजे क्यो सता-रहे हैं, हे भगवान? इनका शिघ्र नाश होवे तो बहुतही अच्छा, ऐसा चिंतवन करे उसे तत्वज्ञ पुरु-

पोने, आर्त ध्यानका प्रथम भेद कहा हैं.

द्वितीय पत्र "इष्ट संयोग".

२ "इष्ट संयोग नामें आर्त ध्यान" सो



राज्योप भोग शयना सन वाहनेपु,
स्त्रीगध माल्य वर रत्न विभूषणेपु;
अत्याभिलाप मतिमात्र मुपैती मोहाद,
ध्यान तदार्तामिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञ.

सागार धर्मामृत

इष्टकारी, प्रियकारी, राज्येश्वर्यता, चक्रवृत, वलदेव, मांडलिक राज, तथा सामान्य राजकी ऋद्वी भोग भूमी (जुगलीया) के अखड सौभाग्य सुख, मंत्रीश्वर (प्रधान) श्रेष्ट शेन्यापतीयोके विलास, नव योवना (मनुष्य देव संवंधी) स्त्रीयोके संग काम भोगकी, प्रयंका (पलंगा) दी शैय्या, अश्व, गज, रथादि वाहनो (सवारी) की, चुवा, चदन, पुष्प अतरादि सुर्भीगध पदार्थोके सेवनकी, रत्ना रजत (चांदी) सुवर्णादीके अनेक प्रकारके भुपण (गृहणें-दागीने) व रेशमी, जरी जरतारके

कों

अलंकृत, सुशोभित कर, मनहर रूप बणानेकी. इत्यादि तरह २ के काम भोगों भोगवने की. जो मोह कर्मके उदयसे अभिलाषा होतीहैं. तथा वरोक्त पदार्थोंकी प्राप्ती हुइ हैं. उसका उपभोग लेते, जो अंतः करणमें, सुख, अहलाद उत्पन्न होता हैं; की मैं केसे इच्छित सुखका भुक्ता हूं. या उनकी वारम्वार अनुमोदन करनेसे, अहा! वगैरे स्वभाविक उद्गार निकलते, अंतःकरणमें आनंद का अनुभव करते, जो विचार होताहै, उसे तत्वज्ञने आर्त ध्यानका दूसरा प्रकार कहाहैं.

॥ पाठांतर ॥ कितेक आर्त ध्यानका दूसरा प्रकार "इष्ट वियोग" कहतेहैं. अर्थात् कालज्ञानादी ग्रंथमें, बताये हुये, स्वरादी लक्षणोंसे; या जोतिषादी विद्याके प्रभावसे, शरीरका वियोग स्वल्प (थोडे) कालमे होता जाण, विचार उत्पन्न होय, की—हायरे अब में ये सुंदर शरीर, प्यारे कुटुंब स्नेहीयों, और कष्टसे उपार्जन की हुइ लक्ष्मीका, त्याग कर चले जाउंगा! तथा अपने सहायक स्वजन, मित्रोके वियोग से मूर्छित होगिर पडे,

विलापात, आत्मप्रहार[†] या मृत्युका चितवन करे, गृह (घर) संपतका किसीने हरण किया, अग्नी से जल (वल) गया, पाणीमे वहगया.—या डूब गया, पृथ्वी गत निधान (धन) विद्रुप* होके निकला. राजा पंचने हरण किया. व्योपारदीमें टोटा पडगया. या नामूनके लिये मदमे छकाहुवा, लग्नादी कार्यमें अधिक व्यय करनेंसे, अशक्तता दारिद्रतादी दुःख प्राप्त होनेसे, पश्चाताप करे, की हाय! हाय!! अब में क्या करूं वगैरे इत्यादि अंतःकरणका विचारभी दूसरा आर्त ध्यान हैं और इन्द्रियोंकों पोषणे, अनेक वाजिंत्र— वारंगणा (नाटकणी)[§] पुष्प वटिका[‡] अतर,—अबीरादी, षडरस भोजन, वस्त्र, भुषण, सयनाशन, वगैरे, विनाश हुये पदार्थोंका सयोग मिलाने, अनेक पापारंभ कार्यका चितवन करे, सोभी आर्त ध्यान

तृतीय पत्र-"रोगोदय."

३ "रोगोदय आर्त ध्यान सो"—(१)सब जीव

[†]सिर छातायादी कूटना *गडा हुआ धन कोयले पाणी वगैरे द्रष्टी आता है [§]नाचनेवाली [‡]बगीचा

आरोग्य–सुखके इच्छक हैं. परन्तु अशुभवेदनी कर्मोदयसे, जो जो रोग–असाताका उदय होता-हैं, उसे भोगवे विन छूटका नहीं. श्रीउत्तराध्ययनजी सुत्रमें फरमायहे की "कडाण कम्मान मोख्ख अत्थी" अर्थात् कृत्य कर्मके फल भुक्ते विनछूटका नहीं.* मनुष्यके सरीरपर, साडे तीन करोड रोम गिने जाते हैं; और एकेक रोम (रूम-वाल) के स्थानमें पोणे दो दो रोग कहते हैं. तो विचारीये यह शरीर कित्ने रोगोंका घर हैं. जहांलग सातावे दनिय कर्मका जोर हैं, वहांतक सव रोग दवे (ढके) हुयेहैं. और पापोदय होतें, कुष्ट (कोड), भगंदर, जलंधर, अतीसार, श्वाश, खास, ज्वरादि, अनेक उद्रवीकार रुद्रवीकार से भयंकर रोग उत्पन्न हो, पीडा (दुःख) देते हैं; तव चित आकुल व्याकुल हो, अनेक प्रकारके सकल्प वि-

*कृतकर्मो क्षयो नास्ती, कल्प कोटी शतैर्पि,
अवश्य मेव भुक्तव्यं, कृतकर्म सुभासुभं.

४३२०००००० इत्ने वर्षोका एक कल्प किया जाता हैं ऐसे क्रोडों कल्पमेंही किये हुये कर्मका फल भोगवें विन छुटका नहीं होता हे !!

कल्प उत्पन्न होतेहैं सो तीसरा आर्तध्यान. (२)और उन रोगोंका निवारण करने, अनेक औषधोपचार के लिये; अनंत काय, एकेंद्रीसे लगा पचेंद्रीय तक जीवोका, अनेक तरह, आरंभ, सभारंभ, छेदन भेदन, पचन पाचनादि, क्रिया करनेका, अंतःकरणमे विचार होवे; शिघ्रतासे उनका नाश करने चटपटी लगे, उनकी हानी वृधीसें हर्षशोक होय, हें प्रभू ! स्वपनांतरमेंभी ऐसा दुःख मत होवो. इत्यादि अभीलाषा होवे, सो तीसरा आर्त ध्यान.

चतुर्थ पत्र-"भोगिच्छा."

४ "भोगिच्छा आर्तध्यान" सो—१पाच इन्द्रिय सम्बंधी काम भोग* भोगवणे की इच्छा होय, अर्थात् श्रवणेंद्री (कान) से, राग रागणी, किन्नरीयोके गायन, और वाजिंत्रोंका संञ्जुल राग, सुननेमे, चक्षूरेंद्री (आँख) सेनृत्य (नाच) षोडश-

*पाच इंद्रियोंमें, कान और आँख यह दो इद्रियकामी है अर्थात् शब्द सुणना और रूप देखना यह दो काम देती है. और, घ्रोण, रस, स्पर्श ये तीन भोगी है अर्थात्, गध, स्वाद, और स्रीयादिका उप भोग लेतीहै

आर्तध्यानके "पुष्प और फल"

आर्त ध्यानीकों अप्राप्त वस्तुकों प्राप्त करने की अत्यंत उत्कंठा (आशा वांच्छा) रहती हैं. अहोनिश उधरही लक्ष लगा रहता है. जिससे अन्य कामका अनेक तरहसे बीगाडा होता है, हरकत पडती है. धर्म करणी संयम तपादी कर केश्री *कुंडरिक की तरह यथा तथ्य लाभ प्राप्त कर सक्ते नहीं हैं.

---

*जंबू द्विपके पुर्व महाविदेहकी, पुष्कळावति विजयकी, पुंडरी राजध्यानीके, पद्मनाभ राजाके कुडारेक कुवरने दिक्षा धारण करी पुडरीक कुंवरको राज प्राप्त हूवा भइको राज्य सूख भोगवते देख कुडारिक का मन ललचाया और गुरुका सग छोड मेहलके पीछेकी आशोक वाडीमें गुप्त आके बेठे माळीसे खवर मिलतेही पुडारिक राजा तुर्त भाइके दर्शन करने आये और मुनीका चित उदास देख पुछनेसे उनने राज वैभवकी परसम्या करी, मुनीका मन चलित देख, राजा अपने वस्त्र भूपण उतार मुनीकों दिये और मुनीका उतारा हुवा वेश राजा धारण कर गुरुजीके दर्शन करने चले तीन दिन उपवाससें गुरुजीको भेट, लुक्खम, सुक्खम शुद्ध अहार भोगवनेसें, अत्यत पीडा(दु ख) हुवा और आयुप पूर्ण कर स्वार्थ सिद्ध विमानमें देवता हुये. पीछेसें कुंडरिक राज वेश धारण कर राज्य सुख भोगनेमें अत्यंत लुब्ध हुये ताकदवडनेके लिये मांस मदिरादि अभक्षका भक्षण करनेसें, अत्यत असाह्य वेदना उत्पन्न हुइ तीन दिनमें आयुष्य पूर्णकर भोग विन भोगवेही मरके सातवी नर्क गये.

अखंड पुरे पुंन्य पोते हुये विन तो इष्ट वस्तु की प्राप्ती होना, और स्थिर रहना होही नहीं सक्ता हैं, जो अप्राप्ती से, या प्राप्त हो के नाश होनेसे, उस वस्तुके लिये झुर २ के मरते हे; उनका कुच्छभी कार्य न होता हैं उलटे, नमीराज ऋषिके फरमाये प्रमाणे "कामे पत्थ व माणा, अकामा जंति दुग्गई" अर्थात्—अप्राप्त हुये-अनमिले कामभोगोकी प्रार्थना (वांच्छा) करता हुवा, कामभोग विन भोगवेइ, वो मरके दुर्गती (खराब गति नर्क तिर्यांचा की) मे जाता हैं और कदी किंचित् पुन्योदयसे मनुष्य गति पाया तो दुःखी, दरिद्री, हीन, दीन होवे, और जो कदापी, देवता हो जाय तो *अभोगीया, देव हो सदा स्वामीके हुकमाधीन रहके अनेक कष्ट भोगते है मालककी खुशी मे अपनी खुशी मनानी पडती है भोगांतराय कर्मोदयसें, प्राप्त हुये पदार्थोका भी भोग न ले सक्ता है, अन्यके भोग

*नाकर देव स्वामीके लिये विमाण वणावें, या उठावें, शन्याके देवअश्वादि पसूका रूप बनाके स्वारी देवें सो अभोगीया देव.

सुख देख झुरना पडता है. आर्त ध्यान ऐसी प-क्की मोहब्बत करता है, की भवांतरोकी श्रेणियों (भव-भ्रमण) में साथही बना रहता है; प्रीती नहीं तोडता है,(२)और आर्त ध्यानी प्राप्त हुये भोग सुखपे अत्यंत लुब्ध (ग्रधी) होता है. (देवादिक के सुख अनंत वक्त भुक्त के भी ऐसा समजता हैं) जाणें ऐसी वस्तु मुजे कहींभी न मिली थी, ऐसा जाण, उसको क्षिणमात्रभी अलग नहीं करता है. ऐसी अत्यंत अशक्तताके योगसे, इस भवमें सूल सुजाक, गर्मी, चितभ्रमादि अनेक रोगोंसे पीडित हो, औषध पथ्यादीमें संलग्न हो, प्राप्त हुये पदार्थ भोगव नहीं शक्ता है. घरमें रही हुइ सासुग्रीयोंकों देख २ झुरताही रहता है. इस रोगसें कब छुटूं, और इनका भोग लेवूं !!

(३)औरभी आर्तध्यानीकों, जो वस्तु प्राप्त हुइ है, उससे दूसरी वस्तु अधिक श्रवण कर, या देख, उसे प्राप्त करनेकी अभीलाषा होती हैं; यों उत्तोत्त वस्तुओ भोगवनेकी अभीलाषही अभी-लापा में, उसका जन्म पूरा हो जाता है; वृधवस्था

प्राप्त हो जाती है, तो भी इच्छा-तृष्णा त्रप्त नहीं होती है. भृतृही नें कहाहैं की–' तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा " अर्थात् वय जीर्ण [वृध] होगइ परंतु तृष्णा-वांच्छा जीर्ण न हुइ. क्यो कि इस श्रेष्टी में, एकेक सें अधिक २ पदार्थ पडे हैं, वो सब एकही जीवकों एकही वक्तमे तो प्राप्त होही नहीं शक्ते हैं प्राप्त हुये विन, तृष्णावंतकी तृष्णा भी शांत नहीं होतीहै और तृष्णा शांत हुये विन दुःख नहीं मिटता हैं. इस विचार सें निश्चय होता है की, आर्त ध्यान सदा एकांत दुःखही का कारण हैं. जैसा यह इस भवमे दुःख दाता है, इससेभी अधिक परभव में दुःखप्रद समजीये. क्यों कि जो प्राप्त वस्तुपे अत्यंत लुब्धता रखता है, जिससे उसके वज्र (चीकणें) कर्म वधते हैं. वो कर्म फिर दुर्गतीयों मे, ऐसे दुःख दाता होयगे की, रोते २ भी नहीं छूटेगे ऐसा विचार, सम्यक द्रष्टी श्रावक साधू इस आर्तध्यानका त्याग कर, सुखी होनेका उपाय करे

यह आर्तध्यान सकर्मी जीवोके साथ अनादी

कालसे लगा है, यह विना संस्कार स्वभाव सेही उत्पन्न होता है. इस ध्यानमें मरणें वालेकी विशेष कर तिर्यच गतीही होती है यह ध्यान 'हेय' अर्थात् छोडनें योग्य है.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके
सम्प्रदायके बाल ब्रह्मचारी मुनी श्री अमोलख
ऋषिजी रचित ध्यानकल्पतरू ग्रन्थ
की प्रथमशाखा आर्तध्यान नामे



समास.



द्वितीय शाखा "रौद्रध्यान"



रोद्दे झाणे चउविह पन्नते तज्जहा, हिंसाणुबंधी, मोसाणुबधी, तेणाणुबधी, सार रखणाणुबंधी.

अस्यार्थ—रौद्र (भयंकर) ध्यानके चार प्रकार भगवंतने फरमाये, सो कहता हूं १ हिशानुबंध—हिशक कर्मोंका अनुमोदन (परसंस्या) करे, २ मृषानुबंध—मिथ्या(झूटे)कर्मोका अनुमोदन करे ३ त्तस्करानुबंध—चोरीके कर्मोंका अनुमोदन करे ४ संरक्षणानुबंध—सुख रक्षणके कामोका अनुमोदन करे.

प्रथम प्रतिशाखा "रौद्रध्यानके भेद."

जैसे मदिरा पान करनेसे, मनुष्यकी बुद्धि विकल होजाती है, और वो विशेषत्व क्रुर कर्मोंमेंही आनंद मानता है, तैसेही जीव अनादी कालसें, कर्म रूप मदिराके नशेमे, मतवाले हुये हुवे क्रू क-

मेंमेंही आनंद (मजा) मानते हैं. उन कूकर्मोंके आनंदसें, जो अंतःकरणमे विचार होता है, उसे तत्वज्ञ पुरुषोंने रौद्र-भयानक ध्यान फरमाया हैं. इसके मुख्य चार प्रकार करे हैं.

प्रथम पत्र-"हिंशानुबंध."

१ "हिंशानुबंध रौद्र ध्यान" सो—
संछेदनैर्दमनै ताडन तापनैश्च,
बन्ध प्रहार दमनैश्च विकृन्तनैश्च;
यस्येह राग मुपयाति नचानु कम्पा,
ध्यानंतु रौद्र मिती तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञः १

सागर धर्मामृत.

अस्यार्थम्-छेदन, भेदन, ताडन, तापन,-करना. बन्धन बांधना, प्रहार मारना, दमन करना कूरूप करना, इत्यादि कर्मोमें जिसका अनुराग (प्रेम) होवे, और यह कर्म देख जिसकों दया नहीं आवे, सो हिंशानुबन्धी रौद्र ध्यान.

(१) 'दुःख किसको भी प्रिय नही है' बेचारे जीव कर्माधिनतासे, पराधीनता, निराधारता, अ-

समर्थता पाये हैं, हीन, दीन, दुःखी हुये है. एकेन्द्रीयादी अवस्था प्राप्त हुइ हे, अहो निश सुखके इच्छक हैं; और यथा शक्त सुख प्राप्तीका उपाय करने खपते हैं, उन बेचारे जीवोंकों, अर्थे (मतलबसे) अनर्थे (विना कारन) दुःख देना, सताना, या उनकों दुःखसे पीडाते हुये देख हर्ष मानना, सो रौद्र ध्यान, एकेन्द्रीयसे लगा पचेन्द्रीय जीव पर्यंत कीसीभी जीवोको, या जीव युक्त किसीभी पदार्थोको, स्वयं अपने हाथसें, तथा पर दूसरेके हाथसे, प्राण रहित करते देख, टुकडे २ करते देख, लोहकी श्रांखल वेडीमे वन्धनमें डालते देख, रस्सी सूत शणादिक से वांधते देख, कोटडी भूंवारे (तल घर) करागृह (केदी खाने) मे, कब्ज किये देख, करण, नाशीका, पूंछ, सींग, हाथ पांव, चमडी, नख, वगैरे किसीभी अंगोपाग का-छेदन भेदन करते देख, कत्तल खानेसे वेचारे जीवोका, वध करते समय, उनका अक्रांद श्रवण कर, उनके अंगके टुकडे तडफडते देख, वगैरे अनेक तरह, जीवोंको दुःख देते, या वध करते देख, आ-

नंद माने, की बहुत अच्छा हुवा, यह ऐसाहीथा. इसे मारनाही चाहिये; बंधनमे डालनाही चाहिये; फांसी, सूली, देनाही चाहिये; वडा जुलमी था. बचता तो गजब कर डालता, पाप कटा, मरगया, पृथ्वीका भार हलका हुवा! वगैरे २ शब्दोचार करे, आनंद माने, सो हिंशानुवन्ध आर्त ध्यान.

(२) औरभी हाहा! यह महेल, मंदिर, बंगला, हाट–दुकान, हवेली, कोट, किल्ला, खाइ, बुरजों, तीरस्थंभ, या मृतिका पाषाणादिकके खिलोणे, मूरती, भंडोपकरण (वरतन) वगैरे, बहुत अच्छे बने, अच्छा रंग, कोरणीयादि कर, सुशोभित किया, शाबास कारीगरकों पूरा शिल्पवेताथा, की जिसने ऐसी मनहर वस्तु बणाइ. ऐसेही कूप बावडी, नल, तलाव, होद, कुंड, झरणा, झारी, लोटा, गिलाश, कळशा, वगैरे बहुतही अच्छे मनहर बने है. क्या स्वादिष्ट शीतल सुगंधी पाणी हैं. कैसा उमदा फुवारा छूटता है. कैसा उमदा छिडकाव हुवा हैं. चूला, भट्टी, अंजन, मील, दीवा, पिलशोद. हंडी गिलास. झुमर. चीमनी वगैरे

वहुतही अच्छे सुशोभित हैं; क्या उमदा झगमग रोशनी होरही हैं, क्या रंगी वेरंगी आतशवाजी (दारुके ख्याल) छूट रहे हैं, क्या धूपकी सुगंधी मघमघा रही हैं. क्या शीतल सुगंधी हवा आती है क्या उमदा पंखा पंखी चल रहे हैं कैसा झूला घूमता है, क्या मज्जुल वाजिन्त्रोका नाद है क्या उचे२ विचित्राकार वृक्षोका समोह सोभ रहा है. यह झाडों काटके प्रशाद, स्थंभ, पाट, वगैरे वनाने योग्य है, यह फल वडे मिष्ट है, भक्षण करने योग्य हैं गुण करता हैं, शाख वडा स्वादिष्ट वना क्या लीली २-हरीयाली छा रही है, इसे देखनेंसे वडा आनंद होता है क्या मनहर हार तुर्रे वनाये, औषधियां कंद मुलादिक पोष्टिक स्वादिक - कैसे अच्छे हैं. -यह कीडे, खटमल, डंस, मच्छर, परले के जीव हैं, -इनकों जरूरही मारना. जलचर मच्छादि भूचर गवादि, वनचर शुकरादी, खेचर, पक्षी आदी, पचनादी कर भक्षणे योग्य हैं यह अश्व गजादी की कैसी सजाइ सजी है शैन्य शत्रूका कट्टा करने जैसी हैं, वहुत अच्छे चित्र विचित्र पक्षीयोंको पींजरेमे रखे हैं अजायव घरकी

अजव छटा हैं. मुशेसे रोगोत्पती होती है. यह मारने योग्य हैं. सर्प विच्छूवादि विषारी जीवोंको अवश्य मारना, बडा पुन्य होगा, सिंहकी शिकार क्षत्रीयोको अवस्य करना चाहीये. केसा सूर सुभट हैं, एक पलक मे हजारोंका संहार करता है. इत्यादी विचारको हिंसानुवन्ध रौद्रध्यान कहना. औरभी अश्वमेध यज्ञ, घोडेको अग्निमें होमनेसे; गौमेधयज्ञ गौका, अजामेध वकरेका, और नरमेध मनुष्य का, अग्निमें होम करने (जलाने) से, वडा धर्म होता है, स्वर्ग मिलता है. यह विचारभी रौद्रध्यानका हैं. कित्येक पापशास्त्रके अभ्यासी कित्नेक जानवरोंके अंगोपांग मांस; रक्त, हड्डी, चर्म इत्यादी सेवनेसे रोग नास्ती मानते हैं कित्नेक क्रिडा निमित्त कुत्तेआदी शिकारी जानवरोंसे वेचारे गरीब पशु पक्षीयोंको पकडाके मजा मानते हैं. कित्नेक वंदर रींछ आदी जीवोंके पास नृत्य गायनादीके

* प्लेग रोगके प्रगट होने पहले घरमें मूशे (चुवे-उंदिर) मरके घरके मालिक को चेताते है रोगसे वचाने उपकार करते है उसे भूलके उसे मारते है यह वडी अज्ञान दशा है.

ख्याल तमाशादेखनेमें मजा मानते हे. कुर्कट, भेसें, मेढे या मनुष्यादि की लडाड देख मजा मानते हैं सो भी हिशानुवन्ध नामे रौद्रध्यान हे.

किल्नेक जीवोके संहार के लिये, सत्घनी, (तोप) बदूक, धनुश्य-बाण, खड्ग, कटार, छुरी, चक्र आदीका संग्रह करते हैं, या शस्त्र देख, जीवों के संहारकी इच्छा करते हे किलेक घट्टा, घट्टी, हल,बखर, कुदाली, पावडी ऊखल. मुशल, सरोता, दांतरडा, कातर, वगैरेका संग्रह करते हे. तथा इन को देख संहारकी इच्छा करते हैं हाथ मे आये चलानेंकी इच्छा करते हे खाली चलाके देखते हे, सो भी हिशानुवन्ध रौद्रध्यान.

औरभी किसीका बुरा चितवना, अपनेसे अधिक रूपवान, धनेश्वरी, गुणीजन, पुण्यप्रतापी, बहुल परवारी, सुखी देखके ईर्षा करे, उनको दु.ख होनेका विचार करे, की इस के पीछे मुजे कोइ नहीं पूछता हे, यह मेरे सुखमें या लाभमे हरक्त कर्ता हे मुजे हरवक्त दबाता है सताता हे, यह कब मरे और पाप कटे, वगैरे विचार करे सो भी

हिंशानुवन्ध रौद्रध्यान.

और पृथव्यादि छेही काय के जीवोंकी हिंशा होवे, ऐसा यज्ञ, होम, पूजा, वगैरेका उपदेश दे, या ग्रन्थ रचे, तैसेही औषधीयों के शास्त्र रचते, दुष्ट (घातक) मंत्रका साधन करते, विभत्स कथा कादम्बरी वगैरे रचते व पढते वक्त, हिंशक, चोर, जार, दुष्ट, दुर्व्यस्नीकी संगतमें रहते, और निर्दयी क्रोधी, अभीमानी, दगावाज, लोभी, नास्तिक, इनके मनमें हिंशानुवन्ध रौद्रध्यानका विशेष वास होता है.

तैसेही हिंशासे निपजती हुइ वस्तु, जैसे— १गिरनीमें पीशा आटा, २चीनी सक्कर, ३हड्डी या हाथी दॉत के चूडे, वगैरे, ४कचकडेकी वनी वस्तु, ५पांखोंकी टोपीयो वगैरे, ६चमडेके पूठे वगैरे,

१गिरनीके आटेकों बरोबर जमाके उपर सक्कर भुरभुरा देखनेंमे हलते चलते बहुत जीव दिखते हैं २चीनी सक्करमें हड्डीयोंका बूरा विशेष होता है, और गायके रक्तसे शुद्ध करते हैं ३हाथी दातके लिये ७०००० हाथी फ्रान्स देश में हरसाल मारे जाते हैं ४काछवेको गरम पानीमें डुवाके मारके उसके चमडेकी जो वस्तु बनाते हैं उस कचकडेकी कहते है ५जीवने पक्षीयोंकी पांखो झडपसे उखाड लेते है, वो टोपी वगैरेपे लगाते है ६ जीवने पशूका चमडा निकाल ते हैं कित्नेक स्थान चमडेके लियेही विपादी प्रयोगसे पशूको मार उसके वहीयोंके पूठे, नोवत नगारे, वगैरे बनते हैं

७अंग्रेजी दवाइयों, ८ सावन मेणवत्ती, ९रेशमी कपडे, १०खराव केशर, ११चरवीका घृत (घी) वगैरे हिंशक वस्तुका भोगोप भोग करते मनमें जो मजा मानते हैं, वोभी हिंशानुवन्ध रौद्रध्यान गिना जाता है.

ऐसेही वोर, मूले प्रमुखकी भाजी, जुवार वाजरीके भुट्टे, सुला अनाज व औषधी, विना देखे कोईभी सजीव वस्तु भोगवते मजा माननेसे भी, हिशानुवन्ध रौद्रध्यान गिना जाता हैं, क्यों कि इनमे त्रस जीवोका विशेष सभव हैं.

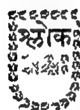
महाभारत सग्रामोके इतीहास कथा पढते सुनते जो उसकी मनमें अनुमोदन होवे, सो भी हिंशानुवन्ध रौद्रध्यान

७अंग्रेजी दवाइयेंमे जानवरोके मासका अर्क व दारूका भेल होता है काडलीवर आइल यह मच्छोका तेल होता है, ऐसी वहुतसी है ८सावू मेणवत्तीमें चरवीका भेल होता है ९कित्नेक केशरमें मास के छोंते होते है. १०रेशमी कीडेको गरम पाणीसे मार रेशम लेते हे ११कित्नक घी (घृत) में भी चरवी का भेल आता हैं ऐसी अखवारोंमें वहुदा खवरें मगट हुइ है, और उसे पढके वरोक्त वस्तु छोडते नहीं हैं उन्हे आर्यकेसे कहना

इत्यादि हिंशानुवन्ध रौद्रध्यानका वहुत व-यान हें, सवका मतलव इतनाही हे की, किसीकों भी दुःख देनेका विचार होवे या दूसरे के वधसे व-स्तु वनी उसकी अनुमोदना करे वोही हिंशानुवन्ध रौद्रध्यान.

द्वितीय पत्र-"मृपानुवन्ध."

२ "मृपानुवन्ध रौद्रध्यानः"—



अमत्य चातुर्य बलेन लोकाद्वितं ग्रहोप्यामि बहु प्रकार; तथा स्वमतत्र पुराकराणि, कं-न्यादि रत्नानीच वन्धुराणी ॥ १ ॥ असत्य वागवंचनाया निजानंत प्रवर्त्तय त्यत्र जन वराकम्, सद्धर्म मार्ग दाभिवर्तनेन मदो-द्वतोयः सहि रौद्रधामा ॥ २ ॥

ज्ञानार्णव

अर्थ—विचार करे कि में असत्यतासे चतुर्ता करके, मेरे कर्मोंको प्रगट न होने देते, अनेक प्र-कारसें लोकोंकों ठग कर, मेरा मतलव पूरा करूं

मन कल्पित, अनेक शास्त्र दया रहित रचकर, मन माना मत चलावूं, लोकोंकों वाक्य चातुरीसे मोहित कर, उनके पाससे सुन्दर, कन्या, रत्न, धन, धान्य गृह, (घर) ग्रहण करूं, और मेरा जीवन सुखे चलावूं इत्यादि असत्य विचार, जिसके अंतःकरणमें होवे, उसे मदोद्दत मृषानुबन्ध रौद्रध्यानका मंदिर (घर) समजना चाहिये.

मृषा=नही रक्खा, अर्थात 'झूटेने, जक्तमे बुरा पदार्थ कुछ बाकी रक्खा नहीं,' सब उसनेही ग्रहण कर लिया. ऐसा खराब झूटा पना है, और छोटे, वडे, सब झूटको खराब समजते है, क्यो कि झूटा 'कहनेसे, सब चिडते है,' तो भी आश्चर्य है की फिर उसे नहीं छोडते हैं, देखिये इस ध्यानकी सत्ता कैसी प्रबल है, की खराब काममेही आनंद मानाता हैं. कित्नेक अपनी चातुरी बताते है, की, हम कैसे विद्वान है कैसा परपंच रचा, की—अंग हीन, रुपहीन, इन्द्रियहीन, औरगुणहीन कंन्याको भी कैसे वडे स्थान दिलादी, और नगदी इस्ने रुपे दिला दिये वुद्धका, रोगिष्टका, नपुंशकका के-

सी युक्तीसे लग्न करादिया, अब वो दोनो भलांइ लावे उम्मर रोवो. अपना तो मतलव हो गया. ऐसेही गाय अश्वादी पशूत्रोंकों, तोता मैनादी पक्षीकी, खेत, वाग, वावडीयादीकी, झूटी परसंस्या कर, प्रपंच रच, रुपका प्रावृत (पलटा) कर. बुरेके अच्छे बनाकर, ज्यादा कीमत उपजावे, और खुशी होवे, तैसे पुराने वस्त्रोंको, रंगादी प्रयोगसे नवे वना, खोटे भुषणोंको सच्चे वना, या अच्छा माल वताके खोटा दे, हर्ष मानें, कोइ विश्वाससे अपनें स्वजन मित्रको गुप्त धन भूषण थापन रख गया होय, उसे दवा रक्खे मालकको न दे. ऐसेही झूटी गवाइयों खडीकर झूटे खत (रुक्के) बनाके गृह धनादिकका हरण कर खुशी होवें. ऐसे अनेक वेपारके कामोमें, दगावाजी करे, परपंच रचके दूसरेकों छलनेका विचार करे सो मृषानुवन्ध रौद्रध्यान.

अपना मन माना मिथ्या पथ चलाने वितराग कथित शास्त्रको छोड. अनेक कल्पित (झूटे) ग्रन्थ, चरित्र. वगैरे वनाके, विचारे भोले जीवोंकों

भरममे डाले, हिशामार्ग वता, शुद्ध दया मार्ग छोडा, मनमे आनद माने, की– मेने इत्ने ग्राम, इत्ने मनुष्य, मेरे बनाये. ऐसेही, ज्ञानवत, आचारवंत, शुद्ध जिनेश्वरके मार्गके परूपक, क्षमासील, ब्रम्हचारी वगैरे धर्म दीपकोकी, महीमां सुणके इर्षा लावे; *और उनका अपमान करने, उनके सिर झूटा कलक चडावे, निंदाकरे, और अपनी झूटी बातकों दूसरे मान्य करते देख हर्ष माने. कन्यादान, ऋतुदान, ठेहराके कुलीन स्त्रीयोंको भृष्ट करे. धर्म निमित हिंशामे दोष नहीं ऐसा ठहरावे ब्रम्हचारी नाम धरा, विभचार सेवन करे, और महातमा वगैरे नामसे बोलाते आनंद माने, सो भी मृषानुबन्ध रौद्रध्यान.

*मनहर.–सजनको देखकर दुर्जन करत कोप, ब्रम्हचारी देखकामी कोप करे मनमे निशके जगैया ताकों देख कोप करे चोर, धर्मवंत देख पापी झाल उठे तनमे, सुरवीर देखकर, कायरकरत कोप; कवींयेको देख मुढ हासी करे जनमें धनके धनीकों देख निर्धन कोप करे, विनाही निमित खाक डारेतिहूं पनमेः–

बधीर (बैरे) अन्धे, लंगडे, आदी अपंगको; कुष्टादी रोगिको, निर्बुधी, इत्यादिकी हांसी करे, इन्हे चिडावे, चिडते देख मजा माने. जुवा-तास (पत्ते). [1]शतरंज, वगैरे ख्यालोंमें, सहजही झूट बोलाता हैं. निकम्में विवादमें, प्रवादीयोंको दगासे छलनेमें, झूटे पेंच रचनेमें, हस्त चालाकीसे, या इन्द्र-जालसे, अनेक कौतुक बतानेमें, मंत्र जंत्रादीका आडंबर बडा, आपनी प्रतिष्टा (महिमा) सुण खुश होवे. शास्त्रार्थ करते (वाख्यान देते) अपने मरम (हर्ज) की बातकों छिपावे, अर्थको फिरावें, अनर्थ करे. झूटे गप्पेसें प्रपदाकों रींजाके, आनंद माने. दया, सत्य, सीलादी गुण रहित शास्त्र हैं, जिनमें फक्त संग्राम झगडे, या लीला, कितुहल, की कथा होवें, उन्हे श्रवण कर आनंद मानें. इत्यादि सर्व मृषानुबन्ध रौद्रध्यान समजना.

मृषानुबन्धका अर्थ तो बहुतही होता है; परंतु सारांस इत्नाही है की झूटे काममे अनंद माने उसहीका नाम मृषानुबन्ध रौद्रध्यान जाणना.

---

[1]सो रंज करनेवाली.

तृतीय पत्र-"तस्करानुवन्ध".

३ "तस्करानुवन्ध रौद्रध्यान" सो—



यच्चौर्याय शरीरिणा महरहश्चिन्ता समुत्पद्यते,
कृत्वा चौर्यमपिप्रमोद मतुलं कुर्वन्तियत्ससततम्,
चौर्येणापि हृतेपरैः परधने यज्जायते सभ्रम-
स्तच्चौर्यप्रभवंवदन्ति निपुणा रौद्रसुनिन्दास्पदम्
ज्ञानार्णव

अर्थ—चोरी करनेकी सदा चिन्ता रहे, चोरी करके अति हर्ष माने; अन्यके पास चोरी करा, लाभकी प्राप्ती हुइ देख, खुशी होवे, चोरी कर्ममें, कला कौशल्यता बतानेवालेकी प्रसंस्या करे, इत्यादि विचार करे सो तस्करानुवन्ध रौद्रध्यान अति निंदनिय है

जीव तृष्णा रूप विक्राल जालमें फसे हुये, सर्व जगतकी अन्न, धन्न, लक्ष्मी, कुटब की ऐश्वर्यता (मालकी) किये चहाते हैं, परंतु इस्ने पुंन्य करके नहीं लाये की, सर्वाधीपती बने ? और प्रमादी (आलसी) ओसे मेहनत करके, द्रव्योपारजन करना तो बने नहीं, तव सीधा द्रव्य मिलाके इच्छा त्रप्त करने, पापोदय से उनको चोरी सिवाय, दूसरा उपायही कौनसा दिखे, इस हेतूसे, वो चोरीयानुवन्ध रौद्र ध्यानमें चडते हैं,

वधीर (वैरे) अन्धे, लंगडे, आदी अपंगको; कुष्टादी रोगिको, निर्बुधी, इत्यादिकी हांसी करे, इन्हे चिडावे, चिडते देख मजा माने. जुवा–तास (पत्ते). [1]शतरंज, वगैरे ख्यालोंमें, सहजही झूट बोलाता हैं. निकम्में विवादमें, प्रवादीयोंको दगासे छलनेमें, झूटे पेंच रचनेमें, हस्त चालाकीसे, या इन्द्र-जालसे, अनेक कौतुक बतानेमें, मंत्र जंत्रादीका आडंबर वडा, आपनी प्रतिष्टा (महिमा) सुण खुश होवे. शास्त्रार्थ करते (वाख्यान देते) अपने मरम (हर्ज) की वातको छिपावे, अर्थको फिरावें, अनर्थ करे. झूटे गप्पेसें प्रपदाकों रींजाके, आनंद माने. दया, सत्य, सीलादी गुण रहित शास्त्र हैं, जिनमें फक्त संग्राम झगडे, या लीला, कि तुहल, की कथा होवे, उन्हे श्रवण कर आनंद मानें. इत्यादि सर्व मृषानुबन्ध रौद्रध्यान समजना.

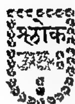
मृषानुबन्धका अर्थ तो वहुतही होता हैं; परंतु सारांस इत्नाही है की झूटे काममे अनंद माने उसहीका नाम मृषानुबन्ध रौद्रध्यान जाणना.

---

[1]सो रंज करनेवाली.

तृतीय पत्र-"तस्करानुबन्ध".

३ "तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान" सो—



यच्चौर्याय शरीरिणा महरहश्चिन्ता समुत्पद्यते,
कृत्वा चौर्यमपिप्रमोद मतुल कुर्वन्तियत्सततम्;
चौर्येणापि हृतेपरैः परधने यज्जायते सभ्रम-
स्तच्चौर्यप्रभवन्नदन्ति निपुणा रौद्रसुनिन्दास्पदम्
ज्ञानार्णव

अर्थ—चोरी करनेकी सदा चिन्ता रहे; चोरी करके अति हर्ष माने; अन्यके पास चोरी करा, लाभकी प्राप्ती हुइ देख, खुशी होवे, चोरी कर्ममें, कला कौशल्यता बतानेवालेकी प्रसंस्या करे, इत्यादि विचार करे सो तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान अति निदनिय हैं.

जीव तृष्णा रूप विकाल जालमें फसे हुये, सर्व जगतकी अन्न, धन्न, लक्ष्मी, कुटंब की ऐश्वर्यता (मालकी) किये चहाते हैं, परंतु इलो पुंन्य करके नहीं लाये की, सर्वाधीपती बने? और प्रमादी (आलसी) ओंसे मेहनत करके, द्रव्योपारजन करना तो बने नहीं, तब सीधा द्रव्य मिलाके इच्छा त्रप्त करने, पापोदय से उनको चोरी सिवाय, दूसरा उपायही कौनसा दिखे, इस हेतूसे, वो चौरीयानुबन्ध रौद्र ध्यानमें चडते हैं,

विचार करते हैं की घटासे अच्छादित अभ्रयुक्त अ-न्धारी रात्रीमें, कृष्ण वस्त्र धारण कर, गुप्तपने जा, क्षात्रदे, द्रव्य लावूंगा. क्या मगदूरहै कोइ सामने आय, मैं शस्त्र कलामें ऐसा प्रवीन हूं की-एक झटकेमें, वहुतोंके वटके (टुकडे). ऐसा सटकु की किसकी माने दूध पिलाया हैं, जो मुजे पकडे. में अनेक विद्याका जानहूं, सबको निद्रा ग्रस्त कर सक्ता हूं. वडे २ जंजीर और तालोंको एक कंकरीसे तोड सक्ता हूं. शैन्यको स्थंभन कर सक्ता हूं. अंजन सिद्धिसे पाताल का निध्यान, गुप्त-द्रव्य, और अंधकारमें प्रकाश तुल्य देख सक्ताहूं- इत्यादि अनेक कलाका धरनहार में हूं. क्या मगदूर कोइ मेंरी बरोबरी कर सके. हजारों सुभट मेरे हुकममें हैं, वो भी मेरे जैसे कलामें पूर, और सूर वीर हैं. मेने वडे २ नरेंद्रोको धुजादीये हैं. अब मे थोडेही कालमें, इश्वरो (मालकों) का संहार कर, सर्व ऋधि-सिद्धीका श्वामी बन, निश्चिंत मजा भोगवुंगा अमुक स्त्री महा रुपवंत हैं, उसकाभी हरण करुं. अमुक भूषण, वस्त्र, पाल, पशु मनुष्य, इन सर्व उत्तम पदार्थोंको, मेरे स्वाधीन कर, उनके उपभोगसें मेरी आत्मा त्रप्त करुं, इत्यादि विचार अंतःकरणमे होवे सो तस्करनुबन्ध

रौद्रध्यान

ऐसेही किलेक नामधारी साहुकार, लोकोको सेठाइ बताने, उत्तम २ वस्त्र, भूषण, तिलक–छापे, माला, कंठी, से शरीर विभुषित कर, माला फिराले, वडे धर्मात्मा वन, ऊंची २ गादी तकीयोंके टेके, दुकान पे विराजमान होते हैं. शीकार आइ के माला हलाते, भगवानका नाम उच्चार ते, मीठे २ वोल. उस भोलेकों, पान वीडी आदी के लालच से भरमा के, ऐसीं हुस्यारी से ठगाइ चलाते हैं, की क्या मगदूर कोइ समझतो जाय, मोलमे, वोलमे, तोलमें, मापमें, छापमे, जवावेमें ठगाइ चला, वस पहोंचे वहां तक उसे लूटनेमें कसर नहीं रखते हैं और विश्वास उपजानें गायकी, वच्चेकी तथा भगवानकी, दमडी २ के वास्ते कसम (सोगन) खाजाते हैं, इच्छित लाभ हुये वडे खुशी होतें हैं अच्छा माल वता खोटा देतें हे, अच्छा बुरा भेला कर देतें हैं, हिसावमे, व्याजमें, उनका घर डूबो देते हैं ऐसे २ अनेक चोरी कर्म भर वजार में कर साहुकार कहलाते हैं. अपनें चालाकीको हुस्यारी समज वडा हर्ष मानते हैं, सोभी चोरीयानुवन्ध रौद्रध्यान

ऐसेही किलेक साधू*ओंका, शरीर दुर्बल देख कोइ पूछे महाराज आप तपस्वी हो, तब तपस्वी न होने परही कहे की हां! साधू तो सदा तपस्वी होतेंहैं, सो तपका चोर. ऐसेही शुद्धाचारविन, मलीन, वस्त्रादी धारण कर, आचार वंत बजे, श्वेत वाल होनेसे स्थेवर (वृध) बजे, रूपवंत हो राजऋधी त्यागनेंवाला बजे, क्रूर प्रणामी होके, दांभिक पणेसे, वैरागी बजे वगैरे धर्म ठगाइ कर, आनंद माने सोभी तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान.

किसीके मकान, बगीचा, धर्मशाला, वस्त्र, भूषण, बरतन, भोजन, पाणी, अन्न, फल पुष्पादी, त्रण कंकर जैसा निर्माल्य पदार्थ भी उसके मालककी आज्ञा विन, देखके, स्पर्शके, या भोगवके, आनंद माने सोभी चौर्यानुबन्ध रौद्रध्यान.

जो जो अन्यके पदार्थ सुणने में, देखनेमें, व जाणनें में आवे, उनको ग्रहण करनेंकी, अपनें तावें करनें-

---

* तव तेणे वय तेणे, रुवे तेणेय जे नरा;
आयार भाव तेणेय, कुव्र देवेइ किंविसा १

अर्थ आचारका, व्रतका, रूपका, तपका, भाव का चोर, मरके, किलविषी (देवमें चंडाळ जैसे) देव होतें हैं

की भोगवणें की अभीलाषा होवे, वोही तस्करानुवन्ध तीसरा रौद्रध्यान.

चोर चोरी करके वस्तु लाया, उसको सस्ते भावमें लेके मजा माने, चोर को साहाय देवे. खान पान वस्त्रादी से साता उपजा, उनके पास चोरी करावे, और माल आप लेके आनंद माने. राजका दाण (हांसल) चोरा के खुशी होवे, जिस वस्तु वेंचनें की, अपनें राज में राजानें मनाकी होय, उसे गुप्त लाके वेंचे, और खुश होवे, इत्यादी तस्करानुवन्ध रौद्रध्यान के, अनेक भेद है. सवका मतलव इत्नाही है कें मालककी रजा(आज्ञा) विन, या उसके मन विन, जव्वर दस्तीकर जो वस्तू पे अपनी मालकी जमाके आनंद माने, सोही तस्करानुवन्ध रौद्रध्यान.

चतुर्थ पत्र "संरक्षण"

४ "विषय संरक्षण रौद्रध्यान—इस जगत्में सव जीव पापीही पापी हैं, ऐसाभी नही समजना; तथा सब पुन्यात्मा हैं, ऐसा भी नही समजना. सर्व संसारी जीवोंके पुण्य ओर पाप दोनों आनादी सें लगे हैं. पापकी वृधी होनेसे, दुःख की विशेपता, और पुण्यकी वृधी होनेसे, सुखकी विशेपता होती हैं, ज्यादा होता

हैं सोही दृष्टी आता हैं; तो भी उसका प्रतिपक्षी गुप्त बनाही रहता हैं.

जिनके पुण्यकी अधिकता होतीहै, उनको सुख दाइ मनयोग, साम्ग्रीयोंका संयोग मिलता है; वो उसका वियोग कदापी नहीं चहाते है. (यह वर्णव आर्त ध्यानके दूसरे भेदमें हो गया है) परंतु वस्तुका स्वभावही "अध्रुव अशा सयंमी" अर्थात् अध्रुव, अशाश्वतः क्षिण-भांगूर हैं. "समय ३ अनंत हानी" भगवंतने फरमाइ, सो सत्य हैं वस्तुका स्वभाव क्षिण २ में पलटता २, किसी वक्त वो सर्व वस्तु नष्ट होजाती हैं; उसे नष्ट न होने देने—अर्थात् बचानेके जो उपाय कियाजाय, उसीका नाम विषय संरक्षण रौद्रध्यान हे.

राज लक्ष्मी प्राप्त होनेसे, विचार होयकी रखे मेरे राज्यको, कोइ परचक्रीयादी हरण् करे. इस लिये अव्वलही बंदोबस्त करे, चतुरगणी शैन्य (हाथी, घोडे, रथ, पायदल) उमदा २ प्राक्रमीयोंका सग्रह करुं, धोकेके स्थान छावणी डालू; उद्धतोके संहारका उपाय चिंतवे, शत्रूके राजमें मनुष्य रख खबर लेता रहूं. उमरावादी को इनाम इकरामसें संतुष्ट रखूं की वक्तमे जान झोंकदे. पुक्त, पुस्ती, उंडी, खाई, शत्घनीयादी

शस्त्र युक्त उंच बुरजो, पक्का किल्ला बनावूं. धनुष्य बाण खड्गादी, अनेक शस्त्र, बक्तरोंका, संग्रह कर रखू, धनुर्वेदादी शिक्षा ग्रहण कर, शंग्राम विद्यामें प्रवीन बनू. कसरत, और औषधीयादीके सेवनसे, सरीरको पुष्ट मेहनती रखूं की, वक्तपे हारूं नही. इत्यादि उपायोंसे राज्य रक्षणकी चिंतवणा करे, सो भी विषय संरक्षण रौद्रध्यान

द्रव्यको जर्मनीयादीकी तीजोरीयोंमे रक्खू, जिस्से अग्नी, चोरादिकका उपद्रव न पहोंचे मेला गेहला रहूं, की जिससे कुटंब चोरादी धन हरने पीछे न लगे, किसीके साथ मोहब्बत न करुं की, वक्तपें किसीकी प्रार्थनाका भंग करना नही पडे, संकोचसे थोडेही खरचमें गुजरान चलावू. हलकी वस्तु वापरुं, इत्यादि उपायसे द्रव्यका रक्षण करुं, और स्त्रीयोंको पडदेमें रखू, खोजाओंका प्रहेरा, खान पान वस्त्र भुषणकी मर्यादा, कमी भाषण, और अपनी तर्फसे उन्हे संतोष उपजाके रखू. की-जिससे वो अन्यकी इच्छा न करे, स्वजन मित्रोंको खान, पान, वस्त्र, भुषण, स्थान, सन्मानसे संतोषूं की, जिससे वो वक्तपें पूरा काम देवे, मकानको सुधराइ सफाइसे रखूं की पडे नही इत्यादी प्रका-

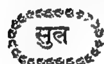
रसे संपती संततीके रक्षणका विचार करे, सो भी विषय संरक्षण रौद्रध्यान.

ऐसेही येह मेरा सरीर, रत्नोंके करंडीये से भी अधिक प्रियकारी है, इसको शीत उष्ण वर्षाऋतुमें. यथा योग्य वस्त्र, आहार, पाणी, मकान, से सुख देवूं, दंश, मच्छर, वगैरे क्षुद्र प्राणीयोंके भक्षणसे बचावूं शत्रुओंसे रक्षण करने, शस्त्र सुभटोका बंदोबस्त करुं क्षुध्याको इच्छित भोजनसे, त्रषाको शीतौदकसे, वात, पितादी रोगको औषधोपचारसे, मंलादीसें विलादीके उपसर्गसे रक्षण कर, इस सरीरको अखंड सुखी रखू. ऐसा विचार करे. तथा अपना गौरवर्ण–स्तेज (दमकदार) पुष्ट शरीर देख, खुशी होवे; और अभक्षादीसे पोषण करनेकी इच्छा करे. ओर शरीरके, स्वजन संम्बन्धीयोके संपतीके नाश करनेवाले जो हैं, उनपे द्रुष्ट प्रणाम लावे, उन्हे–देख क्रोधातूर हो जावे, उनके नाशके लिये अनेक उपायोंकी योजना (विचारना) करे. और अपना शरीर धन वगैरे दूसरेके तावेमें होय, उनको स्वतंत्र-करने अनेक कूयुक्तीयोंका जो विचार होवे. ये सब, विषय संरक्षण नामे रौद्रध्यान समजना.

ऐसे इस ध्यानके अनेक भेद हैं. परंतु सबका

तात्पर्य यह है की इस ध्यानमें विशेष कर. अपणा स्व-रक्षण और अन्यको परिताप उपजानेका विचार बना-रहै. इसालिये इसे रौद्र (भयंकर) ध्यान कहा है.

द्वितीय प्रतिशाखा-"रौद्रध्यानीके लक्षण"



रोद्दस्सण झाणस्स चत्तारि लरकणा पन्न-ता तंज्जहा, उसणदोसे, बहुलदोसे, अ-णाणदोसे, अमरणातदोसे.

अर्थम्-रौद्रध्यानीके ४ लक्षण, १हिंशादी पापोंका विचार करे, २विशेष (अखंड) विचार करे. ३अज्ञानीयोंके शास्त्रका अभ्यास करे. ४मृत्यू होवे वहां लग पापका पश्चाताप करे नहीं.

रौद्र=भयंकरही जिस ध्यानका नाम, उसका विचार, क्रतव्य, और स्वरुप भयंकर होवे, यह तो स्वभाविक हैं. विचार मगजमें रमण कर अक्रुती धारण कर, उसही कार्यमें प्रवृतने शरीरकी प्रेरना करताहैं.

रौद्र ध्यान (विचार) होनेसे, रौद्र कार्यके विषयमें जो प्रवृती होती है. उसके मुख्य चार भेद भगवानने फरमायें हैं

प्रथम पत्र–"उषण दोष."

१उषण दोष, सो हिंशा, झूट, चोरी, और विषय संरक्षण, इन ४हीकी पोषणताके लिये, जो जो काम करे सो उषण दोष. जैसें–हिंशाकी पोषणता (वृधी) करने. अनेक, पावडे, कोदली, खुरपे, वगैरे पृथवीको खोदने फोडनेके शास्त्रका संयोग मिलावे. अधूरे होय तो हाथालगा, धार सुधरा पूरे करावें, और पृथ्वी छेदन भेदनके आरंभमें उन्हे लगावे. एही पाणीके आरंभकी वृधीके लिये चडस, रेंहट, मशक या घडा, कलशा, वगैरे वृतनो. कूवा,वावडी,तलाव,नल,फुवारे,होद, आदी स्थान वणवाके पाणीका आरंभ करे करावे, अग्निके लिये चूले, भट्टी, दीवे, चिलमो, आतसबाजी, वगैरे करावे औरको उस काममें लगावे. हवाके आरंभके लिये, पंखी, पंखा, वाजित्र, वगैरे. हरीके आरंभकेलिये वाग, वगीचे, वाडी, इत्यादि लगावे. या पत्र पुष्प फल, त्रणादीका छेदन, भेदन, पचन, पाचन. भक्षण, करे करावे, त्रसके आरंभकेलिये धूम्रादिक प्रयोगसे मच्छर डांस,पटमल आदीकोमारे जाल फासासे जलचर,वनचर, खेचर आदीको कब्जे करे. तरवार भालादी शस्त्रसे छेदन भेदन ताडन तर्जन करे. मनुष्य पस्यूको कठिण

(घाव पडजाय) ऐसे बंधनसे बांधे, कठोर प्रहार करे अहार पाणीकी अंतराय देवे अंगोपांग छेदन भेदन करे. सत्ता उप्रांत काम लेवे. मेहनत करावे. सदा निर्दय होके, अयत्नासे एकांत स्वार्थ साधने, या विना, कारण अन्यको संताप उपजाने, वरोक्तादी जो जो कृतव्य करे, उसे रौद्र ध्यानी समजणा-

ऐसेही—झूटका पोषण करने अनेक पाप शास्त्र-काम शास्त्र, कांदम्बरी, पठन करे, झूटे झगडे जीतने अनेक चालाकोंकी संगत, व कायदे—कानूनोका अभ्यास, करे, झूटे ख्याल कविता बनावे, चकार, मकारादी गालीका उच्चार करे, विभत्स (अयोग्य) शब्द बोले, निडर, निर्लज होके प्रवृते ऐसेही चोरीकी पुष्टीके, लिये, चोरोंके शस्त्र, कोश, कुद्दाल, गुती, वगैरे सग्रह करे, चोरी कलाका अभ्यास करे. गोआदि जानवर पाले, चोरोंकी सगतमे रहे, धाडापाडे, चालाकीसे अन्यका माल हरण करे, और विषय संरक्षणके पोषणकेलिये, श्रोतेंद्रीके पोषणके लिये मृदंगादी बणाने जीवते पशू-वोका चर्म (चमडा) निकलावे सारंगीयादी बनाने गवादीकी आंतो (नशो) तोडावे, चक्षू इन्द्रीके पोषण को श्रगार, रसुम्री, सजाने, सुवर्ण रत्नोंके अनेक

आगरों (खदानो) मोतीयोंके लिये, बेंद्री सीपोंको चिरावे, सण, कापासादी, पिलावे, कतावे, गिरनीयादी द्वारा वस्त्रादी बनवावे, अनेक श्रंगारसजे, या स्त्रीयादी को श्रंगारके उनके नाटक ख्यालादी देखे. वगीचादी लगावें. घणेद्रीके पोषणे,यंत्रादी प्रयोगसे अत्रादी निकलावे पुष्पादी सुगंधी द्रव्यका सेवन करे, पुष्पवटिकादी वनाके उपभोगलेवे, रसेंद्री पोषणे, मंदिरा, मंस, भोगवें. कंद, मूल, आदी अभक्ष खावे, पोष्टिक उन्मादिक वस्तुका सेवन करे, रसायन भस्मादी सेवन करे, वंदेजकी गुटिकादी सेवन कर महा कामी बने, स्फर्शादी के पोषणे, अनेक पुष्पादी सेजका सयन, उत्तम वस्त्र भुषणोसे श्रृंगार सज, हार, तुर्रे, अंतर, पुष्पादीसे सरीर सज, चूंचूं करती पगरखीयों पहर, अकड मकड चले, वैस्यादी नृत्यमें अगवानी भागले गान तानमें गुलतान वन तान तोडे. मशगुल वन जावे, काम्के चौरासी असनोकी तसवीरों का वारंवार अवलोकन करे, इत्यादि तरह पचेद्रीके पोषणके लिये जो उपायोकी योजना करे, उसे उसन दोष नामे रौद्रध्यानी समजना.

द्वितीय पत्र-"बहुल दोष."

"बहुल दोष" सो. वरोक्त इन्ही कामोको

विशेप करे अर्थात ज्यो ज्यो करे त्यों त्यों ज्यादा २ इच्छा वडती जाय. और इच्छा को त्रप्त करन अधिक २ कर्ता जाय, परंतु त्रती आय ही नहीं, उसे वऊल दोप कहना.

तृतीय पत्र-"अज्ञान दोष."

३ "अणाण दोप" सो- रौद्रध्यानका स्वभावही है, के वो उत्पन्न होता तुर्त सज्ञानका नाशकर, जिवको अज्ञानी मुढयना देता हैं. सूकार्यसे प्रिती उतार, कुकार्यमें संलग्न कर (जोड) देता हैं. सत्शास्त्र श्रवण, सत्संगमे अप्रिती अरुची होती है, और २९ पाप सूत्रोके* अभ्यासमे प्रिती होवे. विपयमें प्रवृति करावे, ऐसी कवीता, कल्पित ग्रंथो, कोकशास्त्र, वगैरे पढे सुणे, और कूशास्त्रकी, जिसमें हिंशा झूट, चोरी, मैथुन, वगैरे पाप सेवनमें निर्दोपता वताइ होय, उनका तथा वसीकरण, उच्चाटन, अकर्पण, स्थभनादी विद्याका अभ्यास करे गालीयों गावे, ठठा, मस्करी करे. पुरुपोको स्त्रीयोके वस्त्र भुपण पेहरायके, नृत्य, गान, कुचेष्टा करावे; दयामय उत्तम

---

* २९ पापसूत्र—१भूमीकंप, २उत्पात, ३स्वपन, ४अगफरुकनेका, ५उल्का पातका, ७पक्षीयोंके श्वरका [कोक] ७व्यजन तिलमसका, ८लक्षणासामुद्रिक इन ८ के अर्थ-पाठ, और कथायों ८—३=२४ और २५ कामकथा, २६ विद्या रोहणादी २७मंत्र, २८तंत्र, २९अन्यमतीके आचारके

धर्मको त्याग,हिंशाधर्ममें राचे,कामी,कपटी,लोभी,कन्क कन्ता धारी, स्त्रीके भोगी, धूप पुष्प अतर अवीरादी की सुगंधमें मस्त रहने वाले, सचित अहारी या मांस मदीरा भोगवने वाले, रंगी वे रंगी वस्त्रो और भूषणासे सरीरको श्रंगारने वाले, रुष्ट हुये नाश करे, और तुष्ट हुये इच्छा पुरे, ऐसे राग द्वेषसे भरे हुये; इत्यादी अनेक दुर्गुण धारीको देव गुरु जानके माने पूजे, भक्ती करे. त्यागी, वैरागी, शांत, दांत, वितरागी देव गुरुका त्याग करे. अपमान करे, इन्द्रीयों और कषायकी पोषणतामें धर्म और आत्माका कल्याण समजे, सच्चे कामोपर अरुची, और कूकामो पर रुची जगे, ये सब अणाण दोष (अज्ञान दोष) नामे रौद्रध्यानीके लक्षण जाणना.

चतुर्थ पत्र "अमरणांत दोष"

४ "अमरणांत दोष सो"—रौद्रध्यानीका वज्र जैसा कठिण हृदय होता है, दुसरेके सुख दुःखकी उसे विलकुलही दरकार नहीं रहती है, वो फक्त आपनाही सुख चहाता है, अपनेंसे अधिक दूसरेको देख दुःखी होवे, और उसके यश सुख का नाश करने अनेक उपाय करे निर्दयता क्रूर प्रणामसे त्रस थावरका वध (घात)

करे. उनको त्रासते तडफते देख खुशी होवे ज्यादा २ सताप उपजावे. निडर निष्टूर, पाप-अकार्य करता बिलकूल अचकाय नही, झूट बोलता डरे नही, चोरीसे हटे नहीं. मैथुन क्रियामें अती आशक्त (लुब्ध) परिग्रहकी अत्यत मुर्च्छा, क्रोध, मान, माया लोभ, की अति प्रबलता राग द्वेषका घर महा क्लेशी, चुगलखोर, गुणीके गुणको ढांकनेवाला. उनके सिर खोटा आल (वज्जा) देनेवाला, अपनी वस्तुपे अत्यत प्रेमी दूसरेकी वस्तुका अत्यंत द्वेषी, दगाबाज, उपर मीठा और मनमे चीठा कुगुरु, कुदेव, कुधर्मपे श्रधा, प्रतीत, आसता रखनेवाला, इत्यादि अष्टादश (१८) पापमें अनुरक्त, धर्मका नाम मात्र अच्छा नहींलगे, मृत्युके बीछोनेपे पडा (मृत्यु नजीक आयेपर) भी, अपने किये हुये कर्मका बिलकुलही पश्चाताप नही होवे, ऐसा कठोर, घर कुटंबमही अत्यंत लुब्ध, ऐसे भावसहीत प्राण छोड (मरके) अन्यगतीमे सिधावे सो अमरणांत दोष नामे लक्षण जाणने

"रौद्रध्यानके पुष्प और फल"

रौद्रध्यानीके सदा क्रूर प्रणाम रहते हैं. मद मत्सरसे पूर्ण हृय भरा होता हे अहो निश पापिष्ट

विचारही मनमें रमण करता हें, जिससे वज्र कर्मोंका वंध सदा होताही रहता हैं. इसकी आतमामें धर्म कर्म विलकुल नहीं वनता हे. जो देखा देख किया भी तो, क्रूर प्रकृतीके सववसे उसका अच्छा फल नष्ट होजाता हैं. हाथमें कुछ नहीं आता हैं, अर्थात् इसके विचारसे कुछ होता नहीं हैं. होण हार होतव तो हुवाही रहता है. परंतु उसके मलीन प्रणामसे उसके कर्मोंका वन्ध अवस्य पडताहे. और उन कनिष्ट कर्मोंका वदला देने, रौद्रध्यानीकी नर्क गती होती हैं. वहां यहांके किये हुये कर्मोंके फल भुक्तता हैं! परमाधामी (यम) देव, हिंशा करनेवालेकों, जैसी तरह उसने हिंशा करी होय, वैसेही वो मारते हैं. अर्थात् काटनेवालेको काटते हैं. छेदनेवालेका छेदन भेदन करते हे. सीकारीका तीरोसे सरीर भेदते हैं. सिह सर्पो, विच्छू, कीडे, मच्छर वगैर क्षुद्र जीवोंके घातकका, क्षुद्र जीवोंके जैसा रुप धारण कर, उसे चीर फाड खाते हैं. मांस भक्षीको उसका मांस तोडके खिलाते है. मदिरा पानीको, उकलता २ सीसा, तरुवा, तांवा पिलाते हैं. विषय लुब्धीको, अग्न मय लोह पुतलीके साथ संभोग कराते है रागीणियोंके रसीयेके कान, रुप लुब्धकी आंख विलासीका नाक जिभ्याके लोलुपी की जीभ्याका

छेदन भेदन करते हैं. ताते खारे पाणीसें भरी हुइ 'वे-तरणी' नदींमे न्हलाते हें. तरवारकी धारसेभी अती तिक्षण पत्र वाले सामली वृक्ष, तले वेठाके हवा चलाते हैं कुंभी पाकमे पचाते हैं. कसाइयोकी तरह सरीरके तिल २ जित्ले टूकडे करते हैं. इत्यादि कर्म उदय आते हे तब* सागरो वंध तक रो २ के दुःख भोगवते हैं. छूटने मुशकल होजाते हे ऐसा ये रौद्रध्यान दोनो भ-वमें रौद्र (भयंकर) दुःख दाता जाणना

रौद्रध्यनीके चऊदा कृष्ण लेस्या मय प्रणाम रह-ते है. ये हिंशा, झूट, चौरी, मैथुन, परिग्रह ये पच आ-श्रव तथा मिथ्यात्व, अवृत, प्रमाद, कषाय, असुभ जोग ये पंच अश्रव, का सेवने वाला. ज्यूने कर्मके फल भोग-वता अशुद्ध प्रणामके योग्य सें पीछा वैसेही कर्मोंका वंध करता हे यो भवांतरकी श्रेणीमें परिभ्रमण कि-याही करता हे रौद्रध्यानीका ससारसे छुटका होना व-हुतही मुशकिल हे अनंत संसार रुलता हे. इस लिये ये रौद्रध्यान 'हेय' त्यागने योग्य हे

* चार कोशका उडा और चौरस कुवमें. द्रव कुरुक्षेत्रके जु गलीयोंके वाल अॅखमे डालनही खटके ऐसे, वारीक कतरके ठमो ठम भरे और सोसा वर्षमे एकेक रज निकालते वो साफ खाली होजावे, उस वर्षका एक पल्योपम होता है और दशकोडा कोडीकुवे खाली होवे उतेवर्षका एक सागरोपम होता है,

अच्छा मालम पडे उसेही अङ्गीकार करे, स्विकारे.

अशुभ ध्यानमें प्रवृती तो विना प्रयास स्वमाविक रीतसेही होती हैं. क्यों कि उसका अनादी सम्बंध है. परंतु शुभध्यानमें प्रवृती होनी वहुतही मुशकिल हैं. क्यों कि कोइभी शुभ कार्य सहजमे नहीं वनता हैं, शुभ ध्यानके लिये अव्वल सम्यक्त्वकी जरूर है, क्यों कि सम्यक्त्वी ही शुभ ध्यानमें प्रवेश करने स्मर्थ होते हैं. इस लिये अव्वल ह्यां सम्क्त्वकी दुर्लभता वताते हैं.

सम्यग दर्शन उपजता हैं सो, अनादी वासादी मिथ्यात्वीके उपयता है परन्तु सज्ञी-पर्यासा-मंदकषाइ भव्य-गुण दोपके विचारयुक्त सकार उपयागी (ज्ञानी) और जग्रत अवस्था वाला, इन गुणयुक्तको सम्यक दर्शनकी प्रासी होती हैं; परं इनसे उलट, असज्ञी अप्रर्यासा तीव्रकपायी अभव्य दर्शना उपीयोगी, मोह निद्रासे अचेत और समुर्छिम, इनको नहीं उपजता हे, और पचत्रो करण लव्धी भी जो उत्कृष्ट-करण लव्धी अनिवृती करण, उसके अंत समयमे प्रथम उपशम स-

प्रगट होता हे,

"पचलब्धी"

१क्षयोपशमलब्धी, २ विशुद्धलब्धी, ३ देशना लब्धी, ४प्रयोग लब्धी, और पमी करण लब्धी, इन पंच लब्धीयोंकी यथाक्रम प्राप्ती होणेसेही, सम्यक दर्शनकी प्राप्ती होती हैं चार लब्धी तो कदाचित भव्य तथा अभव्य के भी होती हैं. परन्तु करण लब्धी तो जो सम्यक्त्व और चारित्र को अवस्य प्राप्त होने वालें हे उन्हेही होवेंगा.

अब "पंचलब्धीका स्वरूप" बताते हैं

१ जिस वक्त ऐसा जोग बनें की, जो ज्ञानावर्णियादिक अष्ट कर्मकी सर्व अप्रसस्त प्रकृतीकी शक्तीका जो अनुभाग. सो समय २ प्रते अनंत गुण कमी होता, अनुक्रमें उदय आवे; तब क्षयोपशम लब्धीकी प्राप्ती होवे २क्षयोपशम लब्धीके प्रभाव से जीवके साता वेदनिय आदी, शुभ-प्रकृतीके बन्धका कारण, धर्मानुराग रूप, शुभ प्रणामकी प्राप्ती होय, सो दूसरी विशुद्ध लब्धी. ३ छे द्रव्य नव पदार्थका स्वरूप, आचार्यादिकके उपदेश से पेछाणे, सो देशना-लब्धी†

---

* अशुभ कर्मोंका रसोदय कमसें कम प्रणाम की हानी होय, तब विशुद्ध प्रणाम की वृद्धी स्वभावसे होता है

† नर्कादी स्थानमें उपदेशक नहीं है वहां पूर्व जन्मके धारे तत्वके संस्कार सें सम्यक्त्व होता है

यह तीन लब्धी कर संयुक्त जीव, समय २ विशुद्धता की वृधी कर, आयू विन सात कर्मकी, अंतः कोटा कोटी सागर मात्र स्थिती रहे; उस वक्त जो पूर्व स्थिती थी, उसे एक कांडक घात (छेद) कर उस कांड के द्रव्यकी, शेष रही हुइ स्थिती, विशेष निक्षेपण करे, और घातिक कर्मका, अनुभाग (रस) सो काष्ट तथा लता रूप रहै, परं शैल (प्रवत) स्थिती रूप नहीं. और अघाती कर्मका अनुभाग, नींव या कॉजी रूप रहे. परं हलाहल विष रूप नहीं. पूर्वे जो अनुभाग था उसे अनंत का भाग दे, बहुत भाग अनुभागका छेद, शेष रहा अनुभाग विषय प्राप्ती करें है. उस कार्य करनेकी योंग्यताकी प्राप्ती, सो "प्रयोगता लब्धी"* और भी संक्लेश प्रणाम, सज्ञी पंचेन्द्रि पर्याप्ताके जो संभवै, ऐसे उत्कृष्ट स्थिती बन्ध, और उत्कृष्ट स्थिती अनुभाग का सत्व होतें, जीव के प्रथम उपसम सम्यक्त्व नहीं ग्रहण होवे हैं. तथा विशुद्ध क्षपक श्रेणी विषे संभवते, ऐसा जघन्य स्थिती बन्ध, और जघन्य स्थिती अनुभाग प्रदेशका सत्व होतें भी सम्यक्त्व की प्राप्ती नहीं होवें, प्रथम उपशम सम्यक्त्व के सन्मुख हुवा जो

* यह प्रयोगता लब्धी भव्य अभव्यके सामान्य होवे है

मिथ्या द्रष्टी, सो विशुद्धताकी वृधी कर, वधता हुवा प्रयोग लब्धीके प्रथम समयसे लगाके, पूर्व स्थिती के संख्यातवे भाग मात्र, अंतः (एक) कोटा कोटी सागर प्रमाण, आयुष्य विन सात कर्मका स्थिती वन्ध करे है, उस अंत. कोटा कोटी सागर स्थिती बन्धके, पल्य के संख्यात वा भाग मात्र कमी होता, स्थिती वन्ध अंतर्मुहूर्त प्रयंत सामान्यता केलिये करे हैं, ऐसे क्रमसे संख्यात स्थिती बंध श्रेणि करप्रथक (७०० तथा ८००) सागर कम होवे हैं, तव दूसरा प्रकृती वन्धाय श्रेणिस्थान होवे, ऐसेही क्रमसें इत्ना स्थिती वन्ध कमी करते, एकेक स्थान होए. यों बन्धके ३४ *श्रेणी स्थान होते हैं इससे लगाके प्रथम उपशम सम्यक्त्व तक बंध नही होवे, (ह्यांतक चौथी लब्धी) ५ पांचमी करणलब्धी सो भव्य जीवकेही होती हैं, इसके ३ भेद-१ अध.करण, २अपूर्व करण, ३अ निवृती करण† इनमें अल्प अंतर महुर्त प्रमाणे काल तो, अनिवृतीकरण का है, इससें सख्यात गुणाकाल, अपूर्व करणका, और इससे सख्यात गुणाकाल, अधःप्रवृती करणका होता है,

* इसका विशेप खुलासा लब्धी सार ग्रन्थमें है

† वरण कपाय की मदता को कहते हे

सो भी अंतर महुर्त प्रमाणे ही हैं‡ और भी इस अधः प्रवृती करण कालके विषय, अतीतादी त्रिकाल वृती अनेक जीव समंधी, इस करणकी विशुद्धता रूप प्रणाम असंख्यात लोक प्रमाणे है, वो प्रणाम,, अधः प्रवृती करणके, जित्ने समय हैं. उत्नेमें सामान वृधी लिये, समय २ मे वृधी होतें हैं, इससे इस करणके नीचेके सम्यके प्रणामकी संख्या और विशुद्धता, उपर के समय वर्ती किसी जीवके प्रणाम सें मिले हे, इससे इसका नाम अधःप्रवृतीक है. इस अधः प्रवृति करण के चार आवश्यक—१समय २ प्रते अनंतगुण विशुद्धता की वृधी. २ स्थिती वंन्ध श्रेणी, अर्थात् पहले जित्ने प्रमाण लिये कर्मका स्थिती वन्ध होताथा, उसे घटाय २ स्थिती वंध करे. ३ साता वेद निय आदी दे प्रसस्त कर्म प्रकृतीका समय २ अनंतगुण वृद्धी पाते; गुड, सक्कर, मिश्री और अमृत, समान चतुस्थान लिये अनुभाग वन्ध है.-५असाता वेदनीआदी अप्रसस्त कर्म प्रकृती, समय २ अनंतगुण कमी होती नींब, कांजी, समान द्वि स्थान लिये, अनुभाग वंध होता है, परन्तु हलाहल जेसा नहीं. यह ४ आवश्यक जाणने.

‡ अंतर महुर्त के भेद असंख्य हैं

२ अधः प्रवृती करणका अंतर मुहुर्त काल व्य- तीत भये, दूसरा अपूर्व करण होता है. अधः करणके प्रणाम सें, अपूर्व करणके परिणाम असख्यात लोक गुणें हैं, सो बहुत जीवोंकी अपेक्षा सें; परन्तु एक जी व की अपेक्षासें तो एक समय मे एकही परिणाम हो- ते हे; और एक जीवकी अपेक्षासें तो, जित्ने अतर महुर्त के समय है, उत्नेही होते हैं ऐसेही अधः करण के भी एक समय में एक परिणाम होवे है और ब- होत जीवकी अपेक्षासे असंख्य परिणाम जाणने. अ- पूर्वकरणकेभी परिणाम समय २सदश कर वृधमान होते हैं. इस अपूर्वकरणके परिणाममें नीचेके समयके परिणाम तुल्य, उपरके समयके प्रणाम नही हैं. प्रथम समयकी उत्कृष्ट शुद्धतासे, द्वितीय समयकी जघन्य शुद्धता अनंत गुणी है. ऐसे परिणामका अपुर्व पणा है इसलिये इस- का अपूर्व करण नाम है.

अपूर्व करणके पहले समय सें लगाके अंत स- मय तक अपने जघन्यसे अपना उत्कृष्ट, और पूर्व सम यके उत्कृष्टसे उत्तर समय के जघन्य, यो कर्मके परि- णाम अनंतगुणी विशुद्ध लिये, सर्पकी चालवत् जाणना ह्यां अनुत्कृष्टी नहीं हैं अपूर्व करणके पहले समयसे लगाके जावत् सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी

पूर्ण काल जो जिस कालमें गुण संक्रमण कर, मिथ्यात्व को सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी, रूप प्रगमावे, उस कालके अंत समय पर्यंत. १गुणश्रेणी, २गुणसंक्रमण, ३स्थिती खंड, ४ और अनुभाग खंडन, यह चार आवश्यक होवै. और भी स्थिती वंध श्रेणी है सो अधः करण के प्रथम समय सें लगा. गुण संक्रमण पूर्ण होनेके कालपर्यंत होवे है. यद्यपी प्रयोग लब्धीसे ही स्थिती-बन्धाके श्रेणी होती है, तथापी प्रयोग लब्धीसे सम्यक्त्व होनेका अनवस्थित पना है, यह नियम नहीं; इसलिये ग्रहण नहीं किया. और भी स्थिती बन्ध श्रेणीका काल, और स्थिती कांड कान्डोत्करणका-काल यह दोनी सामान अंतर मुहुर्त मात्र हैं. वहां पूर्व वंधाथा ऐसा सत्तामें कर्म परमाणु रूप द्रव्य उसमेसें निकाले, जो द्रव्य गुण श्रेणीमे दीये, उस-गुण श्रेणीके कालमे समय २ मे असंख्यात गुणा अनुक्रम लिये पंक्ती वंध जो निर्जरा का होना, सो गुण श्रेणी निर्जरा हैं २और भी समय २ प्रते गुणाकारका अनुक्रम ते विविक्षित प्रकृती के प्रमाणु पलट कर,अन्य प्रकृती रूप होके प्रणमे सो गुण संक्रमण. ३पूर्व बन्धीथी वो सत्ता मे रही कर्म प्रकृतीकी स्थितीका घटाना सो स्थि ... ७ है. ४और पूर्व बन्धे थे, ऐसे सत्तामे रहा

हुवा अशुभ प्रकृतीका अनुभाग घटाना, सो अनुभाग खन्डन. ऐसे चार कार्य अपूर्व करणमें अवश्य होतेंहै.

अपूर्व करणके प्रथम समय सम्बन्धी, प्रसस्त अप्रसस्त प्रकृतीका जो अनुभाग सत्व हैं, उससे उसके अंत समय विषे, प्रसस्त प्रकृतीका अनंतगुण वृधी होता, और अप्रसस्त प्रकृतीका अनंतगुण कमी होता, अनुभाग सत्व होते हैं; सो समय २ प्रती अनंतगुण विशुद्धता होनेसे, प्रसस्त प्रकृतीका अनंत गुणा अनुभाग कान्डका महातम कर, अप्रसस्त प्रकृतीके अनंतमें भाग अंत समयमें संभवता है*

ऐसे अपूर्व कर्ण विषय कहे, जो स्थिती कान्डादी कार्य, सो विशेष तों तीसरे अनिवृती करण विषय जाणना. विशेष इत्ना, ह्या समान समय वर्ती अनेक जीवके सदृस प्रणामही हैं इस लिये जित्ने अनिवृती करणके अंतर महुर्तके समय हैं, उत्नेही अनिवृती करणके प्रणाम हैं इससे समय २ प्रते, एकेकही प्रणाम हैं, और जो ह्यां स्थिती खन्डन, अनुभाग खन्डादिकका प्रारंभ औरही प्रमाणे लिया होता हैं, सो अपूर्व करण सम्बंधी जो स्थिती खंडादिक उ-

* इन स्थिती खन्डादी होनका विशेष अधीकारभी है परतु ग्रन्थ गौरवके लिये नहीं लिखा

सके अंतः समयही समाप्त पना हुवा.*

यहां यह प्रयोजन है की जो अनिवृती करणके अंत समय विषे, दर्शन मोहनी और अन्तान बन्धी चतुष्क, इनकी प्रकृती स्थिती, प्रदेश, अनुभाग, का समस्त पने उदय होनेंकी. अयोग्यता रुप उपसम होनेसे, तत्वार्थकी श्रधान रुप सम्यक्त्व होता है वोही उपशमिक सम्यक्त्व है.

यह भाव चौथे गुणस्थान वर्ति जीवके जाणना, यो आगे अप्रत्याख्यानी चतुष्कका उपशम होनेसे, इच्छा निरूंधन, अल्पारंभ, अल्प परिग्रह, शुद्धवृती, संवेगी, कल्प उग्रह विहारी, उदासीनतादी गुणोकी अधिकता होती है, आगे प्रत्याख्यानीके चतुष्कका उपशम होनेसे, साधुत्व, संयमत्व, तपवृती, समिती गुप्ती, परम वैराग्यतादी गुणोंकी वृधी होते, शुभ ध्यान करनेकी योग्यताको प्राप्त होता हैं.

अन्तान बन्धीके उपशमसे अप्रत्याख्यानीवाले, अप्रत्याख्यानीके उपशमसे प्रत्याख्यानीवाले, प्रत्याख्यानीके उपशमसे संज्वल कषायके चतुष्क उपशमवाले. और इन अकषाइध्यानके मार्गमे अधिक २ विशुद्धता सरलता, प्राप्त करते आगे बढे है.

* यह अन करण त्रिपका खुलासा लब्धी सार ग्रथमें अच्छा है

यह सम्यक्त्वी, देशवृती, और सर्ववृती, कर्मो के उपशम क्षयोपशम, व क्षायकताके योग्यसे निश्चय मे प्रवृती करसक्ते हैं और इन सिवाय ज्ञानारणव ग्रन्थमें ध्यानीके ८ लक्षण कहे है—

श्लोक — मुमक्षुर्जन्म निर्विण्ण शान्तचितोवशीस्थिर; जिताक्ष संवृतोधीरो, ध्याता शास्त्रेप्रशस्यते

अर्थ १ मुमुक्षु आर्थत् मोक्ष जाने की जिसे अभीलापा होवेंगा वोही ध्यानका कष्ट सहेगा, आत्म निग्रह करेगा. २ विरक्त-जिनका पुग्दल प्रणित सुखोंसे वृती निर्वृती है. उन्हीके प्रणाम ध्यानमें स्थिरता करेंगे, ३ शांतवृती-जो परिसह उपसर्ग उपनेशात प्रणाम रखेंगे, वोही ध्यानका यथातथ्य फल प्राप्त कर सकेंगे, ४ स्थिरस्वभावी जो मनादी योगोका कुमार्ग से निग्रह कर, ध्यानमे वृतीको स्थिर करेंगे, वोही ध्यानी हो सकेंगे, ५ स्थिरासनी जिसस्थान ध्यानस्थ हो, वहांसे चल विचल न करे, व ध्यानके कालतक आसन बदले नही, वोही सिद्धासनी कहे जाते हे जितेंद्रिय श्रोतादी पच इंद्रियोंको, शब्दादी पचविपयसें, रागद्वेषकी निर्वृती कर, धर्म मार्गमें संलग्न करेंगे, वोही ध्यान सिद्धीको प्राप्त होवेंगे ७ संवृतातमा जिन्नने अपणी अंतर आत्मको संवृत कर, हिंसादी पंचाश्रा-

वसे निर्वारी, अहिंशादी पंचमहावृत स्विकार किये, तथा अनादी प्रणाति रूप संसर्ग कर, जो अंतःकरणकी वृतीकों विकार मार्गमें प्रावृती कराती हे, उन वृतीयोको अंतरिक ज्ञान, आत्माकी प्रवल प्रेरणा कर निवृताइ, खान पानकी* लोलुपता त्यागी, वोही ध्यान सिद्धी कर सकेगे. ८ धीर होय—अर्थात् ध्यानस्त हुये फिर, कैसाभी कठिण परिसह उपसर्ग आनेसे, बिलकुल प्रणामोंको चल विचल नहीं करे. क्यों की ध्यानमें परवेश करते पहले "अप्पाणं वोसी रामी" अर्थात् में इस सरीरकों वोसीराता हूं. इसकी ममत्व छोडता हूं. यह सरीर मेरा नहीं, में इसका नहीं, ऐसा कहके वेठतें हैं; तो जव यह सरीर अपनाही नहीं, तो फिर इसका भक्षण करो, दहन करो, या छेदन भेदन करो, कुछभी करो, अपनको क्या फिकर. ऐसा निश्चय होय, तवही ध्यानकी सिद्धीको प्राप्त हो सक्ता

---

* एकदम लुलुप्त घटनी मुशकिल है, इस लिये थोडी लुलुप्ता घटांनका सदा अभ्यास रखना चाहीये, जैसे यह वस्तु नहीं खाइता क्या वह वस्त्र नहीं पहरा तो क्या यह काम अव्वल तों मुशकिल लगेगा परंतु फिर सहज होजायगा यो सर्व वस्तु उपरसे लुलुप्ता घटानेकी यह वहुत सहजकी रीती हैं. ऐसे करनसे कोइ वक्त निर्ममत्वनाको प्राप्त होसक्ते है

है. ध्यान किया सो कर्मका क्षय करने किया, और कर्मका क्षयतो विना उपसर्ग, विना दुःख देखे नही होता है. जो परिसह उपसर्ग पडेहे, वो, कर्मका क्षय करनेही पडे है. ऐसे कर्ज चुकाती वक्त, पीछा नहींजहटना. ऐसा द्रढ निश्चयसे धैर्य धारणसेही ध्यान सिद्ध होता हैं इन आठगुणोके धारण हारही ध्यान सिद्धीको प्राप्त होते हे, एसा जाण शुभध्यान करनेवाले मुमुक्षु जनोको पहले अष्टगुण क्रमसे अभ्याससे प्राप्त करने चाहीये.

द्वितीय उपशाखा-"शुभध्यान विधी."



क्षेत्र द्रव्य काल भाव यह, शुभाशुभ यवसु जान, अशुभ तजी शुभ आचरी, ध्या ध्याता धर्म ध्यान.

१ क्षेत्र, २ द्रव्य, ३ काल, और ४ भाव, यह ४ शुभ अच्छे, और ४ अशुद्ध, खोटे. यो ८ भेद होते हे. जिसमेंसे ४ अशुद्धको त्याग कर, शुद्धका जोग मिलाके हे ध्यान ध्याताओ शुद्ध-धर्मध्यान ध्यावो.

कोइभी काम यथाविधी करनेसे इष्टितार्थ को-

य सिद्ध करता हैं. इस लिये ह्यां मोक्ष प्राप्त रूप कार्यकी सिद्धी करनेवाला ध्यान हैं. उसके करनेकी विधीका वर्णव करते हैं.

ध्यानसे मनको स्थिर करने क्षेत्र. द्रव्य. काल. भावकी शुद्धीकी वहुतही जरूर हैं. अव्वल क्षेत्रकी शुद्धाशुद्धी वताते हैं.

प्रथम पत्र "क्षेत्र"

१ 'अशुद्ध क्षेत्र'–दुष्टराजाकी मालकीका क्षेत्र, अधर्मी, पखंडो, म्लेछ, कुलिंगी रहते होये; ऐसे क्षेत्रमें रहनेंसे उपसर्ग उपजनेका संभव हैं. जहां पुष्प, फल, पत्र, धूप, दीप. या मदिरा, मांस, ऐसे स्थानमें मन चंचल होनेका संभव है. जहां विभचारी स्त्री पुरुष क्रिडा करें, चित्राम किये होवें. काम क्रिडाके शास्त्रों का पठन होता होय. नृत्य, गायन, होते होय. वाजिंत्र वजते होय. ऐसे स्थानमें, वीकार उत्पन्न होनेका संभव हैं. जहां युद्ध=मल कुस्तीयां लडाइ झगडे होतें होय. झगडेके शास्त्र पडते होय. पंचायती करते होय, वहां विखवाद होनेका संभव हैं. जहां अन्यके प्रवेश करनेकी मालिकादिकने मना करी होय, वहां रहनेसे चोरी, क्लेश, ओर मध्यमे निकालनेका संभवहे. जहां



हेदी रहते होय, मद्य मास (दारु) ो रहता होय, सिल्पिक (कारीगर हार, रंगारे, इत्यादी) रहते होय. उपर्ग होनेका सभव है. जहां नपुशक. पशू छनी, भांड, नट, खट, इत्यादि अयोग्य हां, अप्रतीत होनेका संभव हैं इत्यादि ान वर्जके ध्यान करे.

२ 'शुभ क्षेत्र'=निर्जन स्थान–जहां विशेष मनुष्यादीकी वस्तीया, आवा गमन न होय. समुद्रके, तथा नदीके तट (किनारे) पर, वृक्षोके समोहमें,* वेलीके मंडपोमें, प्रवतोकी गुफामे, स्मशाणोकी छत्रीयोमे, सूखे झाडकी कोचरमे, शुन्य ग्राम या शुन्य गृह (घर) मे, वरोक्त (जो अशुद्ध क्षेत्रमे कही उन) वावतोसे वर्जित, देवालयमे इत्यादि स्थान फ्रासुक (निर्जीव) होय, वहां ध्यान करने योग्य स्थान है चितमे समाधी (शांती) रहती है

द्वितीय पत्र–"द्रव्य."

३ 'अशुभ द्रव्य'–जहां अस्थि, मांस, रक्त, चर्म

* अफोव मडवामि झायइ झोवियासवे–उत्तराध्येय १८ अर्थ–अफाव (नागरवेल) के मडपमें ध्यान ध्याते है. आश्चर्यकी क्षपाक

घ सिद्ध करता हैं. इस लिये ह्यां मोक्ष प्राप्त रूप कार्यकी सिद्धी करनेवाला ध्यान हैं. उसके करनेकी विधीका वर्णव करते हैं.

ध्यानमें मनको स्थिर करने क्षेत्र. द्रव्य. काल. भावकी शुद्धीकी वहुतही जरूर हैं. अव्वल क्षेत्रकी शुद्धाशुद्धी वताते हैं.

प्रथम पत्र "क्षेत्र"

१ 'अशुद्ध क्षेत्र'–दुष्टराजाकी मालकीका क्षेत्र, अधर्मी, पखंडी, म्लेछ, कुलिंगी रहते होये; ऐसे क्षेत्रमें रहनेंसे उपसर्ग उपजनेका संभव हैं. जहां पुष्प, फल, पत्र, धूप, दीप. या मदिरा, मांस, ऐसे स्थानमें मन चंचल होनेका संभव हैं. जहां विभचारी स्त्री पुरुष क्रिडा करें, चित्राम किये होवें. काम क्रिडाके शास्त्रों का पठन होता होय. नृत्य, गायन, होते होय. वाजिंत्र वजते होय ऐसे स्थानमें, वीकार उत्पन्न होनेका संभव हैं. जहां युद्ध=मल कुस्तीयां लडाइ झगडे होतें होय. झगडेके शास्त्र पडते होय. पंचायती करते होय, वहां विखवाद होनेका संभव हैं. जहां अन्यके प्रवेश करनेकी मालिकादिकने मना करी होय, वहां रहनेसे चोरी, क्लेश, और मध्यमें निकालनेका संभवहै. जहां

तीन अंगलीयो [तर्जनी, मध्यमा, अनामिक*] के नव चेडे (सन्धरिखा) को वारे वक्त गिणनेसे १२-९=१०८ एकसोआठ होते हें. सोही उत्तम हे ‡ और माला तो-मध्यम तथा कनिष्ट गिनते हे. ध्यानीको ध्यानमे स्थिर होते, नशाग्रद्रष्टी मेखोन मेख स्थिर कर चित्रकी मूर्तीके जेसा स्थिर हों, निश्चल हो. मुख फाडको ढीली छोड, चितको सर्व व्याधी सर्व विकल्पसे मुक्त कर बेठनेसे, ध्यानकी सिद्धी शुलभतासे होनेका सभव हे.

तृतिय पत्र-"काल"

५ 'अशुभ काल'-† पहला, दूसरा, और तीसरा आरा, माठेरा, (कुछकमी) तथा छहा आरा, इन में धर्मीजनोके अभावसे ध्यान होनेका कम सभव हैं. और भी अती उष्ण काल, अती शीत काल अती जीवोत्पतीका काल. दुष्काल विग्रह काल रोगग्रस्त काल, इत्यादी काल ध्यानमे विग्रह करनेवाले गिणे जाते हैं.

६ 'शुभ काल'-ध्यानके लिये सर्वोत्तम काल

* कानष्टा (छोटी अगुली) और अंगुष्ट छोडके

‡ इसेही नोकरवाली कहते हैं नकी सूतादीको

† ये तीन आरा ध्यान साधनेके लिये ही अशुद्ध है, और तरह नही समजना.

मेद, चरबी, और मृत्यूक जानवरोंके कलेवर, खान, पान पक्कान, तंबोल, औषधीयों, अतरादी तेल, शैय्या (प. लंगादी),आसन,स्त्री पुरुषके शृंगारके वस्त्र, भुषण. का. मासन, स्त्रीयादीके चित्र, इत्यादी द्रव्य होय, वहां ध्यानीयोंका चित स्थिर रहना, मनका निग्रह (वस) होना मुशकिल हैं.

४'शुभद्रव्य-शुद्ध' निर्जिव पृथवी-शिल्लापटपे काष्टासन=पाट बजोट (चौकी) पें. पारलके आसनपे उन, सूत, आदी शुद्ध वस्त्रपें ध्यानस्त होनेसे प्रणाम स्थिर रहनेका संभव है. ध्यान इच्छककों अहार थोडाकर सो भी हलका [तांदुलादी] विशेष घृत माशालेसे वर्जित, शीतादी कालमें, प्रकृतीयोंको अनुकुल [सुखदाता] वक्तके, और वजनके, प्रमाणयूक्त; निर्जिव, और निर्दोष, शुद्ध, करनेसे चितको स्थिर रख शक्ते हें.

ध्यान इच्छकको-आसन; मुख्यतो पद्मासन [पालखी घाल दोनो साथलोंपें दोनो पग चडा दोनों हाथ एकस्थान विकसे कमलके समकर. पेटके पास नीचे रखके स्थिर होय] पर्यांकासन [पालखी घाल बेठे] दंडासन [खडेरहे] ये तीन हैं. और तो वीरासन, लगडासन, अम्बखुजासन, गोदूआसन, वगैरेसे इस व- -: विशेष वक्त स्थिर रहना मुशकिल है. स्मरणा तो

उन्हे तो सर्व क्षेत्र-द्रव्य-काल अनुकूलही होता है

चतुर्थ पत्र-"भाव"

७ 'अशुद्ध-भाव' अशुभ या अशुद्ध भावका वरणव, आर्त और रौद्रध्यानमे बताया वोही समजना विषय, कषाय, आश्रव, अशुभयोग, असमाधी, चपलता, विकलता, अधैर्यता, नास्तिकता, कठोरता, राग द्वेष रूप प्रणति वगैरे सर्व अशुभ जोग गिणे गये हे. इन से भावोंकी मलीनता होती है

८ शुभ, भाव, ४ प्रकारके हैं सो—

मैत्री प्रमोदकारूण्य, मध्यस्थानि नियोजयेत्
धर्म-याने मुपस्कर्तु, तद्धितस्यरमायनं ॥ १

अर्थ—१ 'मैत्री भाव' २ प्रमोदभाव, ३ करुणा भाव, ४ और मध्यस्तभाव, इन चारोंही भाव सयुक्त होनेसे, धर्म ध्यानकी रासायन (हूबहू-स्वाद) पैदा होती हैं

१ मैत्री भाव-"मितिमे सव्व भूएसु, वेर मज्झं न केणइ" अर्थात्-सर्व जीव मेरे मित्र (दोस्त) हैं,

सूत्र—मैत्री करूणा मुदितो पेक्षाणा सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणा भावना तश्चित प्रसादनम ३३ योगदर्शन.

अर्थ—सुखी प्राणीयोंमे मित्रता, दुःखीमे दया. धर्मात्मोंपे हर्ष, और पापीयोंपे मध्यस्त वृती इस तरे वृतनेसे चित प्रसन्न रहता है

तो चोथा आरा गिणा जाता है. क्यो की उससे वज्र वृषभनाराचादी संघन और ध्यान करनेके अनुकुल जो गवाइयोकी विशेषता थी. जिससे महान (मरणांतिक) संकट राहन करभी, अडोल (स्थिर) रहतेथे. इस पंचम कालमे संघेणादिककी नुन्यतासे, उस मुजब ध्यान हो नही सक्ता है. तो भी सर्वथा नास्ती नही समजना, क्यो कि गुण कारक वस्तु तो हमेशा गुणही करती हैं; चौथे आरेमें सक्करमे ज्यादा मिठास होगा, और अब्वी काल प्रभावसे कमी पडगया होगा. तो भी सक्कर तो मीठीही लगेगी. ऐसेही इस कालमें भी यथा विधी किया हुवा ध्यान, गुणकर्ताही होगा. और भी ध्यान कर्ता पुरुष शीत उष्णादी कालमें अपनी प्रकृतीके अनुकुल समय विचारे. श्री उत्तराध्येयजी सूत्रमें तो “बीयं ध्यान धीया इह” ऐसा फरमाया हैं, अर्थात् दिनकी और रात्रीकी दूसरी पोरसी (प्रहर) में ध्यान धरे, और किल्तेक ग्रन्थोमे पिछली रात्री (रात्रीका चौथा प्रहर.) ध्यानके लिये उत्तम लिखा हैं.

यह द्रव्य क्षेत्र और कालके विधी विवक्षा अर्थात् शुभ शुभका विचार, फक्त, अपूर्ण ज्ञानी और अस्थिर चितवालोंके लिये है पूर्ण ज्ञानी और अडोल वर्ती वालेकी जिनका चित निरवीकारी होगया है;

ठसानें वाले, सिधान्तकी सन्धी मिलाने वाले, तर्क वितर्क कर गहन विषयको सरल कर, बताने वाले, नय निक्षेपे प्रमाणादी न्यायके पारगामी, कुतर्कीयोका शांतपणे समाधान करनेवाले असर कारक सद्बोधसे, धर्मकी उन्नतीके कर्ता, चमत्कारिक कवीत्व शक्ती, व वक्तृत्व शक्तीके धारक, ऐसे २ अनेक ज्ञान गुणके धारक हैं. कित्नेक, शात, दात, स्वभावी, आत्मध्यानी, गुणग्राही, अल्पभाषी, स्थिरासनी, गुणानुरागी, सदा धर्म रूप आराम (बाग) मे, अपणी आत्माके रमाने वाले हैं, कित्नेक महान तपस्वी, मासक्षमनादी जब्बर २तपके करनेवाले, उपवास आयंबिलादी करनेवाले, षडूरसके, विगयके, त्यागी, एक दो द्रव्यपेही निर्वाह करनेवाले शीत,ताप, लोच,आदीकाया क्लेस तपके करनेवाले हैं. कित्नेककी ज्ञानाभ्यास की और तपश्चार्या करनेकी शक्ती नही हे तो, स्वधर्मीयोकी भक्ती करते हैं अहार, वस्त्र, शैयासन, आदी प्रतीलाभ साता उपजाते हैं, कित्नेक ग्रस्थ तन मन धनसे चारही तीर्थकी भक्तीके करनेवाले, धर्मकी उन्नतीके करने वाले, प्राप्त हुये पदार्थ को लेखे लगानेवाले हे ऐसे२उत्तमोत्तम अनेक गुणज्ञोके दर्शन कर, परसस्या श्रवण कर खुशी होवे धन्यभाग्य हैं, की हमारे धर्ममे ऐसे२

इस लिये मेरा किसीके साथ भी किंचित मात्र वैर विरोध नहीं हैं. इस जगत् वासी सव जीवोंके साथ अपने जीवने. माता-पिता-स्त्री-पुत्र-बन्धू-शशीयादि जितने सम्बंध है. वो सव एकेक जीवके साथ अनंत २ वक्त कर आया हैं. श्री भगवतीजी तथा जंबूद्विप प्रज्ञाप्तिमे, फरमाया हैं-की- "अणंत खुत्तो"अर्थात संसारमें इस जीवने, अनंत जन्म रमण कर, सर्व जगत् फरसा है. इस अनुसारसे, जगत् वासी सव जीव अपणे मित्र हैं, इस लिये जैसे इस भवके कुटुम्वपे प्रेम रहता हैं, वैसाही सव जीवोंके साथ रक्खे, सुक्ष्म (द्रष्टी न आवे सो) वादर (दिखे सो) त्रस (हले चले सो) स्थावर (स्थिर रहे सो) इन सव प्रकारके जीवोंको अपणी आत्मा समान् जाणे.* सबको सुखी चहावे सो मैत्री भाव.

२ प्रमोद भाव इस जगतमे अनेक सत्पुरुष अनेक २ गुणके धरने वाले हैं. कित्नेक ज्ञानके सागर हे. वहोत सूत्रोंके पाठी (पढे हुये) सद्वाद शैली कर, जिनागम की रेष श्रोता गणो के हृदयमें

---

*यथा आत्मान प्रियप्राण, तथा तस्यापी देहीना
इति मत्वन कृतव्यं, घोर प्राणी वधौ बुद्धः
अर्थ--जैसे अपनें प्राण अपनको प्रिय है वैसेही सवही के ----णके किसी भी प्राणीका वध नही करे वोही बुद्धीवंत.

योग्य प्रयत्न उपाय करे, उन्हे सुखी, करे सो करुणा भावना.

४ 'मध्यस्त भाव'-इस विश्वमे कित्नेक भारी कर्मं पापिष्ट जीव सद्गुण, सद्कर्मको त्याग, खोटेको स्विकार करते हे. सदा क्रोधमे संतत, मानमे अकडे हुये, मायासे भरे हुवे, लोभमें तत्पर रहते हैं निर्दयता-से, अनाथ प्राणीयोका कट्टा करते है. मदिरा, मास कंदमूलआदी अभक्षका भक्षण करते हे असत्य, चोरी, मैथुनसे पटूता (चतुरता) बताते हैं. विषय लंपट वैश्या, पर स्त्री गमनसे आनद माने, जुगारा (जुवा) दी दु-र्व्यसनने लुब्ध अष्टादश पापोमें अनुरक्त, देव, गुरु, धर्मके, निमित हिंसा करने वाले, हिंशामे धर्म माननेवाले, कूदेव, कूगुरु, कूधर्मकी प्रतिष्टा वडाने वाले, अच्छेकी निंदा करनेवाले, अपनी २ परशंस्यामे मग्न. इत्यादी पापी जीवोंको देख, राग द्वेष रहित, मध्यस्त प्रणाम-से विचार करे की, आहा! देखो इन बेचारे जीवोंकी कैसी विषम कर्म गती हैं, अत्यंत कष्ट चार गती रुप संसारमे सहन करते २. अनत कष्टसे मुक्त (छुटका) करनेवाली अनतानंते पुन्योदयसे, मनुष्य जन्मादी उतसोत्तम सामग्रीयो प्राप्त हुइ हे. इसे, व्यर्थ गमाते हैं? कुमार्गमें लगाते हैं! सुखकी इच्छासे दुःख उपा-

नर रत्न उत्पन्न हो धर्मदीपाते हैं. यह महा पुरूषों सदा जयवंत रहो. ऐसा विचार, उन्का सत्कार स-न्मान करे. साता उपजावे. दूसरे को उनकी भक्ती करते देख, हर्ष पावे; सो प्रमोद भावना.

३ 'करूणा भाव'- जगत्वासी जीव कर्माधीन हो अनेक कष्ट पाते हैं. किल्नेक अंतराय कर्मकी प्रब-लतासे, हीन, दीन, दुःखी होरहे हैं. खान, पान, वस्त्र, गृह, करके रहित हो रहे हैं, किल्नेक वेदनी कर्मकी वृधी होनेसे, कुष्टादि अनेक रोगों करके पिडित हो रहे हैं. किल्नेक काष्ट-खोडा बेंडी आदी बंधनमें पडे हैं, किल्नेके शत्रुओके तावेमे पडे हैं, किल्नेक शीत, ताप, क्षुधा. तृषादी अनेक विपति भोगवते है. किल्नेक अ-न्धे. लूले, लगडे, बधीर, मुक्के, गुंगे, आदी अंगोपांग रहित हो रहे हैं, किल्नेक पशू, पक्षी, जलचर, वनचर, हो प्राधीनता भोगवते हैं, वध, बंधन, ताडन, तर्जना स-हन करते है, हिंसकोके हाथ कटते है. इत्यादि अनेक जीव, अनेक तरहकी विपति (दु.ख) भोगवते हुये; सु-खके लिये तरसते हैं. हमे कोइ सुखी करो! जीवत्व दान देवो! दुःख, संकटसे उगारो! वगैरे दीन दयामणी प्रार्थना करते हैं उन्हेदेख दु.खीहोय, करुणा लावे और उनको उस दुःखसे छोडाने यथा शक्त, यथा

शुभध्यानस्य "फल."

इस विधीसे किया हुवा ध्यान इस जीवोंको मोक्ष पथ लगानें वाला है, हृदयके ज्ञान दीपकको प्रदिप्त करने वाला हैं, अतिद्रीय-मोक्षके सुखको प्राप्त करने वाला हैं यों ध्यानमें प्रवेश करनेसे ही, अध्यात्म-

---

१ "अहिंसा सत्यास्तेय ब्रम्हचर्या परिग्रहा यमा।

अर्थ—यम के ५ प्रकार किये हैं (१) अहिंसा=सर्व प्राणीयोंके साथ वैर (शत्रुता) और वध (घात) से निवृते चितमे सर्वका साथ मैत्रीता होवे (२) 'सत्य'=मन और इन्द्रियोंसे जैसा जाननें में आवे वैसा बोले परन्तु दुःखदाई न बोले जिससे वचन सिद्ध होवें (३) 'अस्तय'=दूसरेकी वस्तु बिन आज्ञा अनुचित रीतसे गुप्त ग्रहण न करे जिससे सर्व इच्छित मिले (४) 'ब्रह्मचर्य'=कामका उदय न होवें ऐसा आचरण रखे जिमसे शरीरका और बुद्धीका बल बढे (५) 'अपरिग्रह'=किसीभी वस्तुपे राग (प्रेम) द्वेष न करे. जिससे जन्मान्तरका त्रीकालका ज्ञान प्राप्त हो

२ "शौच सतोष तपस्स्वध्यायेश्वर प्रणि धनानि नियमाः"

अर्थ—नियमकेभी ५ प्रकार हैं (१) शौच*=बाह्यमें तो स्नान

---

* श्लोक—सत्य शौच तप शौच शौच मिन्द्रा निग्रह,
सर्व प्राण भूत दया शौच जल, शौचतु पचम ॥
अर्थ—सत्य बोलनेसें, तप करनेसे, इन्द्री निग्रहने, प्राणीयोंकी दया से और जल (पाणी) से शुची होंती है

जैन करतें हैं. कंकरकी खरीदमें चिंतामणी रत्न, और विषकी खरीदमें अमृत देते हैं, सुधारेके स्थान वीगाडा करते है, हे प्रभू ? इन वेचारे अनाथ पामर जीवोंकी इन कुकृतव्यके फल भोगवते, क्या दिशा होयगी? वैसी वींटंवणा पायंगे! तव कैसे पश्चाताप करेंगे? परन्तु इन वेचारे जीवोंका क्या दोष हैं, यह तो सब काम अच्छेके लियेही करते हैं, सुखके लियेही खपते हैं, परन्तु इनके अशुभ कर्म इनको सद्बुद्धी उपजनें नहीं देते है. जैसा २ जिनका भव्य तव्य (होनहार) होय, वैसा २ही वनाव वनारहता है. इत्यादी विचार मध्यस्त पणे उपेक्षा=उदासीनतासें करे सो मध्यस्त भावना.

इन चारही भावनाको भावते(विचारते) हुये और इसमे कहे मुजव प्रवृतते हुये जीव, राग, द्वेष, विषय, कषाय, क्लेश, मोहादी शत्रुओका नाश करने समर्थ (शक्तवंत) होते है. यह भावना भावनेवालेके हृदयमे, उक्त शत्रुको प्रवेश करनेका अवकाश (फुरसत) ही नहीं मिलशक्ता है*

* योग दर्शन ग्रन्थमें पतञ्जली ऋषिने योगके ८ अंग कहे हैं " यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयो ऽष्टावङ्गानि " १ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारण, ७ ध्यान, और ८ समाधी.

शुद्ध ध्यानमे प्रवृतते जीवकों महा प्राक्रम प्रगटता है. वितराग दिशाकों प्राप्त होता है. उसवक्त ध्याताको मुक्ती सुखका अनुभव यांही (इस लोकमें) होने लगता हैं. ऐसी प्रबल शक्तीके धारन करे वाला ये विधी शुक्त ध्यान हैं.

यह क्षेत्रादी ८ प्रकारके शुद्धाशुद्ध ध्यान साधनोंमेंसे अशुद्धको त्याग शुद्धको ग्रहने वाले ध्यान ध्यानेकी योग्यताको प्राप्त हो सकेंगे

प्रदिप्त होती है (५) 'स्वा पया ऽर्म प्रयोगे चितस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार'=साधनसे शब्दादी विषयों जो साधारण चितको प्रवृतता है उसका निरधन कर ध्येय पदार्थमें स्थिर करे सो प्रत्याहार, इससे मन स्वाधीन स्ववस हो जाता है. (६) 'देशबंधश्चितस्य धारणा'=फिरते हुये चित (मन) को येक इष्टमें एकाग्रता करे सो धारणा (७) 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम'=धारणा के पश्चात ध्यान होता हैं जिसकी धारणा करी उसमें तन्मय-अभिन्न होवे सो ध्यान (८) 'तदेवार्थ मात्र निर्भास स्वरूप शुन्य मित्र समाधिः'=ध्यान पीछे समाधी होती है समाधीमें भान भूल जाते हैं "त्रयमेकत्र संयम=यह तीनही एकत्र होनेसे संयम होता है

---

* ध्यानमे जिस वस्तुकी चिनतन करता है उसका भान रहता है. समाधीमें भान भूल केवल ध्येय दिखता है

दिशा शांतीकी प्राप्ती होती है. इन्द्रीयोंके विषय उसके चितकों अकर्षण कर सक्ते नहीं है. मोह निद्रा स्व भाव से समय २ नष्ट होती, सर्व क्षय जाती है. और ध्यान निद्रा (समाधी)की प्राप्ती होती है. इस तरे

दुर्गंधादि व अशुची से निवृते, और अभ्यतर§ छे रिपुको अलग रक्खे, जिसस संसर्गी को घृणा न होवें और अभ्यंतर शुचीसे मन निर्मल होवें (२) संतोष=प्राण रक्षण के लिये अन्न वस्त्रादी जो आवश्यक है उससें अधिक इच्छा न करे जिससे निर्दोष सुखी होवे (३) 'तप'=क्षुधा त्रषा, शीत, उष्णादी सहे धर्माचरण सद्गुण आचरण करें, जिससे ऋद्धी सिद्धीकी प्राप्ती होवें (४) 'स्वध्याय'=शास्त्र पठन या प्रणव (ॐ) का जप करे, जिससे इष्ट देव प्रसन्न हो इच्छित कार्य करें (५) 'प्रणिधान'=इश्वरमें सब भाव समर्पण करे जिससे समाधी भावकों प्राप्त होवे

(३) 'स्थिर सुख मासनम्'=जिस आसनसे सुख हो व शरीर और मन स्थिर रहे वोही आसन श्रेष्ट है, जिससे चितकी एकाग्रता हो (४) 'तस्मिन्सति श्वास प्रश्वास योर्गति विच्छेद प्राणायाम'=श्वास और उश्वास को रोकना सो प्रणायाम; इससे आयुष्यकी वृधी होती है ज्ञानका आवरण दूर हो, आत्म जोती

श्लोक–अशुची करुणा हीन, अशुची नित्य मैथुन,
अशुची परद्रव्ये पू अशुची परनिंदा भवेत्.

अर्थ–दया रहित, नित्य मैथुन सेवने वाले, चोरी करने वाले, और निंदक सदा अशुद्ध अशुची है

§ काम क्रोध मद मोह लोभ मत्सर, इनको हृदयमें प्रवेश नहीं करने दे

ध्यान, ३ कर्म क्या हैं कैसे उत्पन्न होते हैं और क्या क्या फल देते है? यह विचार करेसो विपाक विचय धर्म ध्यान और ४ जिस जगत् मे, इस जीवको परिभ्रमण करते अनंत काल वितिक्रंत होगया, उस जगत का कैसा आकार है. यह विचार करेसो संठाण विचय धर्म ध्यान,

इन चारहीका विस्तार से वर्णन आगे कहते है

प्रथम पत्र 'आज्ञा विचय'

"आज्ञा विचय" धर्म ध्यानके ध्याता ऐसा ध्येय (विचार) करेकी, इस विश्वमे रहे हुये, वहोतसे जीव आत्म कल्याण की इच्छा करते है, वो आत्म कल्याण एक श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञासे, प्रवृत ने (चलने) से ही होता है. श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञामेही रहके साधू श्रावक जो करणी करते है, वो करणी ही आत्म कल्याणकि करने वाली है आज्ञासे ज्यादा, कमी, और विप्रित श्रधान करे, सोही मिथ्यात्व की गिनतीमे है इस लिये श्री जिनेश्वर भगवान की आज्ञा क्या है? उसका अव्वल विचार करनेकी, बहुत अवश्यकता (जरुर) है, श्री जिनेश्वर भगवान, सर्व ज्ञाता (केवल ज्ञान) को प्राप्त हो, अधो(नीचा)

इसका बयान आगे किया जायगा. और २ जो विशेष अशूभ कर्मका नाश करने वाला. तथा किंचित शुभ कर्म का भी नाश करने वाला. निर्जरा और पुन्य प्रकृतीका उपराजन करे सो धर्म ध्यान, इसका वरणन यहां करता हूं.

प्रथम प्रतिशाखा-धर्मध्यानके 'पाये'

सूत्र आणा विजय, आवाय वीजय,
विवाग वीजय, संठाण वीजय.

अर्थ—धर्म ध्यान के चार पाये, १ आज्ञा विचय, २ अपाय विचय, ३ विपाक विचय, और ४ संठाण विचय.

जैसे तरु (वृक्ष) की चिरस्थाइ के लिये. पाया (जड) की मजबुताइ की जरूर है. तैसे ही ध्यानको स्थिर करने के लिये, चार प्रकारके विचार करते हैं. १ श्री भगवंत ने इस जीवके उद्धारके लिये, हेय (छोडने योग्य) ज्ञेय (जाणने योग्य) और उपादेय (आदरने योग्य) क्या क्या हुकम फरमाया, उसका विचार करे सो आज्ञा विचय धर्मध्यान २ यह जीव अनंत कालसे क्यों दुःखी है, यह दुःख दूर कायसे होते है? ऐसा विचार करना, सो अपाय विचय धर्म-

ध्यान, ३ कर्म क्या है कैसे उत्पन्न होते हैं और क्या क्या फल देते हैं? यह विचार करेसो विपाक विचय धर्म ध्यान. और ४जिस जगत् में, इस जीवको परिभ्रमण करने अनंत काल वितिक्रांत होगया, उस जगत का कैसा आकार है. यह विचार करेसो संठाण विचय धर्म ध्यान,

इन चारहीका विस्तार से वर्णन आगे कहते हैं

प्रथम पत्र 'आज्ञा विचय'

"आज्ञा विचय" धर्म ध्यानके ध्याता ऐसा ध्येय (विचार) करेकी, इस विश्वमे रहे हुये, बहोतसे जीव आत्म कल्याण की इच्छा करते हे, वो आत्म कल्याण एक श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञासे, प्रवृत ने (चलने) से ही होता है. श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञामेही रहके साधू श्रावक जो करणी करते हे, वो करणी ही आत्म कल्याणकि करने वाली हैं आज्ञासें ज्यादा, कमी, और विप्रित श्रधान करे, वोही मिथ्यात्व की गिनतीमे हैं इस लिये श्री जिनेश्वर भगवान की आज्ञा क्या है? उसका अच्छा विचार करनेकी, बहुत अवश्यकता (जरुर) है, श्री जिनेश्वर भगवान, सर्व ज्ञाता (केवल ज्ञान) को प्राप्त हो, अधो(नीचा)

मध्य (विचला) उर्ध (उंचा) तीनही लोकमें. भूत(गया) भविष्य (होनेवाला) और वृतमान (वर्ते सो) इन तीनही कालमें, जीव और पुद्गलकी अनंतानंत पर्यायों का, जो परावृतन (पलटा) हो रहा है, उनका प्रकाश किया. तबही अपन उनके हुकमसे जगत् के चराचर (चल स्थिर) पदार्थोंके कोविद (ज्ञाण) हुये है. और अगोचर (विन देखे) पदार्थोंके गुण और पर्याय इत्ने सुक्ष्म-अग्राही है की अपन तो क्या, परन्तु बडे २ चार ज्ञानके धारी, द्वादशाग के पाठी, महा मुनीवरों केही ग्रहाज (लक्ष) में आनें मुशकिल होते है. जो पदा, अपने समजमें नहीं आते है, तो भी उन्हे अपन ४ छाटीसे पढके सत्य मानते हैं यह निश्चय अपन श्री तीर्थेश्वर भगवानकी आज्ञाके मानने सेही हुवा क्यो कि अपन निश्चयसे समजते है कि श्री जिनको देव राग द्वेष रहित हैं, उन्हे किसीकाभी पक्ष नहीं, की वो कधी अन्यथा (झूट) बोले. श्री सर्वज्ञ प्रभूने कैवल्य ज्ञानमे जैसा देखा वैसा फरमाया, वो सर्व सत्य हैं.

श्री जिनेश्वर भगवाननें जो जो फरमाया है उसमेका कूछ आवश्यकिय ज्ञान ह्यां श्लोक करके कहते हैं—



सुत्रार्थ मार्गणा महावृत भावनाच,
पञ्चेन्द्रियोप शमता नि दयाद्र भाव,
बन्ध प्रमोक्ष गमना गति हेतु चिन्ता,
ध्यानतु धर्म्य मिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञ·

सागर धर्मामृत

अस्यार्थ—सुत्रोक्त अर्थ, जीवोकी मार्गणा, महावृत्त, भावना, पाच इन्द्रियो दमनका विचार, दयाद्रभाव, कर्मसे बन्धनका, और छुटनेके उपाय—का विचार, चार गति ओर ५७ हेतुकी चितवना, इत्यादि विचार करे उसे धर्म ध्यानका ध्याता श्री तत्वज्ञ प्रने फरमाया है

य ध्यान कर्ताको श्रुतज्ञानकी अव्वल आवश्यकता आ इस लिये पहले श्री श्रुतज्ञान वरणव करते हैं

ण ए " सुत्रार्थ "

(चलर गाथा शास्त्र)

सुदकेवलं च णाणं, दोणी वि सरिसा णि होति बोहादो सुदणाणं तुपरोक्खं, पच्चक्खं केवल णाण

गम्टसार

अर्थ—श्रुत ज्ञान और केवलज्ञान दोनो बरोबर हे फरक इत्नाही की श्रुत ज्ञान तो परोक्ष हे और केवल ज्ञान प्रतक्ष हे क्यो कि केवली भगवानने जो जो भाव केवल ज्ञानसे जाणे हे वो

सर्व (प्रकाशे उल्ते) श्रुत ज्ञान करकेही श्रोता गणको समजा सके हैं, और केवलीके वचनसेही नर्क स्वर्ग जावत् मोक्ष तक की रचना छद्मस्त जाणते हैं, वो भी श्रुत ज्ञान ही हैं. "सयंभू रमण समुद्रसेभी अधिक गंभीर; लोकालोक सेभी वडा. सर्व पदार्थोंके अतिरिक्त कोट्यान सूर्यसेभी अधिक प्रकाश कर्ता श्रुत ज्ञान हैं. श्रुतज्ञानको *द्वादशांग, और चार ‡अनुयोग करके तथा †अंग, §उपांग, ‖छेद, %मूल, और अनेक

---

* आचारांग, सुयगडायंग, ठाणायंग, समवायंग, भगवती ज्ञाता, उपाशकदशांग, अंतगडदशांग, अणुत्तरोववाइदशांग, प्रश्न व्याकरण, विपाकसूत्र, और द्रष्टीवाद, यह द्वादशांग ‡ प्रथम चरणानुयोग, जिसमें आचारका कथन जैसे आचारंगादी शास्त्र द्वितिय गणितानुयोग गणित (सख्या) के शास्त्र जैसे चंद्रप्रज्ञाप्तीआदि शास्त्र, तृतिय धर्मकथानुयोग सो कथाके शास्त्र जैसे ज्ञाताजी आदि शास्त्र और चतुर्थ द्रव्यानुयोग जो स्ति धर्मआदि षटद्रव्यका विचार तैंने सुयगडायगजी आदी शास्त्र, यह चार अनुयोग † आचारांग आदी दुवादशांगके नाम कहे उसमेसे अभी इस कालमें दृष्टीवादांगका अभाव हैं इस लिये ११हा अंग गिणे जाते हैं § उपांग १२, उववाइ, रायप्रसेणी, जीवाभिगम पन्नवण; जंबूद्विपप्रज्ञाप्ती चंद्रप्रज्ञाप्ती सूर्यप्रज्ञप्ती निरियावलिका, कप्पिया, पुप्फिया, पुप्फचुलिया, वन्हिदशा यह १२ उपांग ‖ विवहार वेदकल्प नशीत दशाश्रुतस्कंध, यह ४ छेद ′ दशवैकालिक उत्तराध्ययन नंदी, अनुयोगद्वार ए ४ मूल

प्रकीर्ण ग्रन्थों करके विस्तिरत कियागया हैं अनेक चमत्कारिक विद्याका सागर हैं. यह शब्दो करके अ-वर्णिय हैं वडे २ विद्वान भी इसका पार नहीं पासक्ते हैं. श्रुत ज्ञानही सच्चा तीर्थ है, की जिसमें पापका ले_शभी नहीं है. और इसमें स्नान करनेसे, वडे २ पापा_त्मा पवित्र हो गये है. येही जगत् जतूओंके उद्धार क-रने सामर्थ्य है, योगीयोंका तीसरा नेत्र हैं. इत्यादी अनेक गुणों करके प्रतिपूर्ण भरा हुवा श्रुत ज्ञान हैं इसको अभ्याससे- प्राप्त करनेमें धर्माध्यानीकों विलकूल ही प्रमाद नही करना चाहिये.

"मार्गणा."



गइ इंदीए काए, जोए वेए कसाय नाणेय,
सजम दसण लेसा, भव सम्मे सान्न आहरे.
तृतीय कर्म ग्रंथ.

अर्थ—गति, इन्द्री, काया, जोग,वेद, कषाय, ज्ञान, संजम, दर्शण, लेशा, भव्य सम्यक्त्व, सन्नि असन्नि, अहारिक अनाहारिक. यह १४ मार्गणा. अब आगे जो जो कथन चलताहै, वो सब पिछे कहे हुये श्रुत ज्ञान के पेट मे समजना. मार्गणाका ज्ञान अतीही गहन हैं इसके विचारसे

में अच्छी स्थिरता रहनेका संभव है. इसलिये यां मार्गणा कहते हैं.

१ "गति" गति उसे कहते हे की जिसमें गतागत (आवागमन) करे, वह गती ४ है. (१) 'नर्क गति' जो अधो (नीचे) लोकमे ७ दुःखमय स्थान है. (२) 'तिर्यच गति' जो एकेन्द्री सूक्ष्म तो सर्व लोक व्यापी है और बादर एकेन्द्री तथा बेन्द्रीसे पंचेन्द्रीय प्रयंत पशू (जानवर) जीव है (३) 'मनुष्य गति' जो तिरछे लोकमें कर्म भूमी अकर्म भूमी मनुष्य जीव है. (४) 'और देव गति' जो पातल (नीचे) लोकवासी भवन पति, वाणव्यंतर, देव, तिरछे लोकमे चंद्र सूर्यादी जोतषी देव, और उर्द्ध (उचे) लोकवासी, कल्पवासी, १२ स्वर्ग (देवलोक) मे रहे वह, कल्पातीत सो ९ ग्री वेग और 'अनुत्तर विमान'वासीदेव. यह चार गति. और पंचमी मोक्षको भी गति कहते हे परंतु वहां गये पीछे पुनरावृत्ती (आना) नहीं है.

२ "इंद्रिय" इन्द्रिय उसे कहते हे. जिससे जीवकी ज़ातीकी समज होए. वह इन्द्रिय ५ हैं (१) 'एकेंद्रीय' जो पृथव्यादिक एक स्पर्श इन्द्रियवाले जीव. (२) 'बेंद्रिय' जो किटकादिक स्पर्श और रस इन्द्रियवाले जीव (३) 'तेंद्रिय' जो युका (जूं)

दिक स्पर्स्य रस और घ्राण इन्द्रिय वाले जीव (४) 'चौरिंद्रि' जो माक्षिकादिक स्पर्स्य, रस, घ्राण, और चक्षू इन्द्रिय वाले जीव. (४) और 'पचेंद्रिय' जो मच्छादि जलचर, (पाणीमे रहे) पशू (पृथवीपे रहे) गायादी स्थलचर, हसादी पक्षी खचर, (आकाशमे उडे) तथा नरक मनुष्य और देवता स्पर्स्य, रस, घ्राण, चक्षु और श्रोतेंद्रीवाले जीव इन सिवाय *अनेंद्री जीव केवली भगवानको और सिद्ध भगवानको कहते हैं

३ "काए" काया, शरीरको कहते है, वह जीवयुक्त काया ६ हैं- (१) 'पृथ्वी काय' (मट्टी) (२) 'अपकाय' (पाणी) (३) 'तेउकाय' (अग्नी) 'वाउकाय' (वायू-हवा) (४) 'वनास्पति' (सबजी-लीलोत्री) [यह पांच एकेंद्री है] और (६) 'त्रसकाय' (हलते चलते बेंद्रीय से लगा पचेंद्रिय पर्यंतके जीव)

४ "जोए" जोग-दूसरेसे सम्बन्ध करे वह जोग ३ हैं. (१) 'मन योग' (अतःकरणका विचार) (२)'वचन योग' (शब्दउच्चार)(३) 'कायायोग (प्रतक्षसरीर)

५ 'वेए' वेद विकारका उदय वह वेद ३

---

* केवल ज्ञानीने अनत कालके शब्दादी विषयको पहलेही जान लिये है इस लिये उनके कर्णादी अव्यय रुप हैं उनके विषयसे उन्हे कुछ प्रयोजन नही है

च्छी स्थिरता रहनेका संभव है. इसलिये ह्यां
णा कहते हैं.

१ "गति" गति उसे कहते है की जिसमें गता-
र (आवागमन) करे, वह गती ४ है. (१) 'नर्क
ति' जो अधो (नीचे) लोकमें ७ दुःखमय स्थान है.
२) 'तिर्यंच गति' जो एकेंद्री सूक्ष्म तो सर्व लोक
यापी है और बादर एकेंद्री तथा बेन्द्रीसे पचेन्द्रीय
र्यंत पशू (जानवर) जीव है (३) 'मनुष्य गति' जो
तेरछे लोकमे कर्म भूमी अकर्म भूमी मनुष्य जीव है.
(४) 'और देव गति' जो पातल (नीचे) लोकवासी भवन
पति, वाणव्यंतर, देव, तिरछे लोकमे चंद्र सूर्यादी
जोतषी देव, और उर्ध्व (उचे) लोकवासी, कल्पवासी,
१२ स्वर्ग (देवलोक) मे रहे वह, कल्पातीत सो ९ ग्री
वेग और 'अनुत्तर विमान' वासीदेव. यह चार गति.
और पंचमी मोक्षको भी गति कहते है परंतु वहां गये
पीछे पुनरावृत्ती (आना) नही है.

२ "इंद्रिय" इन्द्रिय उसे कहते है. जिससे जी-
वकी ज्ञातीकी समज होए वह इन्द्रिय ५ हे (१)
'एकेंद्रीय' जो पृथव्यादिक एक स्पर्श इन्द्रियवाले
जीव. (२) 'बेंद्रिय' जो किटदादिक स्पर्श और
इन्द्रियवाले जीव. (३) 'तेंद्रिय' जो युका (जूं)

दिक स्पर्स्य रस और घ्राण इन्द्रिय वाले जीव (४) 'चौरिंद्रि' जो माक्षिकादिक स्पर्स्य, रस, घ्राण, और चक्षू इन्द्रिय वाले जीव (४) और 'पचेंद्रिय' जो मच्छादि जलचर, (पाणीमे रहे) पशू (पृथवीपे रहे) गायादी स्थलचर, हंसादी पक्षी खेचर, (आकाशमे उडे) तथा नरक मनुष्य और देवता स्पर्स्य, रस, घ्राण, चक्षु और श्रोतेंद्रीवाले जीव इन सिनाय *अनेंद्री जीव केवली भगवानकों और सिद्ध भगवानको कहते हैं.

३ "काए" काया, सरीरको कहते हैं, वह जीवयुक्त काया ६ हैं- (१) 'पृथ्वी काय' (मट्टी) (२) 'अपकाय' (पाणी) (३) 'तेउकाय' (अग्नी) 'वाउकाय' (वायू-हवा) (४) 'वनास्पति' (सवजी-लीलोत्री) [यह पांच एकेंद्री हैं] और (६) 'त्रसकाय' (हलते चलते बेंद्रीय से लगा पचेंद्रिय पर्यतके जीव)

४ "जोए" जोग-दूसरेसें सम्बन्ध करे वह जोग ३ हे (१) 'मन योग' (अत करणका विचार) (२) 'वचन योग' (शब्दउच्चार) (३) 'कायायोग (प्रतक्षसरीर)

५ "वेए" वेद विकारका उदय वह वेद ३

---

* केवल ज्ञानीने अनत कालके शब्दादी विषयको पहलेही जान रखे हैं इस लिये उनके वर्णादी अव्यय रुप है उनके विषयसे उन्हे कुछ प्रयोजन नहीं है

(१) स्त्री, (२) पुरुष, (३) नपूंसक.

६ "कसाय" कषाय संसारका कस्स[रस] आके आत्माके प्रदेशपे जमे वह कषाय ४ [१] क्रोध, [गुस्सा] [२] 'मान' [अभीमान] [३] 'माया' [कपट] [४] 'लोभ' [तृष्णा] .

७ "नाणे" ज्ञान–जिस्सें पदार्थको जाणे वह ज्ञान ८ हें [१] 'मति ज्ञान' [बुद्धी] [२] 'श्रती ज्ञान' [शास्त्रसंबंधी] [३] 'अवधी ज्ञान' [रुपी सर्व पदार्थ जाणे] [४] 'मन पर्यव ज्ञान' [मनकी बात जाणे] [५] 'केवलज्ञान' [सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव जाणे] [यह ५ ज्ञान–सम्यक द्रष्टीकों होते हैं]

[६] 'मति अज्ञान' [कुबुद्धी] २ 'श्रुती अज्ञान' [कुशास्त्राभ्यास ३ 'विभंग ज्ञान' [उलटा जाणे] [यह ३ अज्ञान मिथ्यात्व द्रष्टीको होते हैं]

८ "संजम" संयम–कूकर्मोंसे आत्मा का निग्रह करना रोकना वह संयम ७ हें १ 'अवृति' (जिस सम्यक द्रष्टी ने मिथ्यात्वसे आत्माको बचाइ) २ देशावृति श्रावक ३ सामाइक देशसें 'श्रावकका ओर जाव जीव साधूकी) ४ छेदोवस्थापनिय (दोपसें निवानेवाला) ५ परिहार 'विशुद्धी' (शुद्ध चरित्र) ६ 'सुक्ष्म' 'थोडा लोभबिगर सब दोष रहित) ७यथा-

ख्यात (सर्वथा दोषरहित)

९ "दंसण" दर्शन—देखे या दरशे सो दर्शन ४ हैं. १ चक्षू दर्शन, 'आखोसे देखे' २ अचक्षुदर्शन आं-खविना चार इन्द्रिसे और मनसे दरशे) ३ अवधी द-र्शन. (रूपीपदार्थ दुरके देखे) और ५ केवल दर्शन सर्व द्रव्य. क्षेत्र, काल भाव देखे दर्शें)

१० 'लेसा" कर्मसे जीवको लेशे (लेप चडावे- वह लेशा ६ हैं. १ 'कृष्ण लेशा' महा पापी २ नील लेशा' अधर्मी ३ 'कापूलेशा' वक्रस्वभावी, धींठ ४'ते, जूलेशा न्यायवत ५ 'पद्मलेशा' धर्मात्मा ६ 'सुक्ललेशा मोक्षार्थी और अलेशी अयोगी केवली व सिद्ध भगवत'

११ "भव" संसारमें जीव दो तरहके हैं, १ भ-व्य वह मोक्षगामी और २'अभव्य' वह कदापि मोक्ष न जाय (नो भव्याभव्य सिद्ध भगवंत)

१२ "सन्नि' संसारमे जीव दो तरहके १ 'सन्नि वह ज्ञान व मन युक्त; मातापिताके संयोगसे उत्पन्न होये सो, मनुष्य तिर्यंच और देवता ओं तथा नेरिये. और २ 'असन्नी' वह पांच स्थावर, तीन विकलेंद्री और समुछिम माता पिता विन हुये मनुष्य, तिर्यंच, पंचे-द्री (नो सन्ना सन्नी सिद्ध भगवत)

१३ 'सम्मे' यथार्थ पदार्थ की श्रद्धा वह सम्य-

(१) स्त्री, (२) पुरुष, (३) नपूंसक.

६ "कसाय" कषाय संसारका कस्स[रस] आके आत्माके प्रदेशपे जमे वह कषाय ४ [१] क्रोध, [गुस्सा] [२] 'मान' [अभीमान] [३] 'माया' [कपट] [४] 'लोभ' [तृष्णा] .

७ "नाणे" ज्ञान—जिससें पदार्थको जाणे वह ज्ञान ८ हैं [१] 'मति ज्ञान' [बुद्धी] [२] 'श्रुती ज्ञान [शास्त्रस्मबंधी] [३] 'अवधी ज्ञान' [रुपी सर्व पदार्थ जाणे] [४] 'मन पर्यव ज्ञान' [मनकी बात जाणे] [५] 'केवलज्ञान' [सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव जाणे] [यह ५ ज्ञान—सम्यक द्रष्टीको होते हैं.]

[६] 'मति अज्ञान' [कुबुद्धी] २ 'श्रुती अज्ञान' कुशास्त्राभ्यास ३ 'विभंग ज्ञान' [उलटा जाणे] [यह ३ अज्ञान मित्यात्व द्रष्टीको होते हैं]

८ "संजम" संयम—कूकर्मोंसे आत्मा का निग्रह करना रोकना वह संमय ७ हे. १ 'अवृति' (जिस सम्यक द्रष्टी ने मिथ्यात्वसे आत्माको बचाइ) २ देशवृति श्रावक ३ सामाइक देशसे 'श्रावकका ओर जाव जीव साधूकी) ४ छे दोवस्थापनिय (दोपसें निवारनेवाला) ५ परिहार 'विशुद्धी' (शुद्ध चारित्र) ६ 'सु-...राय' 'थोडा लोभविगर सब दोप रहित) ७यथा-

पंचमहा-वृत,

ध्यानी जन बहुत करके महावृती होते हैं. इस लिये उन्हे अपने वृतोपे. ध्यान देनेकी बहुतही जरूरहे.

१ "सव्वं पाणाइ वायाउ वेरमणं"=अर्थात त्रस, स्थावर, सुक्षम, बादर, सर्व जीवोंकी हिंशासे त्रिविध २* सर्वथा निवृते (सर्वथा हिंशा त्यागे)

२ "सव्वं मुसं वायाउं वेरमणं"=अर्थात् क्रोधसे, लोभसे, हंसिसे, और भयसे, सर्वथा त्रिविधे २ मृषा (झूट) बोलनेसे निवृते

३ "सव्वं अदिन्न दाणाउ वेरमणं"=अर्थात थोडी, बहुत, हलकी, भारी, सचित (सजीव) और अचित (निर्जीव) इनकी सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ चोरीसे निवृते

४ "सव्व मेहूणाउ वेरमणं"=अर्थात देवांगना की मनुष्यणी और तिर्यचणी, इत्यादी मेथुन सेवनेसे सर्वथा प्रकारे त्रिविधे २ निवृते

५ "सव्वं परिगाहाउं वेरमणं" थोडा, बहुत, हलका, भारी सचित, और अचित, इत्यादि परिग्रह से सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ निवृते

---

* करे नहीं मनसे वचनसे कायासे करावे नहीं मनसे, वचनसे कायासे अच्छा जाने नहीं मनसे, वचनसे, कायासे ये ९ कोटी

क्त्व ७ हैं. १'मिथ्यात्व' वाह्या श्वरूप मिथ्यात्वका, और अन्दर समकित पावे सो. २ 'सास्वादनीय'= लेंश मात्र धर्म श्रयके, पडजायसो. ३ 'मिश्र'=श्रधाकी गडबड. ४ 'क्षयोपशमिक'=मोह कर्मकी प्रकृती, कुछ क्षयकरी और कुछ उपशमाइ ढांकी) ५ 'औपशमिक मोहकी प्रकृती उपशमाइ ६ 'वेदिक' प्रकृती वेदे (यह क्षायिकके पेलह क्षण मात्र होती है) ७ क्षायिक मोहकी प्रकृतियो क्षय करे.

१४ "आहारे" आहार करे वह आरिक, और मार्ग वहता (एक सरीर छोड दूसरे सरीरसे जाता) तथा मोक्षादिकके जीव अन—आहारिक

यह १४ ही मार्गणा तो अर्थकी सागार है, परन्तु ग्रन्थ गौरव के लिये ह्यां संक्षेपसे चेताया है. ध्यानी इने विस्तारसे चितवन करेगें.

"महाव्रत"

महावृत=वडे वृत, जैसे तालावके नाले रोकनेसे, तलावमें पाणी आना वंद हो जाताहै. वेसेही वृत-प्रत्याख्यान (पच्चखाण) करनेसे जगतका पाप वंद हो जात्ता है.

श्रावकके वृतकी अपेक्षासे वडेसो साधूजीके

तंत्रादि कोइभी, साय-आश्रय देनेवाले नहीं है य-था दृष्टांत-(१) जैसे हिरणके बच्चेको सिंहने ग्रहण किया उसे छोडानेसामर्थ दूसरा हिरण नहीं होताहैं. (२) तथा समुद्रमे झाजमेसे पडे हुवे मनुष्यको कोइ आश्रयभूत नहीं होता है, तैसे ऐसा जाननेवाले पर-द्रव्यसे ममत्व उतार, एके-निजस्वभाव-निजगुणकाही आलंबन करेगे, वोही निजात्म स्वरूप-सिद्ध अवस्था कों प्राप्त होगे

३ 'संसार भावना' -इस संसारमें, जित्ने द्रव्य हैं, उन सबको. ज्ञानावरणियादी अष्ट कर्मके योगसे, तथा शरीर पोषणेके लिये आहार पाणी यादीसे तथा श्रोतादी इन्द्रियोसे, अपने जीवने अनंतवार ग्रहण किये और छोडे, इसे द्रव्य संसार कहना तथा (२) अ-संख्य प्रदेशसें व्याप्त यह लोक हैं, उनमेसें एकेक प्र-देशपे यह जीव अनत वक्त जन्मा और मरा, यह क्षे-त्र संसार है (३) तथा सर्पणी और उत्सर्पणी काल २० कोटा-कोटी सागरका है, उसके एकेक समयमें इस जीवने जन्म मरण किये यह काल संसार. (४)और क्रोधादी ४ कषायके मनादी त्रियोगके जो प्रकृत्यादी बन्धके भाव है, उन्हे अनत वक्त ग्रहण करके छो-डदिये, यह भाव संसार, ऐसे ४ प्रकारके संसारमें

[छट्टा, सव्वं राइ भोयणं वेरमणं" अन्न, पाणी, मेवा मिठाइ, और सुखवास (तंबोलादी) इत्यादी अहार रात्रीको सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ नहीं भोगवे] ध्यानी इन महाव्रतोंको इनकी भावना भांगे तणावे सहित चितवन करनेसे अपने कृतव्य प्रायण होंगे.

१२ "भावना."

१ "अनित्य भावना"- द्रव्यार्थिक नयसें, अविन्याशी स्वभावका धारक जो आत्मद्रव्य है उससे भिन्न (अलग) रागादी विभाव रुप कर्म है. उनके स्वभावसे ग्रहण किये हुये स्त्री पुत्रादी सचेतनद्रव्य, सुवर्णादी अचेतन द्रव्य, और इन दोनोसे मिले हुये मिश्र द्रव्य, जो है सो सर्व अनित्य, अध्रुव, विनाशिक है. ऐसी भावना जिनके हृदयमे रमती हैं, उनका सर्व अन्यद्रव्योंपरसे ममत्वका अभाव होजाता हैं (जैसे वमन किये हुये पै से ममत्व कभी होता है.) वो महात्मा अक्षय, अनंत, सुखका स्थान, जो मोक्ष उसे पाते हैं.

२ "असरण भावना —इस आत्माको, ज्ञान दर्शन, चारित्र, तथा अरिहंतादी पंच प्रमेष्टी छोड, अन्न देविंद्र, नरिंद्र, स्वजन, सैन्या, घर, धन, या मंत्र. जंत्र

तंत्रादि कोइभी, सण-आश्रय देनेवाले नहीं है यथा द्रष्टांत-(१) जैसे हिरणके बच्चेको सिंहने ग्रहण किया. उसे छोडाने समर्थ दूसरा हिरण नहीं होताहै. (२) तथा समुद्रमे झाजमेंसे पडे हुये मनुष्यको कोइ आश्रयभूत नहीं होता है, तैसे. ऐसा जाननेवाले परद्रव्यसे ममत्व उतार, एके-निजस्वभाव-निजगुणकाही आलंबन करेंगे, वोही निजात्म स्वरूप-सिद्ध अवस्था को प्राप्त होंगे

३ "संसार भावना" -इस संसारमें, जित्ने द्रव्य हैं, उन सबको. ज्ञानावरणियादी अष्ट कर्मके योगसे, तथा शरीर पोषणेके लिये. अहार पाणी यादीसे तथा श्रोतादी इन्द्रियोंमे, अपने जीवने अनन्तवार ग्रहण किये और छोडे, इसे द्रव्य संसार कहना तथा (२) असंख्य प्रदेशमें व्याप्त यह लोक हैं, उनमेंसे एकेक प्रदेशपे यह जीव अनंत वक्त जन्मा और मरा, यह क्षेत्र संसार हैं (३) तथा सर्पणी और उत्सर्पणी काल २० कोटा-कोटी सागरका है, उसके एकेक समयमें इस जीवने जन्म मरण किये यह काल संसार. (४)और क्रोधादी ४ कषायके मनादी त्रियोगके जो प्रकृत्यादी बन्धके भाव हैं, उन्हे अनंत वक्त ग्रहण कर२ के छोडदिये, यह भाव संसार, ऐसे ४ प्रकारके संसारमें

यह जीव अनादि कालसे परिभ्रमण करता थका नहीं. अब इस भ्रमणसे निर्वृत संसारकी घृणा लावेगा, वोही मोक्ष पावेंगा.

४ "एकत्व भावना"– इस जीवको सहजानद (स्वभावसे होता) सुखकी सामुग्री देनेवाला. अनंत गुणका धारक कैवल्य ज्ञान हैं. वोही आत्माका सहज सरीर हैं; वोही अवीन्याशी हित कर्ता है. और द्रव्य सज्जनादी कोइभी हितकर्ता नही हैं. क्यों कि अन्यपदार्थ, मनको विकल्प उपजाते है, और अनेक प्रकारका दुःख देते है. ऐसा जान सर्व वाह्यवस्तुओंसे ममत्व उतार, एक आत्मापेही जो द्रष्टी जमावेगा. वोही आत्म तत्वकी खोज कर निजानंद–सहजानंद सुखको प्राप्त होगा.

५ "अन्यत्व–भावना" जगत्मे रहे हुये कित्नेक सजीव पदार्थोंको कुटुम्ब समजते हैं. और कित्नेक अजीवको सहायक मानते है. परंतु वो सर्व कर्माधीन और कर्ममय हैं. वो वेचारे आपही सुखी होने सामर्थ्य नही हैं; तो अपनेको क्या सुख देंगे. वो अपनेही विनाशसे वच नही सक्के हैं, तो अपनेको क्या वचायेंगे. इत्ने काल जो इस जीवने संसारमे दुःख पाया, वो सब उन्हीका प्रशाद

हैं ऐसा निश्चय करके हे जीव ! अन्य सर्व पदार्थ अलग हैं. और मैं शुद्ध चैतन्य अलग हुं यह मेरे नहीं मे इनका नहीं. ऐसा विचारता सर्व द्रव्यसे अलग हो, अपने निज स्वरूपको प्राप्त कर सुखी होवे.

६ "अशुची-भावना," इस सरीरको शुची करने, कित्नेक असंख्य अपकाय(पाणी)के जीवोका बध करतेहे, सो भिष्टाके घटको शुची करने जैसा करते हैं देखीये यह सरीर रुद्र और शुक्रके संयोगसे तो उत्पन्न हुवा हैं दुग्ध, और भिष्टाके क्षातसे उत्पन्न हुये पदार्थोके भक्षणसे वृधी पाया, और जिन पदार्थोंकी इस सरीमें वृधी हुइ वोभी अशूची हे. इस सरीके संयोगसे सुची पदार्थ अशूची होतें हैं सुभिगंधी दुर्गंधी होते हैं. परशंसनिय, निंदनिय होते हैं मनहर दुगछनिय होते हैं. बहूत कालसे सेप्रेम संग्रह करके रखे हुये पदार्थ इस सरीरका सम्बध होतेही, उकरडीपे डालने जेसे बन जाते हैं !! और इस सरीरमेंसे निकलते हूये सर्व पदार्थ, घ्रणाको उत्पन्न करते हैं. ऐसे इससरीरमे प्रेम उत्पन्न करने जैसा कोनसा पदार्थ हे? परन्तु मोहमदमे छके हुये जीव अशुचीकोही प्राणप्यारे बनाते हे. इससे और ज्यादा अजान दिशा कोनसी? उनकेही सरीरके, उनको प्यारे लगते पदार्थ, सरीरसे अलग पर

उनहीके हाथमें देके देखीये. वो कैसा प्यार करते हैं. इत्यादि विचारसे अशुची सरीरपेसें ममत्व त्याग, इस सरीरके अन्दर रहा हुवा जो आत्मा (जीव) परम पवित्र ज्ञानादी रत्नोका धारक हैं. उसें अशुचीमय काराग्रह (केदखाने) से छुडानेके लिये ब्रम्हचार्यादी पवित्र वृतोंको धारण कर, परम पवित्र शिवस्थानका वासी वनावो.

७ "आश्रव-भावना" जैसे सछिद्र नाव पाणीमें डूबती हैं. वैसेही मिथ्यात्व, अवृत, प्रमाद, कषाय,इन पाप रूप पाणी, शुभाशुभ जोग रुप छिद्र करके, आत्मरूप नावमें प्रवेश कर, संसार रुप समुद्रमें आत्माको डुवाता हैं ऐसा जाण आश्रावको छोडके आत्मा को संसार समुद्रसे तारनेका उपाय करे.

८ "संवर-भावना" अश्रव तत्वमें आत्माकों डूवाने वाले वताये. उनको रोकनेका उपाय, सो संवर सम्यक्त्व, वृत, अप्रमाद, अकषाय, और स्थिरयोग है. इनसे रोक, ज्ञानादी रत्नत्रय रुप अक्षय निधीके साथ संसार समुद्रके किनारे, मोक्ष रुप पट्टन हैं, उसे प्राप्त करे.

९ "निर्जरा-भावना" जीवका स्वभाव तो मोक्षमे जानेकाही है, परंतु अनादी सम्बंधी कर्म रुप व-

तो पाणीके उपरही रहनेका होता हैं, परन्तु उसपे कोइ मट्टीके और सनके ८ लेप लगाके, सुकाके, पाणीमें डाले तो तुर्त पातलमें बेठ जाताहैः फिर पाणीके संयोगसे उसके लेप गलने से वो उपर आताहै, तैसेही जीव रुप तुम्बा, अष्ट कर्म रुपये लेपकर, संसारमेंडुबरहाहै, उन लेपोंको गलाने, मुमुक्षुजन द्वाक्श (१२) प्रकार की तपस्या कर, कर्म लेपको गाल, संसारके अग्र भागमें जो अनंत अक्षय सुख मय मोक्ष स्थानहे, उसे प्रात करतेहे.

१० "लोकभावना" अनंतानत आकाश रुप अलोकके मध्य भागेंम, ३४३ घनाकार राजू* जित्ने क्षेत्र मे लोक हैं, लोकके मध्यमे १४ राजू लम्बी और १ राजू चोडी त्रस नाल हैं. उसमें त्रस और स्थावर जीव भरे हैं, और बाकीका सर्व लोक एक स्थावर जीवहीसे भरा हैं. लोक के उपर अग्र भागमें सिद्ध स्थान हैं. जो जीव कर्म सें मुक्त होतें (छूटते) हे; वो सिद्ध स्थान में विराजमान होते हैं फिर वहां से कदापी चलाय

*३,८१,२७,९७० मण लोहेके एक गोलेको एक भार कहते हैं ऐसे हजार गोलेका एक गोला बना कोइ देवता बहुत उपरसें छोडे, वो ६ महानें, ६ प्रहर, ६ दिन, ६ घडीमें निक्रा क्षेत्र उलंघे सो एक राजू क्षेत्र.

मान नहीं होते हैं. सदा निरामय सुखमें लीन रहते हैं. हे आत्मा! उस स्थानको प्राप्त होनेका उपाय कर.

११ "बोध बीज दुर्लभ भावना"—ओर सर्व वस्तु प्राप्त होनी सहज है. परंतु बोध-बीज सम्यक्त्व रत्नकी प्राप्ती होनी बहुतही मुशकिल हे; सो विचारीये. बोध बीज की प्राप्ती विशेष कर, मनुष्य जन्ममें ही होती है, "दुल्लहा खलु माणुसा भवे" अर्थात मनुष्य जन्म मिलना बहुतही मुशकिल है. ९८ बोलकी अल्पाबहुतमे पहलेही बोलमे कहा है की—"सबसें थोडे गर्भेज मनुष्य" इस बोलकी सिद्धी करते हैं—३४३ राजूका संपूर्ण लोक जीवोसे ठसाठस भरा है, बालाग्र जित्लीभी जगा खाली नहीं है उसमें त्रस जीव फक्त १४ राजमे है. जिसमें ७ राजु नीचे नर्क ओर ७ राजू माठेरा (कुछकम) उपर स्वर्ग जिसके बीचमें १८०० जो जनका जाडा ओर १ राजू चौडा तिरछा लोक गिना जाता है; जिसमें असंख्य द्विप समुद्र हैं उसमें ४५ लाख जोजन मेंही मनुष्य लोक गिना जाताहै. जिसमे. २० लाख जोजन तो समुद्रने रोकीहैं. ओर कुलाचलों (पर्वतो) ने. नदीयोने वनो ने बहुत जगा रोकीहैं मनुष्यके तो फक्त १०१ क्षेत्रहैं.(इस्ले थोडे मनुष्य है)जिसमें फक्त १५ क्षेत्र

क्षेत्रके३२००० देशमें फक्त २५॥ देश आर्य हैं ऐसे अन्य क्षेत्रोमे भी आर्य भूमीकी नुन्यता है. और १५ क्षेत्रमें से फक्त ५ महा विदेह क्षेत्रमे तो सदा धर्म करणी का जोग रहता हैं. और भरत ऐरावत १० क्षेत्रोंमें दश क्रोडाक्रोडी सागर सरपणी कालमे फक्त १ क्रोडाक्रोडी सागरही धर्म करणीका होता हैं सो प्रात होना बहूत मुशकिक हे ये भी मिलगया तो आर्य-क्षेत्र, उत्तम-कुल. दीर्घ आयुष्य. पूर्ण-इन्द्रीय निरोगी-सरीर. सुखे उपजीविक, सद्गुरु दर्शन. शास्त्र श्रवण-मनन-निध्यासन. होके भी भव्य पणा. सम्यक द्रष्टिप-णा. सुल्लभबोधी, हलुकर्मी. स्वल्प संसारीपणा वगैरे जोग मिले, तब धर्मपर रुची जगे; और बोध बीज सम्यक्त्वकी प्राप्ति होवे. देखा! कित्ना दुल्लभ बोध बीज मिलता हैं सो, हे भव्य जनो!! अत्यंत पुन्योद-यसे अपन बहोत उंचे आये है. बोध बीज हाथ लगा हैं (तो अब इसे व्यर्थ न गमाते) आत्म क्षेत्रमें इस बीजको रख, ज्ञान जल (पाणी) से सींचन करो, की जिससे धर्मवृक्षलगे जो मोक्ष पल देवें.

१२ "धर्म भावना"–"धारयेति धर्म्म" पडते जी-वको धर (पकड) रखे सो धर्म. "संसारंभी दु.ख पउरए" संसार सागर महा दु.खसे भरा हैं. इसमे पडतें

जीवको रोकके, मोक्ष स्थानमें पहोंचावे सो धर्म कहा जाता हैं. मोक्षार्थीको धर्मकी वहुत अवश्यकता हैं,वो धर्म कौनसा ? जैन कहे– "धम्मो मंगल मुक्कीटं, अहिंसा संजमोतवो" अर्थात मंगलकाकर्ता, सर्वसें उत्कृष्ट धर्म वोही है की जो- अहिंशा (दया) संयम (इन्द्रीय दमन) और तप करके संयुक्त होए. वेद कहते हैं- "अहिंशा परमोधर्म:" अर्थात् परमोत्कृष्ट धर्म वोही हे की जहां अहिंशा (दया) ने सर्वांग निवास किया हैं. पुराण कहते हैं- "अहिंशा लक्षणो धर्मः अधर्मः प्राणी नां वध:" अर्थात अहिंशा (दया) है सो धर्मका लक्षण और हिंशा हैसो अधर्म हैं. कुरान कहत हे. "फला तजअलुबुतनू कुम मकावरलहय वनात" अर्थात तूं पशू पक्षीकी कबर तेरे पेटमे मतकर. वाइवल कहते हैं— "दाउ शाल्ट नोट कील" (Thou shalt not kill) अर्थात् तू हिंशा करे मत इत्यादि सर्व शास्त्रोमें धर्मका मूल 'दया' ही फरमाया हैं. दयाके दो भेद, १ परदया तो छे काय जीवकी रक्षा करना, और २ स्वदया सो अपनी आत्मांको अनाचीर्ण (कुकर्मो) से वचाना, की जिससे अपणी आत्मा, आगमिक कालमें, सर्व दुःखसें छूट मोक्षके अनंत अक्षय सुखकी प्राप्ता करे.

यह १२ ही भावना, मुमुक्षु प्राणीयोको मोक्ष

गमन करते हुये पंक्तीये निसरणी रूपं हैं.

"पञ्चेन्द्री योपशमता"

१ 'श्रोतेंद्री='कानका स्वभव जीव, अजीव, और मिश्रके शब्द ग्रहण करनेका हैं, इसके वशमे पड मृगपशु मारा जाता हैं. २ 'चक्षु इन्द्री'=ऑखका स्वभाव काला-हरा-लाल- पीला और श्वेत, रुपको ग्रहण करनेका हैं, इसके वशमें पडके पतंग मारा जाता हैं. ३ 'घ्रणेन्द्री'=नाकका स्वभाव सुर्भिगंध और दुर्भिगंध को ग्रहण करनेका हैं इसके वशमे पड भ्रमरपक्षी मारा जाता हैं. ४ 'रसेन्द्री'=जिव्हाका स्वभाव-खट्टा-मीट्टा-तीखा-कडु-कषायला, रसको ग्रहण करनेका हैं इसके वशमें पड मच्छी मारी जाती हे ५ 'स्परझेंद्री'=कायाका स्वभाव हलका-भारी-ठन्डा-उन्हा-लुक्खा-चिक्कना-कोमल-खरदरा स्पर्शोंको ग्रहण करनेका हे. इसके वशमे पडके हाथी माराजाता हे अब जरा सोचाए, एकेक इन्द्रिके वश्यमे पडे, उनकी अकाल मृत्यू हुइ; तो जो पांचही इन्द्रिके वशमें पडे हे. उनका क्या हाल होगा? कृतकर्मका वदला दुर्गतिमें जाके अवश्यही भोगवेगे.

अज्ञानसें जीव दुःखरूप इन्द्रियोंके विषयमे सुख मा

नते है. यह अश्चर्य (तमाशा) भी तो जग देखीये! [१] जो शब्द सुननेंसे सुखही होयतो गाली सुन संतप्त क्यों होते हैं, क्योंकि उत्पती और ग्रहण करनेका स्थान तो एकही है, और जो गालीयोंको दुःख रुप मानते है वो स्नेही स्त्रीयोकी गाली सुन खुशी क्यों होते है. [२] रूप देखके प्रसन्न होते है तो अशुची देख क्यों घ्रणा (दुगंच्छा) करते है. क्योंकि वोभी कोइ वक्त में चित को हरण करने वाला पदार्थ था' तथा आगमिक कालमे रूपान्त्र पाके मजा देनेवाला होजाता है. और सच्चीही अशुचीसे नाखुष होवे तो स्त्री सम्बन्ध अशुची के मथनमे क्यों मजा मानते हैं. [३] दुगंध आनेसे नाक क्यों फिराना, क्योंकि वोभी एक तरहकी गंध हैं. रूपांत्र हो मनहर हो जाती हैं. और जो सचेही दुगंध से नाराज होते हो तो मृत्यु लोककी ५०० जोजन उपर दुगंध जातीहै, उसमे क्यों राचे है. [४] मन्योग-मधुर रस सेही जो सुख पाते है वो तो फिर हकीमसे क्यों कहे के शक्कर खाइ जिससे बुखार आगया, और घृत खाया जिससे खांसी होगइ. जो घृत शक्कर जैसे पदार्थ ही दु:ख दाता है. तो फिर अन्यका क्या कहे वैदक ,, है. "रस्साणी ते रोगाणी" अर्थात रसका

भोग रोगकाही कारण हैं. फिर इसमें सुख कैसे माने? ५ चित मुनीने ब्रम्हदत्त चक्रवृतसे कहा है-"सव्व आभरण भारा, सव्व काम दुहा वहा" अर्थात सर्व भूषण (गहणें) भार भूत हैं, और सर्व भोग दुःख दाता हैं, सो सच्चही हैं जैसे सुवर्ण धातू हैं वैसा लोहा भी धातू हैं राजाकी तर्फसे सुवर्णकी बेडीकी बक्षीस हुइ तो खुश होवे, हमे पांवमें पेहरने सोना मिला और लोहेकी बेडीकी बक्षीस होनेसें रुदन करते हैं इस विचारसे जाना जाता है, की भूषणमे सुख दुःख नहीं, माननेमेही है। ऐसेही सर्व काम भोग दुःख दाता है, उनका नामही विषय भोग है; अर्थात जेहर खाना परन्तु; जैसे विष (जेहर) और विशेष 'य' प्रत्यय हैतो यह जेहरसेभी अधिक घाती है भगवतने फरमाया है कि "कामभोगाणुरयणं अनंत संसार" वढणं, अर्थात्—काम भोगमे रक्त रहनेसे, अनंत संसार बढता है मतलबकी—विपत्तो एकही भवमे मारता है; और विषय भोग अनंत भवतक मारते हैं, बडे २ विद्वानोको और महा ऋषिधोको बावला बनादेता है ऐसा दुरुधर जेहर है विषय सुखकी इच्छा कर, भोगवते है, परन्तु क्या २ हानी होती है सो देखो, शक्ती, बुद्धी, तेज, स्तव इनको नष्ट कर, अत्यंत लुब्धतासे, सुजाक आदी

रोगोंसें, सड, कीडेपड, मरके नर्कमें पोलादकी गर्मागर्म पूतलीके साथ गमन करते अक्रांद करते है. ऐसे दुःखके सागर विषयको सर्व सुख सागर माने वो शाणा कैसा. * इश तमाशेपे लक्ष दे, धर्म ध्यानी पंचन्द्रियके विषय भोगकी अभीलाशा रूप अज्ञानताको दूर कर, निर्विषयी-निर्विकारी-बन सुखी होते हैं.

'दया-द्र भावः'

श्री सुयगडांग सूत्रके द्वितीय श्रुतस्कंधके प्रथम अध्ययनमें भगवंतने फरमाया हैं.



तत्थ खलु भगवंता छ जीवनिकाय हेउपणता तंजहा, पुढवी काए जाव तसकाए, से जहाणामए मम अस्साय दडेणवा अठीणवा. मुठीणवा, लेलूणवा, कवालेणवा, आउाट्टिज्जमाणस्सवा, हम्ममाणस्सवा तज्जिज्जमाणस्सवा. ताडिज्जमाणस्सवा. परियाविज्ज माणस्सवा. किलाविज्जमाणस्सवा उद्दविज्जमाणस्सवा; जाव लोमुख्खणणमायमावि हिंशाकारग दुख्ख भय प-

* सवैया-दीपक देख पतग जला और स्वरशद्ध सुण मृग दुखदाइ, सुगधलेइ मरा भ्रमरा और, रसके काजमच्छी मिरलाइ काज खुता गजराज, यह पपच महा दुःखदाइ; जो अम-
[illegible]

डिसवेदेंभि; इच्चेव जाण मव्वेजीवा, सव्वेसभूता, सव्वे पाणा, सव्वेसत्ता. दंडेनवा जाव कवालेणवा आउटिज्जमाणावा हम्ममाणावा तज्जिज्जमाणावा, ताडिज्जमाणावा, परियाविज्जमाणावा किलविज्जमाणावा. उद्दविज्जमाणावा जाव लोमुक्खणणमायमवि, हिंशाकारग दुक्खभय पडिसवेदेति एव नच्चा सव्वेपाणा जाव सत्ता णहतव्वा. ण अज्जावेयव्वा ण परिघेतव्वा, ण परित्तावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा, ॥श्री॥ से वेमी जेय अतिता जेय पडुपन्ना जेय आगमिस्सामि अरिहता भगवता सव्वेते एव माइक्खति. एव भासति एवपरुवेंति सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता ण हतव्वा ण अज्जावेयव्वा. ण परिघेतव्वा, ण परितावेयव्वा. ण उद्दवेयव्वा एसे धम्मे धुवे, णीतिए, सासए सामिच्चलोग खेयन्नेहि पवेदेति

अर्थ,—द्वादश जातकी प्रपदामे भगवत श्री तिर्थंकर देवने, निश्चयके साथ फारमाया हैकी, छे जीवकायोकी हिंसा—कर्मबन्धका कारण है वो छे जीवकायाके नाम कहतेंहे, पृथवी पाणी, अग्नी, वायू, विनस्पति, और त्रस, इनको दु ख देते, जैसा दु ख होताहे वो द्यां द्रष्टांत करके बतातें हे "जेसे * मुजे असाता-

* खुद श्री महावीर परमात्मा अपनेहीको दृष्टांतके फरमाते हैं।

मान. इत्यादि अनेक सूकार्योंकी करनेवाली श्री जीव दयाही हैं.

'दयाही धर्मका मुल है,' सर्व मत मतांतर एक दयाकेही सारेसें चलरहे है. दया-अनुकम्पाही सम्यक्त्वीयो (धर्मात्माओं) का लक्षण है. ऐसी पवित्र दयाको धर्म-ध्यानी आपणी आत्मामें सदा निवास देते है, अर्थात सदा दयाद्र भाव रखते है.*

दयाल अन्य जीवोंको दुःखदेख करुणा लाते है. त्रस स्थावर जीवोंको सरीरिक (रोगादिक) और मानसिक (चिंता)से पीडित देख, करुणा लावे. जैसे अव्वी कोइ दयवंत किसी बधीर (बैरे) को देख, विचारते हैं की, इस बेचारेके कैसा पापका उदय है, की यह सुण नहीं शक्ता है. बधीर और अन्धा दोनो दुःखसे पिडित देखनेसे विशेष दया आती है. वैसेही किसीको अंगोपांग व अन्न वस्त्र हीन देख, रोग सो-

* श्रेणीक राजागेसुत, हाथी भवदया पाली; मेदराथ दयकाज, माहदीयो मरणो, धर्मरुचीदयाधार, करगयाखवापार; श्रेणिक पडहवजायो, सूत्रमें निरणो; नेमजाने दया पाली, छोडदी राज लनारी; मेतारजदयापाल मेठ दियोमरणो; तेवीसमां जिनराय, तापसके पासजाय, जीवने बचायदीयो—नवकारकोसरणो; सबैपोसत्रायो कीयो घन्नाशीनामदीयो; जीवदया धर्मपालो, जो ये धात्रो निरणो. १ कृपारामजी महाराज

गसे पीडाते देख, बहुत दया आती है, तैसेही बेचारे तिर्यंच (पशु) अन्न वस्त्र गृह रहित निराधार है, पराधीनतासे क्षुधा-त्रषा-शीत-तापआदी अनेक दुःख भोगवते है, तिर्यंच पचेंद्रीसे चौरिंद्रीकों दुःख ज्यादा है क्यो कि वो एक इन्द्रि रहित है चौरिंद्रीसें तेंद्रीमें, तेंद्रीसे, बेद्री. बेद्रीसे एकेद्रीमें और एकेंद्रीसे निगोद (कंदमूळआदी)मे दुःख अधिक है. क्यों कि ये एक सरिरमें अनंत जीव एकत्र रहते है

एक महोर्त (४८ मिनट) मे ६५५३६ जन्म मरण करते है. इत्नी व घसी है की, दुःखसे छूटने का उपाय करनेकी शक्ती दूर रही, परन्तु अपना दुःख दूसरेको दरसाभी नही शक्ते है' बेचारे कृतकर्मके फल भुक्तेतेहै और उनकी घात करनेवाले वैसेही नवे कर्मोका बंध करते है, वो भोगवते उनके भी ऐसेही हाल होते है. ऐसा ज्ञानसे जाणनेवाले, फक्त एक श्रीजिनेश्वरके अनुयायीयोजहे वोही सब जीवोंको अभय देते है,* नही तो सब स्थान घमशाण मच

☞ * एकेंद्रीकी हिंशामें बेद्रीकी हिंशामें पाप ज्यादा, बेद्रीसे तेंद्रीकोंमें, तेद्रीसे चोरिंद्रीकोंमें, और चोरिंद्रीमे पचेंद्रीकी हिंशामें पाप ज्यादा, इसका मतलब यह है की, जो उच स्थिती को प्राप्त हुये है वो अनवानत पुन्यकी वृधी होनेसे, जैसे गरीबको गाळी

रहा है. मेरे जब्बर पुन्य है, की श्री जैन धर्मका ज्ञान मुजे प्राप्त हुवा. सुयगडायंग सूत्रमें फरमाया है की "एयं खु णाणीणो सारं, ज न हिंसइ किंच्चणं" अर्थात् निश्चय से ज्ञान प्राप्त करनेका सार येही है की, किंचित मात्र जीवकी हिंशा नहींज करना। इस लिये अब मै, सब जीवोको त्रिजोगकी विशुद्धी से अभय दानका दाता बनू. सबके वैर विरोधसे निवृतूं के फिर मुजे मोक्षमे जाते कोइभी किसी प्रकार की हरकत करने समर्थ न होय, दयाही मोक्षका सच्चा हेतू हैं.

"बन्ध"

कर्म बन्धनसे छूटनेसेही जीव को मोक्ष मिलता हैं, इस लिये मुमुक्षू को बन्धका स्वरूप जाणने की आवश्यकता हे वह बन्ध के कारण सुत्रमे ४ बताये हे सो-"पयइ'ठिइ'रस पएसा" अर्थात् १ प्रक्रुती बन्ध, २ स्थिती बन्ध, ३ अनुभाग बन्ध, ४ प्रदेश बन्ध,

---

देनेसे कोइ गिनतीमें नहीं लाता है, और चंडेको गाली देनेसे बड मकटमें पड जाता हैं, तैसे तथा जिन्नी उच्च स्थितीको माप हुवे, उतनेही आत्म कल्याण के नजीक आये उनको मारनेसे उन के आत्म कल्याण का जब्बर नुकशान करना है, तथा एकेंद्रीकी घात जिन ग्रन्थ वापनहीं करना है

यह ४ बन्धका का स्वरूप मोदक (लड्डु) के द्रष्टांत से कहते हैं

(१) 'प्रकृतीवन्ध' का स्वभाव-जैसे सूंठादिक से निपजे मोदकका स्वभाव होता है की, वायुनामें रोगका नाश करना, तैसे ज्ञानावरणी कर्मका स्वभाव है की, ज्ञानकूं ढकना. २ दर्शनावरणी कर्मका दर्शनको ढकना, ३वेदनीसे निरावाध—सुखकी हानी, ४मोहणीसे सम्यक्त्वकी हानी, ५आयुष्यसे अजरा मर पदकी हानी. ६नाम कर्मसे अरूपी पदकी हानी, ७गोत्रकर्मने अखोडकी हानी, और ८अतराय कर्मसें अनंत शक्तीकी हानी होती है

(२) 'स्थिती वध'का स्वभाव, जैसे वो मोदक महीनादी काल तक टिकते हैं तैसे ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनी, अतराय, यह उत्कृष्ट ३० क्रोडाक्रोड सागर मोहक ७० क्रोडाक्रोडी सागर आयुष्यकी ३३ सागर और नाम तथा गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट तिथी२० क्रोडाक्रोड सागरकी है (३) 'अनुभाग वन्ध' का स्वभाव, जैसे उन मोदकमे कोइ कडूवा होवे, कोट मीठा होवे तेसें ज्ञानावरणी, सूर्यको वद्दल ढके जैसा दर्शनावरणी-आँखका पट्टा वन्धे जैसा. वेदनी-मध(सेहत) भरी तरवार चाटे जैसा, मोहनी मदिरा

के नशेके जैसा. आयूष्यखोडे जैसा. नाम-कुम्भार जैसा गौत्र-चित्रकार जैसा, और अंतराय पहरायत जैसा है. (४) 'प्रदेशबन्ध'का स्वभाव, जैसे वह मोदक कोइ दुगणी, और कोइ तिगुणी सक्करके होते हैं, तैसे कित्लेक कर्मका वन्ध स्थिल (ढीला) और कित्नेका निवड (मजवूत) होता है, कोइ न्हश थोडी स्थितीवाले, और कोइ दीर्घ (लाम्बी) स्थितीवाले. होते हैं.

इन चार वन्धमेसे, प्रकृती और प्रदेश बंध तो योगोंसे होता है. तथा स्थिती और अनुभाग वन्ध कषायोंसे होता हैं. इन वन्धनसे जीव आनादीसे वन्धा है. किसीको तिव्ररसोदय, और किसीको मंद रसोदय हुवा है ऐसे जगतवासी जीवोंके देखते है की कोइ क्रुर प्रकृती वाले, और कोइ शांत प्रकृतीवाले, कोइ दीर्घायुषी तो कोइ अल्पायुषी, कोइ सूसंयोगी तो कोइ दूसंयोगी, और कोइ सूवर्ण सूसंस्थानी तो कोइ दुवर्ण दुसंस्थानी इत्यादीके प्रसंगसे अच्छेपे राग और बुरेपे द्वेश नहीं करना, क्यों कि वो वेचारे क्या करे, जैसा २ जिनके वन्धोदय हुवा है. वैसा वैसा संयोग वना हे, इसे पलटानेकी उनसे सत्ता हे, जो अपन उनको खोडीले कहे! इत्यादि विचारसे, खसम्वन्धी, श्रेष्ट, नष्ट, संयोग, वियोग, को देख, धर्म ध्यानी

समभाव रक्खे, जिससे सदा परमानंदी, परम सुखी बनें रहैं

"मोक्षगमन"

पहले जो बन्धका वर्णन किया, उस बधसे मुक्त होवे (छूटे) उसेही मोक्ष कहते हैं. जैसे बन्धनकें योगसे तुम्बा पाणीमें डूबा रहता है और वह बन्धन टूटतेही उस तुम्बेका पाणी उपर आके ठेहरनेका स्वभाव हैं. तैसेही जीव कर्म बन्धनसें छूटतेही, मोक्ष-स्थानमे जा ठेहरनेका स्वभाव हैं.* वह मोक्ष स्थान, लोकके मध्याभागमे जो त्रस नाल १४ राजू लम्बी हैं उसके उपर अग्रभागमें, एक सिद्ध शिला, ४५ लक्ष योजनकी लम्बीचौडी (गोलपतासे जैसी) मध्यमे ८ जोजन जाडी, कम-होती २ किनारेपे अत्यंत पतली है. श्वेत सुवर्णकी हैं उसपे एकही जोजन लोक हैं. उस जोजनके उपरके छठे विभागमें सिद्ध स्थान मोक्षस्थान हैं वहां मोक्ष प्राप्त हुये जीवके विशुद्ध निजात्म प्रदेश सस्थित (रहे) हैं अलोकको लगे हैं. वो सिद्ध भगवंत कैसे हैं

* जसे पाणीके आधार विन तुम्बा आगे जाता नहीं हैं तैसे ही धर्मास्तिकाय आधार विन जीव मोक्ष (लोकाग्र) के आगे (आलोकमे) जा सक्ता नहीं हैं



आत्मो पादानसिद्धं स्वय मतिशय व द्वीत बाधं विशालं वृद्धी=हास व्यापेतं विषयविरहित निष्प्रति द्वन्द्व भावम. अन्यद्रव्या न पेक्षं निरूपं मामितं शाश्वत सर्वकाल मुत्कृष्टा नन्तसारं परम,सुख मतस्तस्य सिद्धस्य जातम् १

अस्यार्थ—श्री सिद्धप्रमात्मा, निजात्म स्वरूप संस्थित. स्वय अतिशय युक्त, अव्वबाध (सर्व व्याधा निर्मुक्त) हानी वृद्धी रहित प्रतिपाक्षिकता वर्जित. अनौपम=किसीभी द्रव्यकी औपमारहित. ज्ञानादीकी अपेक्षा अपार नित्य, सर्व काल उत्तम. परम सारयुक्त इत्यादी अनंत सुख सिद्ध परमात्मा विलसते हैं.

औरभी सिद्ध परमात्मा अतिन्द्रिय सुखके भुक्ते हैं क्यो कि इन्द्रि जनित सुखतो फक्त कहने रूपही हे. परिणाम उनका दुःख रूप इन्द्री के विषय को पोषणसे दुःखही होता है, सो पहीले बताइ दिया. इस लिये सिद्ध भगवंत अनंत सुख के भुक्ता हे

सिद्ध परमात्मा ज्ञाना वर्णिय कर्मके नष्ट होनेसे, अनंत केवल ज्ञानवंत हुये, दर्शावर्णियके नाश होनेसे अनंत केवल दर्शनवंत हुये. वेदनिय कर्मके नाशसे निराबाध सुखके भुक्ता हुवे, मोहनिय

कर्मके क्षयसे शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्वी हुये. आयुष्य कर्मके नष्ट होनेसे अजरामर हुये. नाम कर्मके नाशसे, अरूपी हुये, गौत्र कर्मके नाशसे खोड (अप लक्षण) रहित हुये. और अंत्राय कर्मके क्षयसे, अनंत दानलब्धी, लाभलब्धी, भोग लब्धी, उपभोग लब्धी और अनंत बलविर्य लब्धी, के धरन हार हुये. ऐसे अनंत गुण सिद्ध भगवतके हैं उनका ध्यान ध्यानी करे.

"गति गमना"

पांच गतिमे गमन करनेके २० कारण— १ महारंभ=सदा त्रस स्थावर जीवोंका आरंभ (घमशाण) हो, ऐसा कारखाना चलावे २ महा परिग्रह=महा अनर्थ से द्रव्योपारजन करता अचके नहीं. और "चमडी जावो पण दमडी मत जावो" ऐसा लालची. ३ "कुणिमाहारी" मांस मदिरादी अभक्षका भक्षक ४ पचेंद्रिय वधक=मनुष्य पशुका घातिक. इन चार कर्मोंसे नर्कमें जाय ५ माया=दगावाज. ६ निबड माया=मीठा ठग, धुर्त. ७ मच्छरी=गुणीका द्वेषी. ८ कुड माणे—खोटे तोले मापे रक्खे. इन ४ कर्मोंसे तिर्यंच (पशु) गतिमे जाय ९ भद्रिक—सरल (दगा

हेत.) १० विनीत—नम्र कोमल स्वभावी मिलापु
१ दयाल—दुःखी देख करुणा करे, यथा-शक्त सुख
ा. १२ 'अमच्छरी'—गुणानुरागी शुभउन्नती इच्छक.
। ४ कर्मोसे मनुष्य गति पावे. १३ 'सराग संयमी'
ौर शिष्य, उपग्रहणपे ममत्व रखने वाले साधू.
४ 'संयमा संयम' श्रावक. १५ 'बालतपस्वी' हिशा
क तप करने वाले (कंद भक्षादी) १६ 'अकाम नि
रा' परवशम दुःख सहके मरने वाले, इन ४ कामों
देवता होय १७ ज्ञान—जीवादी ९ पदार्थ जाणे.
८ दर्शन—यथार्थ श्रद्धावंत. १९ चारित्र—शुद्ध संद-
[साधू] और २० तप—ज्ञान युक्त तपश्चर्या करने
ले. इन चार कामोंसे मोक्ष में जावे. इन २० कामों
से धर्म ध्यानी ४ गति के १६ कामोंको छोड मोक्ष
न जाने के ४ कामोंका साधन करे.

"हेतू"

संसार के हेतू ५७ हैं— २५ कशाय. १५ योग.
२ अव्रत. ५ मिथ्यात्व. यह ५७ हुये. इनका विस्तार
५ काय— १ अनंतान बन्धी क्रोधः पत्थर की
ाड जैसा. (कधी मिले नहीं) २ अनंतान बन्धी मानः
=पत्थर के स्थभ जैसा (कधी नही नमें) ३ अन-

तान वन्धी माया= वांशकी जड जैसी (गांठमें गांठ) ४ अनुतानवन्धी लोभ= किरमजी रंग जैसा (जले तो भी न जाय) [ये मिथ्यात्वी नर्क मे जाय] ५ अप्रत्याख्यानी क्रोध= धरती की तराड (वर्षाद सें मिळे) ६ अप्रत्याख्यानी मान=काष्ट स्थंभ (मेहनत से नमे) ७ अप्रत्याख्यानी माया=मीढाका शृंग (आंटे दिखे) ८अप्रत्या ख्यानी लोभ= *खंज्जरका रंग (क्षार से निकले) ९ [ये देशवृत घाती तिर्यंच में जाय] प्रत्या ख्यानी क्रोध= रेती की लकीर, हवा से मिले १० प्रत्याख्यानी मान=वेंत स्थंभ (नमाये नमें) ११ प्रत्याख्यानी माया--चलते वेले का मुत्र (वांक साफ दिखे) प्रत्याख्यानी लोभ-- कादवका रंग (सूखने से अलग हो) [यह सर्व वृत घातिक मनुष्य होवे]१३ संज्वलका क्रोध—पाणी की लकीर. १४ 'संज्वलकामान—तृणस्थंभ १५ संज्वलकी माया=वांशकी छूती १६'संज्वलका लोभ—पंतगका रग (यह केवल ज्ञानका घातीक, देवता होय) १७ 'हांस'– हॅसे, १८'रती' खुशी, १९ 'अरती'–उदासी १० 'भय'–डर. २१'शोक' चिन्ता, २२ दुगंच्छा. २३स्त्रीवेद २४ पुरुष वेद. २५ नपुंशक वेद, यह पचीसही कषाय कर्मके रसको आ-

*१ गाडीके पइडेका ऑगन

त्मापे जमाती हैं.

१५ जोग—१ सत्यमन, २ असत्यमन, ३ मिश्र मन, [साचा झूटा भेला] ४ व्यवहार मन, ५ सत्य (साचाभी नहीं झूटाभी नहीं ‡) भाषा ६ असत्य भाषा, ७ मिश्र भाषा, ८ व्यवहार भाषा. ९उदारिक–सप्त धातु मय, मनुष्य, तिर्यंच, का सरीर, १०उदारिक मिश्र–उदारिक उत्पन्न होते, या वेक्रय करते वक्त मिश्रता रहें. ११ वेक्रय-शुभाशुभ पुद्गलोंसें बना, नर्क, देव, का सरीर १२ वेक्रयमिश्र वेक्रय उपजे तब, या उत्तर वेक्रय करे तब मिश्रता रहे, १३ अहारिक–पूर्वधारी मुनी संशय निवारने आत्म प्रदेशका पूतला निकाले सो. १४ आरिक मिश्र–पूतला निकालते व समावते वक्त मिश्रता रहें. १५ कारमाण जोग प्रथम सरीरको छोड दूसरे सरीरमे जाती वक्त घलावू रूप साथ रहे सो. यह १५ योग कर्मोंका अकर्पण करते है.

१२ "अव्रत" (१-६) पृथवी, पाणी, अग्नी, वायू वनस्पति और त्रस. [इन छे कायका जिला आरंभ] (७-१२) श्रत, चक्षू, घण, रस, स्पर्श और मन [इन

‡ जैसे जलता तो तेल बत्ती और कहे दीवा जले जाते तो आप है और कहे ग्राम आया

छे इंद्रियोंके पोषणे लिये जक्तमे होता है उन) की अवृत समय २ अपच्चखाणीके अती है और कर्मका व न्ध करतीहै देखीये इद्रीयों पोषणे अनेक पर्चेंद्रीय-का कट्टा कर चमडा लाते है और वाजित्र मंडाते है. धातू गलाके कशाल भंभा प्रमुख वनाते है अनेक मनहर स्थान वस्त्र, भुषण भोजनादी सामुगृही अनेक आरंभ कर निपजाते हैं. मद्य, मांस अभक्षका अहार, परस्त्री वैश्यागमन, इत्यादी एकेक कर्म के पाप के सामे जो दीर्घद्रष्टी से विचारते हैं तो वेचारे पृथ-वीयादी जीवोका घमशाण द्रष्टी पडता हैं (१) एक वस्त्र निपजाणे पृथवी का पेट हलसे चीरना और खेती में खात न्हाख उसमे असख्य त्रसस्थावर कट्टा निदाणी प्रमुख अनेक खेती के पाप से झगड होवे कपास लगे उसे चूट भेलाकरे फिर गिरनी पे लोडावे, जावत वस्त्र तैयार होवें वहा तक असख्य त्रस स्थावरो का घमगाण हो जाय फिर रंगण कर्म वगैरे होवे वहां का पाप विचारीये ऐसे महा अनर्थ से एक वस्त्र नि-पजता है तैसेही भुषण को देखीये धातूर वादी धातू से मट्टी अलग कर, सोनार उसे गला घाट घड उज्व लादी क्रियामे किता आरभ होता है ऐसे भोजन म कान वगैरे ससारके अनेक कार्योको, अलग २ उत्पत्ती

से उपयोग में आवे वहां तक के पापोंके तर्फ द्रष्ट ल-
गाने से रोमांच होते हैं. ऐसा महा पाप करके यह
संसार भरा हैं और एकेक वेपारमें द्रष्ट लगाके देखो
किता जुलम निपजता हैं. कित्नेक पापतो अपने जाण
में होते है. और कित्नेक महा घोर जगतके पातकोंसे
अपन वाकेफ भी नहीं हैं. तो भी उनकी अवृत्त (पा-
पका हिस्सा) अपच्चखाणी सब जीवोंको लग रहा हैं.
जैसे घरके किमाड न लगाये तो विना जाणे देखे,
और विना मनभी कचरा घरमें घुस जाता है. तैसे वि-
न पच्चखाण किये पाप आत्माको लगता हैं. ऐसा जाण
मुमुक्षु जीवोंको बारेही अवृत्त रोकना चाहीये.

५ "मिथ्यात्व"=इस जीवने इस संसारमें अनंत
परिभ्रमण किया उसका हेतू मिथ्यात्व ही हैं, यह छू-
टना बहुतही मुशकिल हैं. क्योंकि अनादी कालका
सोवती हैं. और इसके छूटे विन मोक्ष नहीं मिले, इ-
सके लिये मुमुक्षु को इन की पहचान जरूरही करना
चाहीये. इनके मुख्य ५ भेद हैं

१ "अभिग्रह मिथ्यात्व"=खोटा पक्ष पक्का धार
ण करे, अर्थात् जो अज्ञान मद, क्रोध, मान, माया,
लोभ, रति, अरति, निद्रा, शोक, झूट, चोरी, मत्सर,
भय, हिंशा, प्रेम, क्रिडा, हांस यह १८ दोष युक्त होवे उ

न्हे सत्देव माने, और इन१८ दोष रहित अरिहंत देव हैं उन्हे कूदेव माने. ऐसेही हिंशा, झूट, चोरी, मैथुन, परिग्रह, पचेंद्रीके विषय भोगी चार कषायमें उनमत्त इन दुर्गुण युक्त ज्ञान दर्शक चारित्र तप विर्य[पचाचार] इर्या, भाषा, एषणा अदान निक्षेपना, परिठावणिया (यह सुमती) मन, वचन, काय, की गुप्ती इन सद्गु-णो रहित उनको गुरु माने. हिंशा, झूट, चोरी, मैथुन, परिग्रह कोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, क्लेश, चु-गली निंदा हर्ष, शोक रात्री भोजन मिथ्यात् यह अठा रह कामोंमें धर्म माने, और इससे सुलट जो हैं उसे अ धर्म माने ऐसे तीनही कुतत्वका पका कदाग्रह धार-ण किया पूछे से कहे हमारी पीडीयों से यह धर्म च-ला आता है. इसे हम कदापि नहीं छोडेंगे. ऐसा हठ ग्राही होवे सो अभिग्रह मिथ्यात्वी.

२ "अनाभिग्रह मिथ्यात्व"=सूदेव कुदेव सु-गुरु कूगुरू, सुधर्म, कुधर्म सबको एकसा (सरीखा) स-मजे के वंदे पूजे सत्यासत्य का निर्णय नहीं करे, कोइ समजाय तो कहेकी अपनको इस झगडेसे क्या मत-लब, सब महजबमें वडे २ विद्वान गुणवान बैठे हैं. तो किसे झूटा कहे सब अच्छे हैं.

३ 'अभिनिवेशिक मिथ्यात्व'=कूदेव, गुरु, धर्म

ओर शास्त्रका किसी सत्संग करके यथार्थ समज जाय की यह खोटा है परंतु लोकोंकी कूलगुरूओंकी शरस मे पड उन्हे छोडे नहीं; विचारे की जो में इसे छोड देवुंगा तो मेरे गुरु और मित्रों स्वजनो मुजे ठपका देगे, निंदा करेंगे, और इस महजब के तो ह्यां वहुत लोक हैं, मुजे आगेवानी कर रखा है सबमेर हुकम में चलते है. मेरा मान महात्म खूब वडा हे जो मै इसे छोड, देवूं तो सब वदलके निंदा अपमान करेंगे. इत्यादि विचार से खोटे को खोटा जाणता हुवा ही छोडे नहीं; अपना जन्म काली धार डुव रहा हे, उसका उसे बिलकुल फिकेर नहीं ऐसे भारी कर्मी जीवको अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी कहना.

४ "संशय मिथ्यात्व" =कित्नेक अल्पज्ञ जीव, तथा अज्ञानी, किसी पुण्य योग्यसे जैन धर्म तो पागये, जैन के शास्त्र सुणे, क्रिया करे, परंतु कित्नीक गहन बातों नहीं जचनेसे शंका करे की, सुइकी अग्र जित्नी जगामें अनंत जीव, पाणीकी बुंदमें असंख्याते जीव, पूर्व पल्योपम और सागरोपम का आयुष्य, हजारो, लाखो धनुष्यकी अवगहना, नगरीयोंका प्रमाण और वस्ती, चक्रवृतीकी ऋधि और प्राक्रम, लब्धीयों, भूगोल खगोल का हिंशाव तथा अरूपी जीवराशी, सुक्ष्म जीवों.

और मोक्षके सुख तथा आस्तित्व वगेरे २ वातोंसे वेम लावे, के यह असंभव वातों सच्ची कैसे मानी जाय परंतु यो नही विचारे की यह अनत ज्ञानीके समुद्र जैसे वचन मेरी लोटे जैसी बुद्धीमें कैसे समावे वितराग पुरुप मिथ्यालाप कदापि न करनेके, केवल ज्ञानमे जैसा द्रष्टी आया वैसा फरमाया. और सच है अब्बी १ जो क्रोड ओषधी के चूर्ण का राइ जित्ने विभागमें भी क्रोड औपधी का अंश समजते है,यह तो करतवी है, तो कुदरती कंदमूलके टुकडेमे अनंत जीव होवे उसमें क्या अश्चर्य? २ अब्बी भी हाथीका वडा और कुंथवेका छोटा सरीर होता है. वैसे ही गत कालमे मनुष्यादी की ज्यादा अवघेणा और ज्यादा आयुष्य होवे उसमे क्या आश्चर्य? ३ तथा हाथी वहुत दूरसे दिखता है और कूंथवा नजिककाही मुशीवत से दिखता है उससेभी ज्यादा सुक्षम पृथव्या दिकके जीव होवे और वो द्रष्टी न आवे इसमे क्या आश्चर्य? ४ अब्बी भी अन्यस्थानोमे वडे २ शेहर हैं तो प्राचीन कालमें १२ योजनके नगर शेहर होवे उसमे क्या आश्चर्य? ५ क्षेत्र फलावट से कोटी घर और मनुष्योकी वस्तीसें शंका लाते हे, परतु कोटी शब्दका अर्थ एक क्रोडही होव ऐसा न समजीये अब्बी भी क

ं ६ को और कहीं २० को क्रोडी कहते हैं. ऐसे
ा उस वक्तभी किसी वडी संख्याकों क्रोडी कहने
गे. ६ अब्बी भी एकेक मिनिटमें हजारो का व्याज
ावे, ऐसे श्रीमंत वेठे हैं. तो उस वक्त इभ पति आदी
वे उसमें क्या हरकत? ७ अब्बी भी लोहेकी शां-
ल तोडने वाले मनुष्य हैं, तो गत कालमें अ-
त बली होवे उसमे क्या अश्चर्य? ८ और पृथ्वी
ा अंतः किन्ने देखा है, जो केवलीके वचनको
त्थापके अमुक संख्यामें ही द्वीप समुद्र बताते हैं;
ौर जो द्विप समुद्र असंख्य हैं. तो उन्हमें प्र-
ाश करने वाले चन्द्र सूर्य भी असंख्य हुये चा
ीये. ९ ऑखसे विन देखे शब्द गन्ध आदी से
ही वस्तुकों कबूल करे, तो फिर अरूपी पदार्थ कों
िन देखे क्यो नहीं माने. १० घृत भोगव करके भी
सका स्वाद नहीं कह सक्के हो, तो मोक्षके सुखका
र्णन मुखसे कैसे हो सके, भोगवे सोही जाने. इत्या-
ि स्थुल विचारोंसे कित्नेक स्थुल वातोंका निर्णय हो
के, और कित्नेक अग्रह्य वातोका निर्णय नहीं भी हो
के तो भी सम्यक्त्व द्रष्टी वितरागके वचनोपे आस
ा रखते हैं. जैसे जवेरीके कहनेसे लाख रुपैके हीरे
ो लाखहीका मानते है. और मिथ्यात्वी शंशय में

पड सम्यक्त्व गमा देते है. सो संशयिक मिथ्यात्वी.

५ "अनाभोग मिथ्यात्व" =ऐकांत जड मुढ, न कुछ समजे और न कुछ करे, धर्माधर्म के नामको भी नहीं पहचाने, जैसे एकेंद्रीयादी जीव अव्यक्तव्य (अ-जाण) पण मे है. सो अनाभोग मिथ्यात्वी

मिथ्याका अर्थ झूटा होता है. अर्थात् सत्य को असत्य और असत्यको सत्य श्रधे, सोही मिथ्यात्व है इसे बुद्धिको भ्रष्ट बना के आत्म हितका नाश करने वाला जानके ध्यानी त्यागते है.

यह धर्म ध्यानका आज्ञा विचय नामे प्रथम पायेका फक्त एकही गाथा का सविस्तर अर्थ यत्किंचित वरणव किया. इसमें से ज्ञेय (जाणने योग्य) को जाणें. हेय (छोडने योग्य को) छोडे. उपादेय (आदर ने योग्यकों) आदरे अङ्गीकार करें.

औरभी भगवानकी आज्ञाका चिंतवन करेकी बहुतसे शास्त्रमे साधुओके लिये फरमाया है. "सयमेणं तवसा अप्पाणं भाव माणे विहरइ " अर्थात् पांच स्थावर तीन विकेंद्री, पचेंद्री, और अजीव(वस्त्र पात्र) इनकी यत्ना करे. मनादी त्रीयोग वसमे करे, सबके साथ प्रिती (मैत्री भाव) रखवे सदा उपयोग युक्त प्रवृते दिनको दृष्टीसे और रात्री को रजूहरणसें पुंज(झाडे)

के हरेक वस्तु काममें ले. अयोग्य वस्तु यत्नासें एकांत परिठावे (डालदे) यह १७ प्रकारके संयम और असण दो घडी, या जाव जीव अहार त्यागे. २ उणोदरी= उपाधी और कषाय कमी करे. ३ भिक्षाचारीसे उपजीवे. ४ रस (विगय) का परित्याग करे. ५ कायाको लोचादी क्लेश दे, ६ प्रतिसलिनता=इन्द्रीयों कषाय योग, को प्रवृत्ती घटावें ७ लगे पापका प्रायाछित ले शुद्ध हाबे ८–१२ विनय वयवच्च, सज्झाय, ध्यान, का उत्सर्ग करें, यह १२ प्रकारका तप ज्ञान युक्त करके अपणी आत्माको भावते (आत्मासें रमण करते) हुवे विचरे प्रवृत्ते.

और भी भगवानने श्री उत्तराध्येयनजी सूत्र में फरमाया है की "समय गोयम म-पमाय" अर्थात् हे गोतुम तथा मुमुक्षु जीवो अतम साधन मोक्ष प्राप्त करने के उपाय के कार्य मे किंचित समय (वक्त) भी प्रमाद मत करो!

"पांच प्रमाद."

गाथा— मद विषय कषाय, निंदा विकहा पंच भणीया
ए ए पंच पम्माया, जीवा पड्डुति ससारें

१ मद=जाति, कुल, बल, रूप, लाभ, ज्ञान

तप और ऐश्वर्य(मालकी) यह ८ प्रकारकी उत्तमता जीवोंकों पुण्योदयसे होती हैं, और इनका मद अभीमान करके जो संयम-वृत ब्रम्हचार्य परोपकारादी मे नहीं लगाते हे, तथा कुछेक अच्छे कार्यके प्रभावसे यत्किचित कीर्तीवंत हो, विचारते है की मे पण्डित हूं. शुद्धाचारी हूं. वक्ता हूं सब जन मुजे सत्कार सन्मान देते हैं. मे जगत्प्रसिद्ध हू. सरस्वति कंठा भरण, वादी विजय, वगैरे उपाधियों मुजे मिली हे. किबहूमें एक अद्वितिय महात्मा हूं. ऐसे विचारसे जो भरा हो. या स्वमुखसे कहता हो, वो ज्ञानादी गुणसे नष्ट हो, भ्रष्ट बनता है अभीमानी अपने किंचित् सद्गुणको मेरु तुल्य देखता हे, और अन्यके अपार गुणको तथा अपने अपार दुर्गुणोको राइ तुल्य किंचित समजता है, इस लिये वो अपना उद्धारा नही कर सक्ता हे. इत्यादी दुर्गुणोसे मद भरा है इस लिये इसे मद-मदिरा (दारु) के नाम से बोलाया हे

२ "विषय"=शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पाचहीकी पूर्णता पुण्योदयसे होतीहे. इने जो गुणी गुणउच्चार, साधू दर्शन, तप वगेरे सत्कार्यमे नहीं लगाते, विभत्सशब्दोचार, रूप अवलोकन, गंधग्रहण, अभक्ष भक्षण, और भोग विलाशमे लगाके नष्ट करते हे.

अमृत समान इन ५गुणोंको विषयमें लगा,विष(जेहर) रूप बना, दोनो भव में दुःखके भुक्ता होते है; इस लिये इसे विषय (जेहर) के नामसे बोलाये हे.

३ "कषाय"=क्रोध, मान, माया, और लोभ, यह चारही कषाय महा पापका मूल है. इनके वशमें हो जीव आपा (भान) भुल जाता है. आत्मघात, द्रव्य-नाश, यशकी क्ष्वारी, कुलका संहार, अयोग्य कार्य करते बिलकूल अचकाते नहीं है. निवल अनाथ को स्व प्र- क्राम से और बलिष्टोको दगासें नष्ट कर महा पापोसे अपणी आत्माको मलीन कर, दोनो लोकमें दुःखके भुक्ता होते हैं. इस लिये इन्हे कषाय, (कर्म का रस आय) या कसाइ (घातकी) नामसे बोलाते हैं.

४ "निंदा"=इस शद्बके दो अर्थ होते हे. (१) निंदा (निंद्या) इसे दशवैकालिक शास्त्रमें कहा हैं की, "पीठं मासं न खाइज्जा" अर्थात् किसीके पीछे निंदा (दुर्गुण प्रगट) करना है. उसे मांस भक्षण जैसा बता या हे निंदक ज्ञानी शुद्धाचारी, प्रभावक, धर्मोन्नत्ती कर्ता, तपस्वी, क्षमाशील, वगैरे के गुणानुवाद श्रवण कर सहन नहीं कर सक्ता हे, और उन्हे ढांकने उनकी निंदा करता हे, अच्छते आल बज्जा देता हे. कूतर्कोंसें उनकी भक्तीपे भोले लोकोंके भ■ उतारता हे. ऐसी

नीच निंदा ही निंदा पात्र है * (२) निद्रा (नींद) ये भी सत्कार्यमें विघान करनें वाला जव्वर शत्रू हे, इसकी धर्म स्थानमें विशेषता द्रष्टी आती हे किलेक मुनीवृत धारण कर, पापी श्रवण (साधु) बनते हैं, अर्थात् विना मेहनतसे अहार, वस्त्र, उपश्रयादी सामग्री के प्राप्त हो ने से, बे फिकर हो, बहुत काल निद्रामे गुजारते हे. यह निद्रा प्रमाद भी दोनो भवमें दुःख प्रद हैं.

५ विकहा=देशकथा, राजकथा, स्त्रीकथा, भक्त-कथा, यह चार प्रकारकी वी (खोटी) कथा कहीये. औ र भी चोरोकी धन की, धर्म खंडनकी, वैर विरोधकी, गुणग्रधक, कामोतेजक कलेद कारणी, परपीडा कारणी ग्लानी उत्पन्न करने वाली, इत्यादी अनेक प्रकार की वी कथा हैं. उसमे जो अमुल्य मनुष्य जन्मका आ-युज्य क्षय करते है, वो अन्याय करते हैं किलेक विद्वानो पर्षदा को खुश करने अनेक कपोल काल्पि-त वार्तों. कल्पित विषयिक ढालो. हांस शृंगार,

* सवैया, नर्क निगोदमेंमें निंदा का करणहार चंडाल म गान ज्यांकी सगत न कामकी; आपकी वडाइ पर हागीये मगन मुढ, ताकत पराये छिद्र नीत है इगमकी हाकी निंदा कान सुग, खुशी नहीं हाणा कर्भी, पांडे ने कोगा नर, तेरी बढ नाम की तिलोक कहेत तेर दोष हैं निन्दक गाढे गाम मर जाय आ गे गती यमधाम की.

विभत्सादी रसमे लीन बनाते हैं+ वो फुटी नाव के संगाती भक्त जनो सहित पातालमे बैठते है.

यह पांचही प्रमाद बडे दुरुधर है. श्री भगवती जीके ८ में शतकमें फरमाया है की, चार ज्ञानी, चउदे पूर्वी, अहारिक सरीर, ऐसे मुनीराज इन पंच प्रमादकें वसमे पड आयुष्य पूर्ण करे तो अधोगति पावें, ऐसे दुष्ट प्रमादों को जान भगवंत ने फरमाया हैं के "समय मात्र भी इसका सहवास मत करो." क्यो कि इसकी किंचित् संगतही ऐसी असर करती हैं. की फिर प्राणांत होते भी छूटना मुशकिल है. इस वक्त जैन जैसे पवित्र धर्मकी दुर्दशा हो रही है, वो इन्हीका प्रताप समजना. जो महात्मा पंच प्रमाद से वचेगें वो ध्यान सिद्धी प्राप्त कर सकेगे

यह आज्ञा विचय ध्यान अपार अर्थ से भरा है परंतु ह्यां इतना कहके अब सबका सारांश थोडेमे कहे यह पूरा करुंगा.

गाथा— कि वहुणाइह, जहा २ रागद्दोसा लहू विलज्जाति
तह २ पयटियव्व एमा आणा जिणिदाण १

अर्थ—ह्यां विशेष कहनेसे क्या प्रयोजन है!

+ दृष्टा दश मागा दश सागरी, दश सागात्र! रचा, गुरुजी तो गप्पा मारे, सबही जाणे मचा

बस थोडे मेही समजीये की, जैसे २ राग और द्वेष शिघ्रता (जल्दी) से कमी होवे वैसी २ प्रवृत्ती करो' येही श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञा है.

यह आज्ञा विचय धर्म ध्यानमे प्रवेश करनेसे मिथ्यात्वादी अनादी मलका नाश कर, चैतन्य को पवित्र बनाने जलवत है. आधी, व्याधी, उपाधी रूप ज्वालासे जलते जीवको शात करने पुष्करावर्त मेंघवत् हैं. अत्यंत गहन संसार समुद्रसे तारने सफरी झाज वत् हैं मोह वनचरो के नाशके लिये केशरीसिंहवत बुद्धी वीवेक बढाने को सरस्वतीवत् योगीयोके मनको रमाणे शांत आवास हैं इत्यादी अनेक गुणोके सागर आज्ञा विचय का चितवन धर्म ध्यानी सदा करते है.

द्वितीय पत्र-"अपाय विचय"

गाथा— अप्पाण मेव जुज्झाहि, किते जुज्झेण बझउ,
अप्पाणे मेव अप्पाण, जइता सुहमें हए.'

उत्तराध्ययन ९

अर्थात्—श्री नमीराज ऋषि सक्रेन्द्र से फरमाते है की, सुख इच्छको को अपणी आत्मामें रहे हुये दुर्गुणो का प्राजय करना चाहीये अन्यके साथ बाह्य (प्रगट) युद्ध करने की क्या जरूर है. ज्ञानादी आत्मा

से कषायादी आत्माके साथ युद्ध करनेसेही आत्मा सुख पाती हे.

"अपाय विचय" धर्म ध्यान के ध्याता ऐसा विचारे की, मेरा जीव सदा सुख चाहता है; अनंत भव हुये, सुखके लिये तडफ रहा हूं. अनेक उपाय करते भी अपाय होता हैं, कीहुइ मेहनत निर्फल होती है. इसका क्या कारण? यह मेरे उपाय को नष्ट कर मेरे को प्राप्त होते हुयें, मेरे पास रहे, अनंत अक्षय अव्यावाध सुखकी व्याघात करने वाला शत्रु हे ही कौन? हां! इत्ना निश्चय तो हुवा की वो शत्रूओं बाहिरका कोइ पदार्थ नहीं हैं. क्योंकि बाहिर होयतो, मुजे दुःख देने आते हुये द्रष्टी आते. मेरे शत्रूओं तो मेरे घरमें ही घर कर वैठे हैं. [ठीक हुवा ढुढनेका प्रयास घटा] आश्चर्य के इत्ने दिन मुजे क्यों नहीं दिखे? पर कहां से दिखे, क्योंकि मै तो आजतक इनको देखने स्व घर छोड पर घरमें भटकता फिरा और वो अन्दर रहे, मेरे उपायोंको नष्ट करते रहें. अच्छा अब तो मेरी मूल श्रधारूं. अंदर रहे बाह्य मित्र और अंतरिक शत्रूओंको अच्छीं तरह पहचानने बाह्य द्रष्टी बंद करूं. क्योंकि भगवाननें फरमाया है "एक समयमें दो कार्य न होवे" [ऐसा विचार आंख मीच अन्दर अवलोके] अहो! यह

मेरे शत्रू तो वडे जव्वर है. इनोने तो वडा ठाठ पाट जमा रक्खा है.

"मोहकी ऋद्धि"

यह तीन अज्ञान त्रिकोटसे घेरी हुइ प्रकृती कों पूरे और चार गति दवज्जे युक्त 'अविद्या' नगरीके मध्येन 'असंयम' मेहल की 'अधर्म' सभामें भृष्ट मति सिंहासणपे अति प्रचंड सरीरका धरणहार, मद मेंछका हुवा "मोहो" नामें महाराजा. अनाज्ञा शिरछत्र, और रति अरति दासीयोंके पास हर्ष शोक चमर डुलाते वेठे है, यह पाप पोशाकका भलका. अव्रत मुकटादी भूषणोका चलका और क्रिया खङ्ग मन मुखमली म्यानमें झलकताहैं, जडता ढाल पीछे ढलकतीहैं. यह इसकी मायारूप पटरागणी, चार सज्ञा दासीयोसे प्रवरी अर्धांगना वनीहै. यह काम देव कुँवर (पुत्र) ज्ञानावरणीयादी ७ मांडलिक महाराजा, मिथ्यात्व प्रधान, प्रमाद परोहित, राग द्वेष शन्यापति, क्रुरभाव कोटवाल, व्याक्षेप नगर श्रेष्ट, कुव्यश भंडारी. कुसंगदाणी निंदक पटेल कूकवीभाट प्रणामदूत. दंभ दुर्दंत पाखंड द्वारपाल इत्यादी महाजनो कर, सभा एक महाभयंकर रुपको धारण कररही

हैं नगरमे चौरासी लक्ष चोहटे. अनेक सरीर रूप सदनोमें. विचित्र प्रकृतियों प्रजाका वासेहै. प्रजाजनभी विचित्र स्वभावी है, जरा सत्कारसें फुलजाना और जरा अपमानसे रूस जाना. जरा लाभमें हर्ष और जरा नुकशानमे शोक. इत्यादी विचित्रता धरतेहै मानगजाधीश, क्रोध अश्वाधीश, कपटरथाधीश और लोभ पायदलाधीश वगैरे शैन्यभी बिकट हैं हय २ वडा जब्बर शत्रू निकला; मैं इकेला इसका कैसे प्रजाय करूं? और इच्छित सुख वरूं; मेरा तो कोइभी नही दिखताहै हे भगवान! अब क्या करूं?

"चैतन्यकी ऋद्धि"

उसी वक्त, एक नजीकही रहाहुवा 'विवेक' नामे चैतन्यका परम मित्र, हां हाथ जोड बोला क्यो चैतन्य महाराजा! क्या फिकरसे पडेहो? शत्रूओं को प्रबल देख सुरमें वणो कायरता तजो? [इन वचनोंसे चैतन्य ने विवेकको आपणा हितेच्छु जाण] और जवाब दिया, भाइ! विना शक्ती सुरमाइ क्या कामकी?

विवेक—वहा! महाराजा हो यह क्या शद्बो:

चार करते हो; आपके क्या टोटा हैं! आपकी ऋद्धि तो इस मोहकी ऋद्धिसे सर्व तरह अधिक है. परिवार शैन्य निडर और अप्रबल है. परन्तु आप शत्रूके तावे में हो, इस्से दिनमें कभी हमारे तर्फ द्रष्टीही नहीं करी तब हम बेचारे, श्वामीके आदर विन चुपचाप बैठे. आज आपने जरा सुद्रष्टी कर. हमारी तर्फ अवलोकन किया तो सेवक सेवामें उपस्थित हुवा, और अर्ज करता हूं की, आपके परिवारकी खबर लीजीये, सब को संभालके हुशार कीजीये, और फिर आप हुकम दीजीये. की फिर मोह जैसे केइ शत्रूओको क्षिणमें नष्ट कर आपका इच्छित करे!

इत्ना सुणते ही चैतन्य कों धैर्य आइ, और कहने लगा, प्यारे मित्र! मेरा परिवार मुजे बता.

विवेक—यह देखीये आपका तीन गुप्ती त्रि-कोटे से घेरा हुवा दान, सील, तप भाव दरवजे युक्त यह 'श्रध्दा' नगरके मध्यमे संयम मेहलकी धर्म शभामें 'सुमति' सिंहासन, जिनाज्ञा छत्र, और सम सम्वेग चमर कर शोभता है शुभ भाव सेठीये पुण्य दुकानों में ऋधी सिद्धी युक्त बैठे सुक्रिया बेपार कर रहे है और भी बहूत परिवार आपका है. सो शहरमे प्रवेश किये मिलेगा; परन्तु हुशारीके साथ प्रवेश करिये क्यों कि

'मोहनृप' ने अव्वलही प्रहरा चौकी का युक्त बंदोबस्त किया हैं डरीये नहीं. यह ली जी अति तिक्षण 'ज्ञान खड्ग' इस से सर्व कार्य फते होंगे.

इत्ना सुण चैतन्य श्रधा नगरमें प्रवेश करने प्रवृत्त हुवा, की तुर्त निथ्यात्वके मिथ्यामोह, मिश्रमोह, सम्यक्त्व मोह और अनतान बंधका चौक यह सातही जुजार सुभट सन्मुख हो बोले. खबर दार चैतन्य राय, आगे बढने देनेका मोहो महाराज का हुकम नही है.

चैतन्य ज्ञान खड्ले उनके सन्मुख होते ही सातही मोहके भग गये. चैतन्य उत्साहाके साथ नगरमें प्रवेश किया, छटा देख बहुत खुश हुवा. इत्नेमें अवृत के रखे १२ सुभट सन्मुख हो बोले, तुमे संयम मे हलमें पेशने देनेका हुकम नहीं है. चैतन्यने प्रत्याख्यन भालेसे उनको भगा और संयम मेहलमें गये, सुमति सिंहासणपे जिनाज्ञा छत्र धारण कर लज्जा और धैर्य दासिसे सम सम्वेग चमर ढुलाते हुये विराजे, उसी वक्त उनका सब परिवार सहर्ष विनय युक्त हाजिर हुवा, चेतन्य नें सबका यथा योग्य सत्कार किया, तत्व रुची और सुबुद्धी विरहणी पटरागणी योको अंकितमें स्थापन करी, पंच महावृत्तो को मंडलिक पद दिया. सम्य

क्त्व प्रधान, उद्यम-प्रोहित, उपशम सैन्याधीश, शांत-भाव-कोतवाल, शुभ भाव-नगर श्रेष्ट, विज्ञान-भंडारी, पर्मागमसे भंडार भरपुर, सत्संग-दाणी, व्यवहार पटेल. गुणीजन—भाट. सत्य दूत. न्याय-द्वारपाल मन निग्रह-अश्वाद्विप, मार्दव-गजाद्वीप, आर्जव-रथाद्वीप,और सं-तोप-पायकाद्वीप, इत्यादी को यथा योग्य पद पे स्थ-पन्न कर, चैतन्य माहाराजा आनंद से राजकरने लगे. परन्तु मोह के प्रबल प्रताप रुप छाप उनके हृदय मे चमक रही थी.

एक दिन सभामे बोले की, मेरे प्यारे मंत्री-सामंत गणो ! मे आप के संयोग से बहुत आनंद पा-याहू-तथापी जब तक मोह शत्रु नष्ट न होगा. तब तक मूजे पूरा सुख हुवा नही मानता हूं. इस लिये मोह के नष्ट होने का अव्वल प्रयत्न किया चहाता हूं. इत्य सुणतेही विवेकादी सर्व, नम्रतापुर्वक बोले, नाथ की जीये शिघ्र सजाइ चलिये अब्बी एक क्षिण मे मोह का नाशकर, अपका इष्टिनार्थ सिद्ध कर, सर्व सुखी ब-नाये चैतन्य का हुकम होतेही सब सुभटो मोहके प्राजय [illegible] सजाइ करने लगे

यह स [illegible] व.र प्रगास [illegible] सुभट द्वारा मोहो नृपने पयेकी, चतन्यने श्र [illegible] नगरीको सखम घेहल हु-

क्त तावें में कर, खूब ठाट जमाया हैं. और आपको प्राजय करनेकी तैयारी कर रहा हैं. इत्ना सुणतेही, मोहो क्रोधातुर हो बोला, देखो मेरे प्यारे मित्र सामंतो! अनंत वक्त चैतन्य को मना किया की, तूं यह ढोंग मत कर. परंतु वेहया (निरलज्जा) इत्नी २फजीती होतेभी नहीं शरमाता है. चलीये उसे जरा स सजा, कैद करें, अपने तावेमें करें. इत्ना सुणतेही मोहके पाखंड सेवकने कूवोध भेरी वजाके शैन्याकों हुशार करी, सब सेवक चोक उठ, और अपनी २ सजाइ सजी मद मत वाले अभीमान हाथी, चंचल चपल मन अश्व, रंगी बेरंगी झणणाट करते कपट रथ, और अतिवलिष्ट लोभ पायदलों के समोह से प्रवरे, तमश वक्तर पेहन, कूक्रिया शस्त्र धार, तीन कूलेश्या रूप काले, नीले, हरे, निशाण फरराते कूअलाप वाजिंत्रो के झणकारसे गगन गर्जावने, कर्मोदय मोहूर्त में प्रयाण कर कर्म रोहण मार्गपे आ. मोह महाराजा स परिवार खडे हुये.

मोह की शैन्या देख अधव्यशाय सन्धीपाल चैतन्य के पास आ के अर्ज करने लगे, की हे श्वामी! हम दोनो पक्ष का भला चहाते, हैं और चेनाते हैं की "मोह नृप बहुत प्राचीन वृध है. आपं जैसे तरुण महाराजाको, उनका अपमान करना योग्य नही है. आप

जानते हो, उनकी शैन्यका प्रवल प्रताप की, तीनही लोकको तावे कर रक्खा है उनसे आपकी जीत होनी मुशकिल हैं, वक्तपे ऐसा न हो की, आपकी शैन्य उन में मिल जानेसे आपका अपमान होय, और राज भी जाय! इस लिये आप सन्मुख जाके सन्य कर लीजीये. वृधो की सेवामें अपमान न समजीये.

यह सुण चैतन्य हॅस के बोले मै सब समजता हुं. जहां लग सिंह गुफामे निद्रिस्थ रहता है वहा तक ही वनचरो को उन्माद करनेका अवकाश मिलता है. समजे! वहुत कालके उडते धूलेको, क्षिणिमें मेघ दवा देता है! मेरे विन उस मोहको पहचानने वाला दूसरा है ही कोन? इत्ने दिन गम्म खाई, यह मेरी भूल हुइ अन्यायीकी पयमाली करनाही हमारा कर्तव्य हैं!! क्या तुम नहीं जानते हो, मै मोहके तावेमे था, जब मेरी कैसी फजीती करी हैं उसका क्षिण २ मुजे स्मरण होता है, अब मैं मूर्ख न रहा की, पीछा उसके तावेमें हो, फजीती करावूं! इत्ने दिन मेरे परिवारकी मुजे पहचान नहीं थी. पर विवेक मंत्रीश्वरका भला हो• इस दुःखसे छोडने, उनोने मुजे युक्ती और सामुग्री व ताइ. मै मोहके सन्मुख हो, नष्ट करने तैयार था. अच्छा हुवा की वो सामे आगया. जरा तुम खडे रहो'

मेरी शैन्याका पराक्रम देखोगे, की त्रिलोक पूज्य मोह महाराजा की क्या दुर्दशा होती हैं. इत्ना कह चैतन्य राजने सद्गुरु सुभटके पाससे, सद्बोध भेरी वजवाके शैन्य सज कराइ. उसी वक्त शांत रसमें भरे हुये मन निग्रह अश्व, वैराग्य मदमें घुमते हुये मार्दव गज, सरलतासे शामित आर्जव रथ. और सदा त्रप्त संतोष पायदल, चतुरंगणी शैन्य; क्षमा बक्तर, तप रूप अनेक शस्त्रसे सज हो, स्वध्याय रूप नगारे घुरांते भजन रूप रणणाइयों सणणाते. वैराग्य पंथमे आगे बढते तीन, शुभ लश्या रूप लाल, पीले और श्वेत, निशाण फर्राते, गुणस्थान रोहण रणांगणमें आ खडे हुये.

दोनो मालिको का हुकम होतेही संग्राम सुरू हुवा, मोहकी तर्फसे 'मिथ्यात्व मंत्रीश्वर' पच्चीस उमराव और अनंत सुभटोंके साथ, चैतन्य का सामना कर, कहने लगे, क्योंरे चैतन्य! तुजे मेरे त्रीलोकव्यापी प्राक्रम का विस्मरण होगया दिखता है. तेरी अनंत वक्त ख्वारी करी तोभी वेशरम, लडने तैयार हुवाहै. देख अभी एक क्षिणमें तुजे रिप्र बाणसे पतन कर पातालमे पहोचाता हूं कुदेव कुगुरु,कुधर्म,कुशास्त्र,के मेरे सेवकोंके हाथ फजीती कराता हू-एसा ऋचकार करता, बाण खेंच उडा रहा.

तब चैतन्यसे विवेक बोला देखीये श्वामी यह मोहका मानेता प्रधान मिथ्यात्व है, यह सम्यक्त्व प्रधानजीकी द्रष्टी मात्रसेही मर जायगा. इसके मरनेसे मोहकी सब शैन्य स्थिल होजायगी, और अपनी श्रधा नगरी निर्विघन होजायगी. यह सुन 'सम्यक्त्व' मंत्रश्वर पांच समकित महा जोधे और शैन्य साथ मिथ्यात्वके सन्मुख हों. तत्वातत्व बिचार रूप वाण छोडतेही मिथ्यात्वका सपरिवार नाश होगया. चैतन्यकी शैन्यमें जीत नगारा बजा. और मोह तो अति बलिष्ट मंत्रीके त्रियोगसे अत्यत खेदित हुये. तब 'अव्रतराय' मोहसे बोले आप फिकर न कीजीये. अब्बी मै प्रधानजीका बदला लेता हूं विचारा चैतन्य, मेरे आगे क्या करेगा. ऐसा कहे, बारे उमरावोंके साथ चैतन्यके सन्मुख आ कहने लगे रे! चैतन्य ऐसे तेरे ढोंगोको मैनें बहुधा नष्ट कियें तो भी तूं सामे होता नहीं शरमाया, आ देख मजा

तब चैतन्यसे विवेक बोले इसे जीतने समर्थ अपने सर्व वृतिराय है वो इसका क्षिणमें नाश कर संयम मेहलको निर्विघन कर देंगे यह सुण 'सर्व व्रत राय' तेरे चारित्र और अनेक शूभ प्रणाम सूभटोसे प्रवरे. वैराग्य वाणके वृष्टीमे अव्रत जी काल धर्म

प्राप्त हुये, चैतन्यकी जीत हुइ, और मोह तो अत्यंत दिलगीर हो कहने लगे की, अवके चैतन्यसे फते पानी मुशकिल हैं. तव 'प्रमाद सिंघजी' हंसते २ वोले. ऐसे ढोंग चैतन्यने केइ वक्त किये है. मैंने पूर्वधारी महा मुनीयोंको भी नर्कगामी बना दिये तो इस बिचारे की क्या गिनती ! दाक्षिणके वद्दल ज्यों वायू बिखेरता है. त्योंमें अभी चैतन्यकी सब शैन्य भगा देता हूं, ऐसा गरुर करते, पांच उमः राव, और केइ शुभटों से परवरे, चेतन्य सन्मुख हो कहनें लगे के अब मेरे आगेसे भगके कहां जा यगा. तेरे घमंड को अभी नष्ट करता हूं. तब विवेक बोले, इनको भगाने उपशाम रावजी स्मर्थ हैं, के उप शमराव तुर्त पंच अप्रमादरूप पांच उमराव और केइ सुभटों साथ. प्रमादके सन्मुख हुवे प्रणाम धारा रूप गोलीकोंके वर्षाद से प्रमादका पतन किया, की चैत न्य ध्यानमें लीन हो सुखी हुवे.

मोह, प्रमाद रावका मृत्यु सुन, होंस हवास भूल गये. तब कामदेव वोले, पिताजी मेरे जैसे प्राक्र मी पुत्र आपके होते आप फिक्र क्यो करते हो, अभी वातही वातमें चैतन्यको कुब्जमें कर लाता हूं. कंवर साहेब के यह वचन सुन स्त्री, पुरुष, और नपूं

शक यह तीनही उमराव खडे हो कहने लगे की हम कुँवर साहेबके मदतमे जाते हैं. चैतन्यका घमंड एक क्षिणमें गमाते हैं. तव अश्वाधिप क्रोधजी, खडे हो धमधामायमान होते बोले. किसने जननी का दूध पचाया की है की, जो मेरें सन्मुख खडा रहे क्रोध राग-द्वेष, कलह-चंड, भंड विवाद यह सुभटके सामे टिके तव गजाद्विप अभीमानजी बोले, मैंने केइ वक्त चैतन्यको हीन दीन, वना दिया हे, क्या अविनय मान मद, दर्प, स्थंभ, उत्कर्ष, गर्व, यह मेरे सुभटोंका प्राक्रमी कमी है. तव-रथा द्विप कपटजी कहने लगे मैने चैतन्यको केइ वक्त लेंगे, लुगडे, चुडीयो पहनाइ हैं, अब क्या छोड दूंगा- माया, उपाधी, कृती, गहन, कूड वंचन, यह मेरे सुभट-कम प्राक्रमी हे क्या ? यो यह तीनही स-परवार, कामदेवके साथ हुये, इनसे कामदेवका ठाट सबसे अधिक हुवा, अनुराग रणसिंग्घा बजाते. एकदम चैतन्यपे विषय रागरूप बाणोका वर्षाद सुरू किया, क्रोधजी ज्वालामय वाण छोडने लगे, अभीमान जी स्थभन विद्या डाली, दगाजी गुप्तरीत क्षय करने प्रवृत हुये, यह अविमासा एकदम जुलम होता देख, चैतन्यसें विवेक वोले आप घवराइये नहीं; शांती ढालकी ओटमें विराजे रहो. कामदेवको निर्वेद

राय, क्रोधका क्षमाचंद्र, मानका मार्दव सिंह, दगाका अर्जव प्रसाद, एक क्षिणमें नाश कर डालेंगे. इत्ना सुणतेही सर्व राजिंद्रो सजहो १८००० सिलांग रथ के झणझणाट करते सन्मुख हुवे नववाड संग्घीन शैन्यके कोटसे घेरे हुये, वैराग्य वाणो की मेघ धारा परे वृष्टी होतेही, कामदेव मृत्यु पाये. उनके तीनही उमराव भग गये उदर क्षमाचंद्रने क्रोधका, मार्दव सिहने मानका, और अर्जव प्रसादने दगाका नाश किया. चैतन्यकी शैन्यमें जय २ कार हुवा. चैतन्य निर्विषयी बन शांत सरल हो पर्मानंद भोगवने लगे.

मोह नृप, प्यारे पुत्र और तीनो बलिष्ट उमरावोकी मृत्यु सुन मूर्छा खागये. हाय त्रहा करने लगे. लाल ऑख कर कहने लगे. अब मै खुदही चैतन्य का नाश करूंगा! तब 'लोभ राय' बोले आप जैसे महाराजाको, चैतन्य जैसे बच्चे के सामे जाना लाजम नहीं है, मैने एक उपाय विचारा है, वो यह है की चैतन्य को 'उपशम मोह' नामे किल्ला देनेका लोभ देवो, उसमें गया की उसमें गुप्त रहे हुये अपने सुभट उसकी सब शैन्यका नाश कर, आपके तावेमे कर देगे. यह गल्ला मोहको पसंद पडी. और कहा जल्दी करो. की तुर्त लोभचंद्र सज हुये. उन्हके साथ हांस, रत्य,

अरत्य, भय, शोक, दुगछा यह उमरावो सपरिवार सज्ज हो चले.

चैतन्यकी आज्ञा ले विवेक चन्द्र धर्म सभामें अपने सर्व मंडलिक और सामंत सुभटोंकी सभा कर कहने लगे भाइयो! अपना बहुतसा काम फते होगया. और जो कुछ रहा है. वो थोडेमेही पार पडनेंकी आशा है परन्तु गुप्त एलची द्वारा खबर मिली है की उपशम किल्लेमें मोहने गुप्त सुभटो वेठा रखे हैं. इस लिये किसीभी लालचसे ललचा, उस किल्लेमे कोइभी प्रवेश मत करना रस्ते के सर्व उपसर्ग अडग पणे सहे, क्षिण कषाय किल्लेमें प्रवेश करे की, जिससे मोहका एक क्षिणमे प्राजय कर, इच्छित काम फते हो यह विवेक का बौध सर्वने सहर्ष बधा लिया और तुर्त स जहो क्षिणमोह किल्लेकी तर्फ प्रयाण किया

रस्तेमें 'लोभचन्द्र' मिल गये और मधुरतासे कहने लगे अब क्यो भगते हो, हमारा सत्यानाश तो तुमने मिला दिया अब सब तुमाराही हैं, डरो मत! यह 'उपशम कषाय' किल्ला तुमाराही है इसमें वे फिकर रहो मोह रायतो बेचारे चुपचाप बैठे-हैं अब तुम्हारा नामही नहीं लवेंग

इन सब दगोसे विवेक ने अव्वलही वाकेफ

किये थे. इस लिये लोभके मिठे बचनसे कोइ ठगा· ये नहीं, और आगे चलने लगे. तब लोभचन्द्र असुरत्र हो सपरिवार सामे हुया, अरे दुष्टो! मेरें भाइयोंको मार कहां जाते हो, अब मै तुमें छोडने वाला नही!! यों कहे सर्व शैन्य युक्त चैतन्यकी शैन्य पर. इच्छा त्रष्णा मु· र्च्छा,कांक्षा गृधता आशा इत्यादी बाणोंकी वृष्टी कर ने लगे, की उसही वक्त चैतन्यने क्षायिक बाणोका प्रहार कर लोभका सपरिवार नाश कर बे फिकर हो क्षिण कषाय किल्लेमें भराके परमानंद पाये.

लोभचंद्रका सपरिवार नाश कर क्षिण कषाय किल्लेमे चैतन्यने निवास किया है. ऐसी मोह कों खबर होतेही सतंगें ढिले पडगये. जीतनेकी आशातो दूर रही, परंतु इज्जत और जान बचना मुशीबत हो गया. तो भी मानके मरोडे आप खुद चैतन्यका प्राजय क रने खडे हुये तब ज्ञानावरण आदी सात महा मंड· लिक राजा, अपने असंख्य दल बलले साथ हुये. सब- साथ चैतन्यकी तर्फ चले.

यह चैतन्यको खबर होतेही क्षायिक सम्यक्त्व क्षायथिक यथाख्यात चारित्र, यह महा पराक्रमी रा- जाओके साथ, करण सत्य, भाव सत्य, योग सत्य, व रक्तसे सज हो विरागी अकषायी, शस्त्र ले, संपूर्ण

संवुडता रूप चारो तर्फ वंदोवस्त कर, संपूर्ण भविता त्म रूप मद छक हो महाज्ञान वाजिंत्रोके झणकार सें, महाध्यान निशाण फर्राते, महा तप तेज कर दीपते, अमोह अविकारी पणे अपडवाइता • द्रढताधार. क्षपक श्रेणि रूप चोगानमें सव परिवारसे परवरे खडे हुवे

चैतन्यको ऐसे ठाठसे सामे खडा देख, मोह मद छक हो वोला, रे चैतन्य! तूं मेरे घरमें वडा हुवा, अनंत काल मेरी सेवामें तुजे हुवे, निमक हरामी! अव मेरे सेही लडने तैयार हुवा, यह तुजे जो ऋधि प्राप्त हुइ हैं सो सव मेराही पुण्य प्रताप हैं; ऐसी २ ऋद्धि तुजे पहले केइ वक्त मिली, और तूं केइ वक्त मेरा सामना किया. अनन वक्त तेरी मैने ख्वारी करी. तो भी तूं नहीं शरमाय और सव वीती भूल, मेरा सामना करता है लिहाज कर २ शरमा आवतो जरा!!

चैतन्य—हांजी मेरी लाज को गमा, अनंत कालसे मेरी फजीती करनेवाले आपको अव मैने पेछाने, तवही मुजे लिहाज पैदा हुइ. तवही तुमारे सर्व परिवार का नाश कर तुमारे सामे अडग खडा हू तुमे भी मरनेका शोक हुवा हैं जो सवका नाश देखतेही मेरे सामे आये हो, तो संभालिये. इत्ना कहतेही चैतन्यने मोहके मस्तकमें क्षायिक खड्गका प्रहार कर

मोहका नाश किया. उसी वक्त ७ मंडिकोमेसे ज्ञानावरणिय, दर्शनावर्णिय, और अंतराय इन तीनोका स्वभाविक नाश होगया. उसी वक्त आकाशमें सब देवताओनें जय २ कार किया. श्रेष्ट द्रव्यकी वृष्टी करी. देव धुंदवी बजने लगी. चैतन्य महाराज को कैवल्य ज्ञान कैवल्य दर्शन रूप महा ऋधी की प्राप्ती हुइ. और तीनही लोकमें चैतन्यकी आण दुवाइ फिर गइ. सर्व जक्तके वंदनिय पूज्यानिय चैतन्य महाराजा हुवे.

विवेक मंत्रीश्वर की सल्लासे, चैतन्य रायका सब काम सिद्ध हुवा जाण, सब परिवारसे संयम मेहल में परमानंद भोग लगे, एक दिन विवेकचन्द्रजी बोले स्वामी आपके इष्टितार्थ सिद्धीसे मै बडा खुश हुवा. हूं. और आप सर्वज्ञ सर्व दर्शी हूये इस लिये मै आपको किसी प्रकार सल्ला देनेभी असमर्थ हूं, आप जानते ही होके आपके चार शत्रू आपसे मिले हुये हैं. उनकाभी कूछ विचार ?

चैतन्य महाराजा बोले कुछ विचार नही. वो वेचार नीवल होके पडे हैं, और वो जो कुछ करते हे, सो जग जीव का भला होवे. वैसाही करते है. मुजे उनसे कुछ हरकत नही हैं आयुष्य, नाम, गौत्र, और साता वेद निया, ये सब एक आयुष्य के आधार से टिके हैं.

और आयुष्य तो बेचारा स्वभाव से ही क्षिण २ में क्षय होता हैं, सर्वथा क्षय हुवा की, बाकी के तीनही उस के सात क्षय होजायेंगे; की फिर अपन सीधे शिव पूर में जाके, अजर, अमर, अवीकार हो, अक्षय, अनंत, परमसुख के भुक्ता बनेंगे.

अपाय विचया नामे धर्म ध्यान के दूसरे पाये के ध्याता, अनंतकाल से आपय करने वाले, कर्मशत्रू ओंका नाश करने का विचार, एकाग्रतासे तथा भूत-हो चिंतवनाकरें. और कर्मवृधी के कामोंसे निवृती भाव धारनकर, आत्मा सुख के उपायमे संलग्न बन, मौक्ष मार्ग मे प्रवृतने सामर्थ्य बने वो कोइ कालमें सुखके भुक्ता जरूरही होवेगे

तृतीय पत्र-"विपाक विचय"

हा ! हा : क्या आश्चर्य कारक इस जगतका व नाव दृष्टि आता है. जीव जीव सब एकसे हो, कोइ सुखी तो कोइ दु:खी, ऐसेही, नीच, ऊंच, मूर्ख विद्वा न, दालिद्री श्रीमत, वगैरे विचित्र रचना दिखती है इसका क्या कारण ? जीव अपना आपही तो बूरा न करे! इस लिये बुरे उपाय कराने वाला, 'जीवके साथ दूसरा भी कोइ हे ? दूसरा कौन है ? (जरा विचार

कर.) हां, जो अपाय विचय में विचारसे पैछाना थ वोही, अंदर रहा हुवा कर्म रूप शत्रू हैं. वो दो प्रक रके विपाक उत्पन्न करता है. (१) अशुभ कर्म रू कडुवा और (२) शुभ तर्क रूप मीठा. शुभ कर्मवे फल भोगवते जीव मजा मानता है. जिससे अशुभ बंध होता है. और दुःख भोगवता है. यो अशुभका क्षय होते शुभकी वृधी होती है. ऐसा राती दिवस की तरह यह सिलासिला अनादी काल से चलाही आता है.

अब शुभाशुभ कर्मों उपराजन करनेकी रीती शास्त्रानुसार विचारनेकी आवश्यकता है. की कौनसे कर्मोंसे जीव सुख पाता है. और कौनसे से दुःख पाता है.

१ प्रश्न--श्रोत इंद्रीकी हीनता कायसे होय? उत्तर--विकथा श्रवण कर खुश होय, सत्य को असत्य और असत्यकों सत्य ठहराय, बधीर (बैरे) की हांसी करे, चीड़ावे. अन्यको बधीर बनाने उपचार करे, दीन गरीबोंके करुणा मय शब्दो अजीजीपर ध्यान नहीं दिया, सद्बोध शास्त्र श्रुवण न करे. इत्यादी कर्मों करनेसे बधीर (बैरा) होवे. कानका रोगिष्ट होवे. तथा चौरिंद्री पना पावे

२ श्रोत इन्द्रिकी प्रबलताकायसे होय? उ.-शास्त्र और सूकथा श्रवण करे. यथातथ्य (जैसा का वैसा) श्रधान करे, बधीरोंकी दया करे. यथा शक्त सहाय करे, दीनोकी अर्जपे गौर कर मिष्ट वचनसे सतोपे, गुणीयोके गुण सुण हर्षावे, निंदा श्रवण नही करे तो श्रोतेंद्री (कान) निरोग्यता सुन्दरता तिव्रश्रुता पावे, तथा पाचेंद्री पणा पावें.

३ प्र.-चक्षू इन्द्रिकी हीनता कायसे होय? उ.-स्त्री पुरुपके सुन्दर रूपको देख विषयानुराग धरे, कुरूपा देख दुर्गच्छा निंदा करे, अन्धोकी हँसी करे, चिडावे, मनुष्य पशूकी आँखोको इजा करे या फोडे. कूशास्त्र व पुस्तक पत्र आदी पढे, नाटकादि अवलोकन करे, नेत्रके विषयमे आशक्त होनेसे या करूर द्रष्टीसे देखनेसे नेत्रकी कुचेष्टा करनेसे अन्धा, काणा, चींचटा वगैरे नेत्रका रोगी होवे, तथा तेंद्री पना पावे

४ प्र-चक्षु इन्द्रिकी प्रवलता कायसे पावे? उ.-साधू साध्वीयोंके दर्शनसे हर्षावे, धर्मानूराग धरे, विषय जनक रूप देख तुर्त द्रष्टी फेरले, नेत्रके रोगीयोंकी दया करे, सहायता करे, सत्सास्त्र व पुस्तक पत्रोंका पठन करे, विषयसे नेत्रवशमे करे, तो निरोगी सतेज, मनहर, दीर्घ विषयीं आँखो पावे.

५ प्र--घ्रणेंद्रीकी हीनता कायसे पावे? उ--सुगन्धी पदार्थोंका अनुराग हो. अत्र पुष्पादी सेवन करे, दुर्गंधका द्वेषी हो, नाशिका हीनकी (गुंगेकी नकटेकी) हांसी करे, दुःख दे. अन्य-मनुष्य, पशू, पक्षीयादिका नाशिकाका छेदन भेदन,-करावे, -तो गूंगा नकटा, या वेंद्री होवे

६ प्र--घ्रणेन्द्रिकी निरोगता कायसे पावे? उ--परमात्मा साधूया साध्वी, जेष्ट जन गुणी जनके सन्मुख नाक नामवे, (नमस्कार करे) सुगन्धी पदार्थोंमें गृधन बने, नाशीका हीनकी साहयता करे, तो सुशोभित-निरोगी, नाशीका पावें.

७ प्र--जिभ्या इन्द्रिकी हीनता कायसे पावे? उ--मदिरा, मांस, कंद, मूल, आदी अभक्ष खावे, षड्रस पदार्थमे अत्यंत लोलुपता धरे, रसना पोषणे हरी कायादीका महारंभ करे, असद्बोध कूउपदेश कर हिंशा फेलावे, पाखंड वडावे, मर्म मोसे प्रकाशे, कर्कश कठोर भाषा बोले, झूट बोले, मुकेकी बोवडेकी हांसी करे, सत सती गुणी जनोकी निंदा करे, अन्यकी रसना (जिभ्या) का छेद भेद करे. श्वासोच्छ्वास रुंधन करे, तो जिभ्याकी हीनता पावे. बोबडा मुक्का होवे, उसके असुहामण वचन लगे मुख दुर्गन्ध निकले, तथा एकें-

द्री पणा पावे.

८ प्र-रस इन्द्रिकी निरोगता कायसे पावे? उ-अभक्ष त्यागे, रस ग्रधी नहो. सद्बोध कर धर्म फेलावे सदा गुणोंकाही उच्चारण करे, सर्वको सुखदाता बोले रसना हीनकी सहायता करे, तो रसनाका निरोगी, मधूर अलापी होवे

९ प्र-हस्तकी हीनता कायसे पावे? उ-अन्यके हस्त छेदन करे, खोटे तोले मापे वापरे, खोटे लेख लिखे, कूशास्त्र बणावे चोरी करे, लूले (हस्त रहित की) हांसी करे, दूसरेका छेदन, भेदन, मारताड करे पक्षीयोंकी पांख काटे तो लूला (हाथ रहित) होवे.

१० प्र-हस्तकी प्रवलता कायसे होय? उ-दान दे वे, खोटा लेन देन नहीं करे, खोटे लेख नहीं लिखे, अच्छे धर्मवृधीके लेख लिखे, विनादी वस्तु ग्रहण नहीं करे, हस्त हीनकी सहायता करे, तो निरोगी वलिष्ट हाथ पावे

११ प्र-पांवकी हीनता कायसे होय? उ-रस्ता छोडके चले, हिंशादी पाप कर्मोमे आगे वढे, धर्म कार्य मे पीछा हटे, कच्ची मट्टी, पाणी, हरी, कीडीयादीकों पांवसे दावे, चापे, अन्य छोटे वडे, जीवोंके पाव तोडे लंगडे पांगले, की हसी करे' चोरी जारी आदी कू का

थमें प्रवृते तो पांव हीन लंगडा पांगला होवे.

१२ प्र–पावकी प्रबलता कायसे पावे? उ–कूरस्ते जावे नहीं, अन्य जातेको बचावे. सजीव पदार्थपे पांव न दे, लंगडे पांगुलेकी सहायता करे, तो निरोगी बलिष्ट पांव पावे.

१३ प्र–निर्धन (दरिद्री) कायसे होवें? उ–चोरीसे दगासे, धूर्ताइसे, ठगाइसे, जुलमसे हिंशाकारी-कूवैपारसे द्रव्योपारजन करे, (धन कमावे) धनेश्वरोपे द्वेष करे, उनको निर्धन बनाना चहावे, मेहनतसे स्वल्प धन कमाया उसे लूटे, घर, अन्न, वस्त्र, से दुःखी करे, गरीबोंको वाक्य प्रहार करे, झूटा आल दे-फसावे. अजीवकाका भंग करे, तथा साधू होके धन रक्खे, दूसरेके कमाइमें अंतराय दे, थापण दबावे तो निरधन होवे, और किसीका धन अग्नीमें जलावै तो उसकाभी आग (लाय) में जले, पानीमें डूबावे तो झाजादी पाणीमे डूबे इत्यादी जिस तरह दूसरे के द्रव्यका नाश करे, वैसेही उसके द्रव्यका नाश होवें.

१४ प्र–धनेश्वरी कायसे होय? उ–निरधनो (दारिद्रियो) की दया करे, उनकी सहायता करे, अन्यकी द्रव्यवृद्धी देख हर्षावें. प्राप्त द्रव्यपे ममत्व कम कर, दान, पुण्य धर्मोन्नती, अनाथोंकी सहाय इत्यादी सुकृ

त्योमें द्रव्य लगावे तो धनेश्वरी होवे

१५ प्र-अपुत्र्या कायसे होवे? उ-पशु, पक्षी, और मनुष्यादीके अनाथ बच्चोंको या यूका (ज्यूं) लीखोंको मारे, अन्डे, फोडे, पुत्रवंतोपे द्वेष करे गाय, भेस, आदी बच्चोंको दूध पीते खेंच ले वेच दे. विछोहा पडावे. वीजोकी मींजी निकाले तो अपुत्र्य (पुत्र रहित होवे.

१६ प्र-पुत्रवंत कायसे होवे? उ-पशु, पक्षी, मनुष्यादी के अनाथ बच्चोंका रक्षण, पालण कर, जन्म निर्वाह करने जैसे बनावे तो बहुत पुत्रवंत होवे.

१७प्र-कुपुत कायसे होवे? उ-अन्यके पुत्रोंको कूबुद्धी दे के माता पिता का अविनय करावे पितापुत्र का झगडा देख खुश होवे. फूट पडावे अपने माता पिता को संताप देवे, तथा ऋण और थापण डूबावे, तो उसके कपूत (अविनीत) पुत्र होवे

१८ प्र-सूपूत्र कायसे होवे? उ-आप माता पिता की भक्ती करे, अन्यको करनेका बोध करे. * पुत्रोंको धर्म मार्गमें लगावे, सूपुत्र देख हर्षाये तो सूपुत्र्या होवे

* उववाईजी सूत्रमें फरमाया है की माता पिता का भक्ता करनेसे ६४ हजार वर्षके आयुष्य वाला देव होवे

१९ प्र–कू भारज्या कायसे मिले? स्त्री भरतारके आपमें क्लेश करावें, उनके झगडे देख हर्षावे. स्त्रीको भरमावे, विभचारणी बनावे, सतीयोंकी निंदा करे कलंक चडावे. अन्यकी अच्छी स्त्री देख दुःखी होवे, तो कूस्त्री मिले.

२० प्र–सूभारजा कायसे मिले? आप सीलवंत रहे विभचारणीके प्रसंगमें वृत न भांगे, विभचारणीको सुधारे सतीयोंकी परसंस्या और सहायता करे. स्त्री भरतार का विरोध मिटावे तो अच्छी स्त्रीका संयोग मिले.

२१ प्र–अपमानी(मानहीन)कायसे होय? उ–अन्य का मान खंडन करे, माता पिता गुरू आदी वृधोंका विनय न करे. गरीब, निर्बुद्धियोका निरादर करे, शत्रूओंका अपमान सुन खुश होय, अपने मुखसे अपनी परसंस्या करे अपने गुणका अहंकार करे, गुणवंतोका द्वेष करे, गुणवंतोको वंदना न करे. दूसरेको मना करें, स्वछंदे चले, तो अपमानी होवें.

२२ प्र–सन्मान कायसे पावे? उ–तिर्थंकर, साधू साध्वी, श्रावक, श्राविका, सम्यकद्रष्टी, ज्ञानी, गुणी, धर्मदीपक, इत्यादी महाजनोके गुणग्रामकरे, गुणदीपावें. जेष्टोकाविनय भक्तीकरे, कीर्तीसुणहर्षावें, वंदनाकरे करावे गुणीजनको गुणोंको छिपावे महाजनसदे तो

सर्व-स्थान सन्मान पावें.

२३ प्र-क्लेशी कुटम्ब कायसे मिले? कुटम्बमें झग डा करावे. क्लेश देख हर्ष पावे तो, क्लेशी कुटम्ब मिले.

२४ प्र-अच्छा कुटम्ब कायसे मिले? कुटम्बमें सम्य करावे. निरद्रव्य कुटम्बोकी सहायता करे. कुटम्बमें संप देख हर्षावे तो सुखदाइ कुटम्ब मिले.

२५ प्र-रोगिष्ट कायसे होवे? उ-रोगीयोको संता पे, निंदा करे, हँसी करे, औषध दानकी अंतराय दे, रोग वढाने अशाता उपजानेका उपाय करे, साधूवोके वस्त्र मलीन देख दुगंछा करे तो रोगीष्ट (रोगीला) होवे.

२६ प्र-निरोगी कायसे होवे? उ-दीन दुःखी यों को रोगीष्ट देख दयालावे, सुख उपजावे साधू साध्वी को, औषध दानदे, से निरोगी होवे

२७ प्र-क्रूर स्वभावी कायसे होवे? उ-कू संगतसे खुश रहे, सत्यसंगसे अलग रहे, बात २ मे संतसहो, तथा नर्क गतीसे आय हो सो क्रूर स्वभावी होवे

२८ प्र-मिळापू कायसे होवे? उ-साधू के दर्शन से प्रसन्नहो, कूसंगत्यागे, कूवचन सुन धैर्य धरे, प्राप्त वस्तुपें संतोष धरे. तथा देवगतीसे आय हो. सो सू-स्वभावी (मिलपू) होवे

२९-प्र-पापात्मा कायसे होवे? उ-लोकोकों धर्म

से भृष्ट करे, सत्धर्मकी निंदा करे, कू धर्म की महीमा करे. अधर्मीयोंकी संगत करनेसे पापात्मा होवे.

३० प्र-धर्मात्मा कायसे होवे? उ-अधर्मीयो को धर्मी वनावे, धर्मोन्नती तन धनसे करनेसे.

३१ प्र-निर्बल कायसे होवे? उ-दीन,गरीवों को सताये. अन्न वस्त्रकी अंतरायदे, निर्वलको दवावे झगडाकरे. वध. वंधनकरे, अपने वलका अभीमान करे तो निर्वल होवे.

३२ प्र-वलवंत कायसे होवे? उ-दीन, अनाथ जीवोंकी दया कर साता उपजावें. संकटमें सहाय करे, अन्न वस्त्रादी प्रदान करे. तो वलवंत होवे.

३३ प्र-कायर कायसे होवे? उ-अन्य जीवको भय उपजावे, धस्का पाडे, इज्जतलूंटे, राज, पंच, चोर सर्प, विष, अग्नी, पाणी, देव भुत इन भयंकर वस्तुओं के नामले, दूसरे को भय भीतकरे, पशुओं को त्रासदायक वनावे व चमकावे, उन्हे देखहर्षावे, सो कायर होवे

३४ प्र-सुरवीर कायसे होवे? उ-दीन, दुःखी, अपराधीको अभयदानदे, भयसे वचावें उपद्रव मिटावे, सो सूरवीर होवे.

होतें) दान नदे, दूसरे कों देतां मना करे. देतेको देख दु.खीहोवें, दानकी निंदा करें अत्यंततृष्णवंता, सो कृपण होवे.

३६ प्र-दातार कायसे होवे? उ-गरीबी(दरिद्रता) होतेभी दान दे, दूसरेको देते देख खुश होवे, समर्थ हो दीन. दुःखींकी सहायता करे, सदा दान देनेकी अभीलाषा रक्खे धर्मोन्नती सुन हर्षाय, सो श्रीमंत हो, दातार होवे,

३७ प्र-मूर्ख कायसे होवे? उ-विद्वानो पंडितोकी हॅसी, मस्करी, निंदा, अविनय, अशातना करे, ज्ञान प्रसारकी अंतराय दे, ज्ञानके उपकरण पूस्तकादी नाश करे, ज्ञानमे अरूची करे. ज्ञान चोरे, सत्य शास्त्र को झूटे बनावे, और झूटेको सच्चे बनावे. तो मूर्ख होवे

३८ प्र-पण्डित कायसे होवे? उ-विद्यादान दे, विद्याप्रसार में धन, तन, का व्यय, करे, विद्वानोकी महिमा करे, धर्म पुस्तकोका मुफतमें प्रसार करे, सो पंण्डित होवे

३९ प्र-पराधीन कायसे होवे? उ-अन्यको बंदीखानेमें डाले, बहुत मेहनत करा थोडी मजूरी देवे. कर्जदारोका घर लुटे इज्जत ले कुटम्ब को, नोकरो को, अहार की अंतराय दे, जबरदस्तीसे काम करावे,

पशु पक्षीको वाडेमें, पिंजरेमें, रोक रक्खे, दूसरेको प-राधीन देख खुशी होवे. दूसरेकी स्वाधीनता नष्ट करे सो पराधीन होवे.

४० प्र--स्वाधीन कायसे होवे? उ--कुटम्बको, नोंकरोको संताप न दे, अहार, वस्त्र, स्थानकी साता दे, शक्ती उप्रांत काम नहीं कराय. मनुष्य, पशू, पक्षी, आदीको वंदीखानेसें छोडावे, स्वाधीन करे, अपणा स्वछंदा रोकके गुरूके च्छंदे, (हुकममें) चले, सो स्वाधीन स्वतंत्र होवे.

४१ प्र- कुरूप कायसे होवे? उ--आप रूपवंत हो अभीमान करे, दूसरे सुरूपवंतोंकी निंदा करे, कुरूपोंकी हाँसी अपमान करे, आल चडाय शृंगार बहुत सजे, सो कूरूपी होवे.

४२ प्र--सुरूप कायसे पावे? उ--सुन्दर होके भी अभीमान न करे, सुरूपणी स्त्रियादिको विकार द्रष्टी से नहीं देखे, कुरूपोंका निरादर न करे, सील पाले सो सूरूप होय.

४३ प्र--धन विलस क्यो नहीं सके? उ--अन्यको खान पान वस्त्र भूषणकी अंतराय दे. आप और समर्थ हो अच्छे भोग भोगवें, आश्रितोंको त्रसाय, अन्यको भोगोपभोग भोगवते देख आप दुःखी होय, वो धन प्राप्त होके भी भोगव नहीं सके.

४४ प्र-सुख विलासी कायसे होय? उ-आपको प्राप्त हुये भोगोप भोग भोगवे नहीं. अपने भोगकी वस्तू दान पुण्यमें तथा स्वधर्मीयोंको दे के पोषे, सो इच्छित भोग भोगवे.

४५ प्र-क्रोधी कायसे होय? उ-आप क्रोध करे, क्रोधीयोंकी परसंस्या करे, मनुष्य, पशु, देवता ओंके जुधकी वातों सुन हर्पावे. शिकार खेले, क्षमवंत को संताप उपजावे, निंदा करे, हॉसी करे सो क्रोधी होवे

४६ प्र-धूर्त कायसे होय? उ-धर्म करणीमे, दान, पुण्यमें जप, तप, में कपट करे थोडा कर वहुत वतावे पोमावे, सो दगावाज, धूर्त होवे.

४६ प्र-सरल कायसे होय? उ-सरल भावसे करणी करे, करके-पोमावे नहीं, सो सरल स्वभावी होवे.

४८ प्र-चोर कायसे होय? उ-चोर कर्मको अच्छा जाने, चोरको सहाय दे. चोरकी वस्तु ले, चोरकी कला वतावे, चोरकी परसंस्या करे, सो चोर होवे

४९ प्र-साहूकार कायसे होय? उ-अदत्तवृत्त धारण करे, चोरका परिचय वर्जे, सो साहूकार होवे

५० प्र-कसाइ कायसे होय? उ-हिंशाकी परसंस्या करे, हिंशा करनेकी कला वतावें. हिशा के शस्त्र वनावे, दया की निंदा करे, सो हिशक कषाइ होवें

५१ प्र–दयाल कायसे होय? इ–हिंशक की संगत वर्जे, हिंशक को उपदेश दे दयावंत बनावे, आजीवका दे हिंशा कर्म छेडावे. सो दयावंत होवे.

५२ प्र–अनाचारी कायसें होवे? विकल भाव रक्खे, अशुद्ध, अभक्ष वस्तु भोगवे, आचारवंतकी निंदा करे, अनाचार सेवनमें आनंद माने. अनाचारीयोंका सहवास करे, अनाचारको भला जाने, सो अनाचारी होवे.

५३ प्र–शुद्धाचारी कायसे होय? अनाचारीयोंको शुद्धाचारी बनावें अनाचारकी ग्लानी करे, शुद्धाचारीकी सेवा परसंस्या करे, अभक्षको त्यागे. नितीमें प्रवृते, तो शुद्धाचारी होवे.

५४ प्र–भाइयोंमें विरोध कायसे होवें? उ–हाथी, घोडे, भैंसे, मेंढे, कुत्ते, मुर्गे, वगैरें जानवरोकों आपसमें लडावे या लढाइ देख हर्षावे, तो भाइयोमें विरोध (लडाइ) होवे.

५५ प्र–भाययोंमें संप कायसे रहे? मनुष्यो पशूवोके झगडे मिटावे, संप करावे, संप देखके खुश होवें संप रहने उद्यम करे, सो भाइयोंमें स्नेह होवे.

५६ प्र–अंतरद्वीपमें किस कर्मसे उपजे? उ-मिथ्यात्वी साधु आदी कों दान देवे, उत्तम साधु ओको

कष्टसे, फलकी इच्छासे दान देवें, दान दे अभीमान करे, सो अंतरद्विपमें मिथ्यात्वी जुगलिया मनुष्य होवें.

५७ प्र-जुगलिया (भोग भूमीये) मनुष्य कायसें होवे ? उ-शुद्धाचारी साधूओं को हुल्लास भावसें शुद्ध आहार, स्थान, वस्त्र, पात्र, देवे, दुसरेके पाससे दिलावे अन्य को देते देख खुशहोवे सो अकर्म भूमी मे समद्रष्टी जुगलिया होवें.

५८ प्र-अनार्य देशमें जन्म कीस कर्मसे लेवे ? उ-खोटा आलचडावें, म्लेच्छो की सुख संपदा अच्छी लगे, म्लेच्छ वेश धारे, म्लेच्छ कामों की परसंस्या करें, आर्यदेश छोड अनार्यमें रहे, सो आनार्य देश में जन्मले.

५९ प्र-आर्य देशमें कायसे जन्में ? उ-आर्यों की चाल चलन पसंदकरे. अनार्य रिवाज कामें छोडे, अनार्य कों आर्य बनावें, मुनी (साधू) की परसंस्या करे, आर्यों को यथा शक्त सहायता करे, तो आर्य देशमे जन्मलेवे.

६० प्र-हम्माल कायसे होवे ? मनुष्य, पशु ओं पे गजा (शक्ती) उप्रांत वजन लादे वेगारमे पकडे, जबरी सें काम लेवें, थोडाकहे बहुत वजन भेरें, ज्यादा उठाया देख हर्पावे, तो हम्माल, पोठीया, बेल, घोडे

वगैरे होवें

६१ प्र--कू कवी (भाट चारण) कायसे होवे? उ--कू कथा का प्रेमीवने, लोकीक (मिथ्य) शास्त्रका दान दिया, धर्म कथाका नाम रख विकार उत्पन्न होवें ऐसी कथाकरे, विपय पोपक कवीता रचे, विषय जनराग रागणी सुणे, उनपे प्रेम करे, सो कू, कवी भाट चारण होवें.

६२ प्र--सूकवी कायसे होवे? उ--जिनराज मुनीराजके गुण कीर्तन सुण हर्पलावे, शास्त्रकर्ता गणधरो की आचार्यों की परसंस्या करें. ज्ञानवृधीमें धन लगावें, धर्म कर्वीयों को सहाय्यदे, धर्मकवीता की गुप्त रहस्यों से हर्पावे सो, विद्वान कवी होवें.

६३ प्र--दीर्घ (लम्बा) आयुष्य कायसे पावे? उ--मरते जीवोंको द्रव्य दे छोडावे. उन्हे खान, पान, स्थानका सहाय दे, बंदीवान छुडावे, संसारमें उदासीनता धरे, दया भाव रख्खे, दीन अनाथोको सहाय देवें, तो दीर्घ आयूष वाला होवें.

६४ प्र--ओछा आयुष्य कायसे पावे? उ--जीव घात करे, गर्व गलावे, आजीवका-का भंग करे, ज्यूं खटमलादी मारे, शुद्ध लेने वाले साधूको अशुद्ध आहार प्रमुख देवे, अग्नी विप शस्त्रादी से जीव मारे, सो अ-

ल्पआयुप पावे.

६५ प्र-सदा चिंता कायसे रहें? उ-बहुत जीवकों चिंता उत्पन्न होवे, वैसी वात करें; अन्यको उदास देख खुशी होवे सो सदा चिंता करने वाला होवें

६६ प्र-निश्चित कायसे रहें? उ-दूसरे की चिंता का भंग करे, धर्मात्माको देख खुश होवे, दुःख पीडितको संतोप उपजावे सो सदा निश्चित्त रहें

६७ प्र-दास कायसे होवे? उ-नौकरोको बहुत सतावें, बहुत काम लेवें, परिवारका शैन्याका, अभीमान करे, सो बहुत जनोंका दास होवे.

६८ प्र-मालिक कायसे होवे? उ-धर्मी जनोंकी तपस्वियोंकी वयावच्च करे, धर्मात्मा दुःखी जनोका पोषण करे, अन्यके पास धर्मात्माकी सेवा भक्ती करावे, करते देख खुशी होवे, सो बहुतोंका मालिक होवे

६९ प्र-नपुशक कायसे होवे? उ-नपुशक के नृत्य गायन, ठठ्ठे देख खुशी होवे पुरुपको स्त्रीका रूप बना के नृत्य करावें, बैल, घोडे, आदी पशू या मनुष्यका लिंग छेदन करे, नपूंशक से विषय सेवन करे, आप नपूंशक जैसी चेष्टा करे; स्त्री पुरुपके संयोग्य मिलाने की दलाली करे, बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्रीकी हिंशा करे, सो नपूंशक होवें.

७० प्र-स्त्री कायसे होवें? उ-स्त्रीयोंके विषयमें अत्यंत लूब्ध होवें, पुरुष हो स्त्रीका रूप बनावें, स्त्रीयोकी तरह चेष्टा करे या दगावाजी करे, सो स्त्री होवे.

७१ प्र-निगोदमें कायसे जाय? उ-देव, गुरु, धर्मकी निंदा करनेसे. कंद मूलता भक्षण करनेसे.

७२ प्र-एकेंद्री कायसे होय? उ-पृथवी, पाणी, अग्नी हवा, वनस्पती, कंद-मूल, वृक्ष, घास, फुल, पत्र, का छेदन, भेदन, करे सो एकेंद्री होवें.

७३ प्र-विक्लेंद्री कायसें होवे? उ-निर्दयपणें, त्रस की घात करें, अनाज (दाणे) वहुत दिन संग्रह कर रक्खें, त्रस जीव (कीडे) की उत्पति होवें ऐसी वस्तु का संग्रह कर, उन्हकी घात करें, मच्छर, खटमल, निवारने धूम्रादिक उपचार कर उन्हे मारे, वोर प्रमुख त्रस जीव उत्पन्न होवें, ऐसे फलोंका भक्षण करें, मोरी, गटार में पेशाव करेसो मरके विक्लेंद्री (बेन्द्री, तेन्द्री, चोरिन्द्री) होवे.

७४ प्र-कलंग (अंगोपंग रहित) कायसे होवे? उ-जीवोंके हाथा, पांव, कान, नाक, अंगुली, थादी अंगोपांगका छेदन भेदन, करे, कान कतरे, वींदे, कंगूरा करे, ऐसा करते देख हर्षावे सो कलंग (अंगोपांग रहित) होवें.

७५ प्र- पूर्ण अंग कायसे होवे? दूसरेके अंगोपांग का छेदन होता देख रक्षण करें, अपगीकी करूणा करे, उसे सुधारने उपचार करे, आजीवीका चलावे. सहाय देवो तो पूर्णांगी (संपूर्ण अगवाला) होवें.

७६ प्र-नीच जात कायसे पावे? उ-अपणी उंच जाति कुलका अभीमान करें, उच्च की निंदा करे, नीचका द्वेष करें, नीच कामें करे, सो नीच जाती पावे.

७७ प्र-उंच जात कायसे पावे? उ-सत्पुरुषोकेगुण की परसंस्या करे, वंदना नमस्कार करे, अपणें दुर्गुण प्रगट करें, चार तीर्थकी भक्ती करें, यह मनुष्य जन्म पाय तो राजादिक कुलमें जन्में और तिर्यंच होय तो राज्यका मानेता हो सुख भोगवे.

७८ प्र-उच जातीका दास क्यों बने? उ-उच्च कर्मे कर अभीमान करें, गुरुकी आज्ञाका भग करे, उच हो दीनोके शिर आल चडावे, उंच हो नीच काम करे, सो उच हो नीच (दासके) कर्म करे

७९ प्र- प्रदेश फिरके आजीका क्यों करे? उ-भिक्षूकोको लालच दे, वारंवार फिराय फिर दान दे नोकरोंकी नोकरी ञताय २ दी, धर्म नामसे निकला धन वहुत दिन घरमें-रक्खे, कागदिको भटरावे, सो प्रदेश फिर अजीवीका करे

८० प्र-सुखे अजीव का कायसे मिले? उ-धर्मात्मा कों स्वस्थान रहे, अहार, वस्त्रादी पहोंचाय, सहाय दे, उनके पास धर्म वृद्धी करावे. आप स्थिर चित सें धर्म ध्यान करे, स्थिर स्वभावीकी कीर्ती करे, सो घर बेठे सुखे अजीवीका कमावे.

८१ प्र-दगाकर अजीवका क्यों चलावे? कपट भावसे दीन जनोंको दान दे. मुनीको भक्ती रहित दान दे, चोरादिक कु कर्मियोंसे आजीवीका चलावे, उनकी परसंस्या करे, सत्यवृती निर्वाह करने वालेपे कलंक चडावे. सो महा मुशीबत सें दगाकर अजीवीका चलावे.

८२ प्र-सच्चावटसे आजीवका कोन करे? उ-सरल भावसें, विनय सहित, धर्मात्मा कों अहार देवें, दीन की रक्षा करें, निर्दोष आजीवका न मिलनेसें क्षुधादी परिसह सहे परंतु कू वैपार नहीं करे, सो सरलपणे सुखे अजीवीका उपारजन करे.

८३ उ-मनुष्य पशु बजारमे क्योंबिके? उ-मनुष्य व पशू कों बेंचे (मोलदेवें) कंन्या विक्रय पुत्र विक्रय करें या मोल दिलाने की दलाली करे सो मनुष्य हो दास (गुलाम) पणे या पशू हो विके वेचारे.

८४ प्र-सामुदानी कर्म कायसे बन्धे? उ-मनुष्य या पशु

का वध होना होय. वहां देखने वहुत जन खडे रहें, मनमें आय की इसे किती केग मारे अपन अपने घरजावें, उनके तथा बहुत भतांतरी यों एकत्र हो सत्य-देव गुरु धर्म की निंदा करे, उन्हके सामुदानी कर्म बंधते हैं. वो पाणी मे डूप आगमें जल, या मारी ह्लेगा वी के सपाटे मे आ एकदम बहुत मनुष्य मारे जाते हैं.

८५ प्र-एक दम बहुत जीव स्वर्ग में कैसे जावे? उ-धर्म मोत्सव. दिक्षा औत्सव केवल औत्सव धर्म सभा वायखनादिकोंमे बहुत जन मिल हर्षावें. वैराग्य भाव लावें. उसकी परसंस्या करे. सो एक दम बहुत जीव स्वर्ग या मोक्ष जावें.

८६ प्र-कोइ विना काम द्वेष करे इसका क्या सबब ? उ- परभव में किसी को दु.ख दिया होय, उस का नुकशान किया होय तो वो बिना दोष ही द्वेष धर ता हैं.

८७ प्र-विना स्नेही स्नेह अगे सो क्या सबब ? उ- दु.ख छोडाया होय साता उपजाइ हो वन में पहाडमें या सम्रामनें, निराधार हुये को आधार देनेसे. वो पीछा अचित्य दु ख मे आके सहाय करे. विना कारण प्रेम करे.

८८ प्र-अंतरादी व्याधी से मुक्त न होवे सो क्या

८० प्र-सुखे अजीव का कायसे मिले? उ-धर्मात्मा कों स्वस्थान रहे, अहार, वस्त्रादी पहोंचाय, सहाय दे, उनके पास धर्म वृद्धी करावे. आप स्थिर चित सें धर्म ध्यान करे, स्थिर स्वभावीकी कीर्ती करे, सो घर बेठे सुखे अजीवीका कमावे.

८१ प्र-दगाकर अजीवका क्यों चलावे? कपट भावसे दीन जनोंको दान दे. मुनीको भक्ती रहित दान दे, चोरादिक कु कर्मियोंसे आजीवीका चलावे, उनकीं परसंस्या करे, सत्यवृती निर्वाह करने वालेपे कलंक चडावे. सो महा मुशीबत सें दगाकर अजीवीका चलावे.

८२ प्र-सचावटसे आजीवका कौन करे? उ-सरल भावसें, विनय सहित, धर्मात्मा कों अहार देवे, दीन की रक्षा करें, निर्दोष आजीवका न मिलनेसे क्षुधादी परिसह सहे परंतु कु वेपार नही करे, सो सरलपणे सुखे अजीवीका उपारजन करे.

८३ उ-मनुष्य पशु बजारमें क्योंबिके? उ-मनुष्य व पशू कों वेंचे (मोलदेवें) कंन्या विक्रय पुत्र विक्रय करें या मोल दिलाने की दलाली करें सो मनुष्य हो दास (गुलाम) पणे या पशू हो बिके वेचाय.

८४ प्र-सामुदानी कर्म कायसे बन्धे? उ-मनुष्य या पशु

का वध होना होय. वहां देखने बहुत जन खडे रहें, मनमें आय की इसे किती वेग मारे अपन अपने घरजावें, उनके. तथा बहुत मतांतरी यो एकत्र हो सत्य देव गुरु धर्म की निंदा करे, उन्हके सामुदानी कर्म बंधते हैं. वो पाणी मे डूब. आगमें जल, या मारी प्लेगा दी के सपाटे में आ एकदम बहुत मनुष्य मारे जाते हैं.

८५ प्र-एक दम बहुत जीव स्वर्ग में कैसे जावे? उ-धर्म मोत्सव. दिक्षा औत्सव केवल औत्सव धर्म सभा वाख्यानादिकोंमे बहुत जन मिल हर्षावें वैराग्य भाव लावें. उसकी परसंस्या करे. सो एक दम बहुत जीव स्वर्ग या मोक्ष जावें.

८६ प्र-कोइ विना काम द्वेष करे इसका क्या सबब? उ-परभव में किसी को दुःख दिया होय, उस का नुकशान किया होय तो वो बिना दोष ही द्वेष धर ता हैं.

८७ प्र-विना स्नेही स्नेह अगे सो क्या सबब? उ-दुःख छोडाया होय साता उपजाइ हो वन में पहाडमें या समामें, निराधार हुये को आधार देनेसे सो पीछा अचिंत्य दुःख मे आके सहाय करे विना कारण प्रेम करे.

८८ प्र-जलतरादि व्याधी से मुक्त न होवे सो क्या

कारण ? उ-वेद (हकीम) हो. अनेक जीवों के साथ विश्वास घात करे, जानता हुवा खराब औषध दे. रोग बढाय. और जोतषी हो ग्रह, नक्षेत्र भूत व्यादी आदी डर बताय. दूसरे को लूटे. देव देवी की मानता कराय, तथा विष शास्त्र अग्नी से आप घात करे सो अत्यंत उपचार करतेंही रोग बिमारी और व्यंतरादी व्याधीसे छूटें नहीं.

८९ प्र-धनेश्वरीका धन धर्म काममें नहीं लगे उसका क्या कारण? उ-अन्यको कूशिक्षा दे, उसका, द्रव्य, वेश्या नृत्यादी कूव्यसन में खरचाय, अन्यका नुकसान सुन खुशी होवें. जुगार सट्टेके वैपारादीमें द्रव्य गमाय, वो धनेश्वरी होके कूमार्गमें धनका व्यय कर सके, परतु धर्म कासमे धन नहीं लगा सके

९० प्र-गर्भमेंही मृत्यु क्यो पावे? उ-शोकोका या स्वता पोता का औषधोपचार या मंत्रादीसे गर्भ गलावे, पाडे, पडावे, सो गर्भमेही मृत्यु पावे.

९१ प्र-हित शिक्षा खराब क्यों लगे? उ-अन्यको कूशिक्षा दे कूमार्ग चलावे. गुरूके पिताके, हित वचनही सुने, शिक्षककी हँसी करे, उसे हित शिक्षा अहित कारी हो प्रगमें

९२ प्र-जाती स्मर्ण और अवधी ज्ञान कायसे होय?

उ-तप संयम पाला हो ज्ञानीयोंकी वयावच्च करी हो, ज्ञान की महिमा, वहुमान किया हो उन्हे जाति स्मरण, अवधीज्ञान, उपजे

९३ प्र-वृत-पच्चखाण क्यों नहीं कर सके? उ-अन्यके वृत भंग कराय. शुद्धवृत्तीके दोप लगाया, अन्यके वृत भंगा देख खुशी हो. पोते वृत ले प्रणामोंमें सकल्प विकल्प करें, वार २ वृत भागे, उससे वृत पच्चखाण न हो

९४ प्र-कसाइयों के हाथसे कटे सो कोनसा पाप? उ-कषाइयों से वैपार करे. कषाइयों कों जानवर दिया कपाइके कृत्य करें, दगासें घात करे, वनचरों-की सिकार करें, मांस खाय, सो पशु हो गषाइयोंके हाथसे कटे

९५ प्र-पाप कर धर्म माननेका क्या सवव? उ-भ्रष्टाचारीकी संगत करे पाप कार्यमे धर्म कहे, सत्य देव, गुरू, धर्मकी निंदा करे, वो पापमेंही धर्म मानने

९६ प्र-विभ चारी क्यों होवे? उ-वैश्या के कीशव कमाय- या वैश्या का संग करे कुसीलीये की परसंस्या करें तिर्यंच तिर्यंचणी का संयोग मिलावें, सयोग देख हर्षाय सो विभचारी होवें

९७ प्र-सीलवत काय. से होवें? उ-शीलपाले

शीलवंत की महिमा करें सीलवंत की सहायता करें. कुशीलीयों का संग छोडे. सो शीलवान होवें *

९८ प्र–ऋद्धिवंत कायसे होवे? उ–सूपात्रमें दानसे

९९ प्र–मांगनेसे ही वस्तु क्यों नहीं मिले? उ–धनवंत हो दान नदेवे आश्रितो को त्रसानेसे.

१०० प्र–भिख्यारी कौन होवे? उ–छिद्री और निंदक.

१०१ स्त्रीयों क्यों मरें? उ–बहुत स्त्रीयों का पति हो उन्हे मारेन से.

१०२ प्र–भ्रमित चित क्या रहे? उ–मदिरा भांग, अफीमादी कैफी वस्तु सेवन करनेसे.

१०३ प्र–दहाज्वर कायसे होवे? मनुष्य पशुपे ज्यादा वजन लादनेसे.

१०४ प्र–बाल विध्वा क्यों होवें? उ–पतिकी घात कर विभचार सेवनेसे पतिका आपमान करनेसे.

१०५ प्र–मृत्यु बांझा क्यों होवे? उ–पशु पक्षी के बच्चे, अन्डे मारनेसे या लीखों फोडनेसे.

१०६ प्र–ज्यादा पुत्री क्यों होवे? पाणी पीतें पशुओंको रोकके मारनेसे बहु पुत्रीयेकी निंदा करनेसे.

१०७ प्र–विध्वा पुत्री क्यों होवे? उ–धर्म का धन खाय तो. धर्म के उप करण चोराय तो.

* यह ९७ बोल मुद्रष्ट तरगणी दिगाम्बर ग्रन्थमें के है

१०८ प्र-मेंद कायसे होवें? उ-मदिरा मांसके भोगवनेसे. मेंद बालेकी हँसी करनेसे.

१०९ प्र-अपच्चाका रोग कायसे होवे? उ-साधू को खराब अहार देनेसे.

११० प्र-क्षयनरोग कायसे होवे? हड्डीका बेपार करे, सेहत (मद्य) झाडे तो.

१११ प्र-कूरूप बेडोल मुख कायसे होवे? उ-दानेश्वरीकी निंदा करनेसे मुखका बहुत शृंगार करनेसे

११२ प्र-छोड कायसे रहे? उ-गर्भपात करनेसे.

११३ प्र-स्थानभ्रष्ट कायसे होवे? रस्ते परके झाड काटनेसे. आश्रितों का आसारा छोडानेसे

११४ प्र-श्वेत कुष्ट कायसे होवे? गौवध, कन्या विक्रय, करनेसे तथा साधू हो व्रत भंग करनेसे

११५ प्र-पुत्र वियोग कायसे होवे? उ-गाय, भेस के बच्चेको दूध न पानेसे. पशु पक्षीके पुत्र मारनेसे

११६ प्र-बचपणमें मात पिता क्यो मरे? सरण आयेकी घात करनेसे मात पितका अपमान करनेसे.

११७ प्र-जलोंद्र कायसे होवे? अभक्ष भक्षणेसे

११८ प्र-दांत कायसे दुखे? अत्यंत रसनाकी लु ब्धतासे. अभक्ष भक्षणेसे.

११९ प्र- लम्बे दात क्यों होवें? उ-घरोघर निंदा

करनेसे चहाडी चूगली करनेसे.

१२० प्र–मुत्र कच्छ फत्ररी कायसे होवें ? उ–रा-णीयों या परस्त्रीयों से गमन करनेसे.

१२१ प्र–गुंगा कायसे होवे ? उ–झूटी साक्षी दे गुरु कों गाली देनेसे,

१२२ प्र–सूलरोग कायसे होवें ? उ–पशु पक्षी कों वाणों से मारनेसे सूल कॉटे आर चूबानेसे.

१२३ प्र–उत्तम जाती का भीख क्यों मांगे ? उ–माता, पिता, गुरु कों मारें या अपमान करनेसे.

१२४ प्र–गुंवडे मस्से ज्यादा क्यों होवें ? उ–पशू पक्षी को पत्थर सें मारनेंसे

१२५ प्र–चमडी फटे तथा दाद क्यों होवे ? उ–सांप, विच्छू, गो खटमल ज्यूं लीख को मारे तो.

१२६ प्र–सदा बीमार क्यो रहे ? उ–धर्मादा का खाके धर्म न करेतो

१२७ प्र–पीनस रोग क्यो होवे ? उ–चीडीयों, मयुर, तोते आदी पक्षी मारनेसे.

१२८ प्र–कुष्ट रोग कायसे होय ? साधूको सताप देनेसे.

१२९ प्र–सरीर कायसे धूजे ? उ–रस्ते चलते, वृक्ष त्रण, तोडेनो.

१३० प्र-अर्धांगरोग क्यों होवे? स्त्रीयोंकी हित्यासे

१३१ प्र-नासूर कायसें होवे? पशु पक्षी मनुष्य की नाक्मे नाथ डालनेसे.

१३२ प्र-गलिज कुष्टी कायसे होवे? उ-पशु पक्षी मनुष्य कों फासीदे मारनेसे.

१३३ प्र-हरस (मस्सा) कायसे होवे? उ-नदी तलाव का पाणी सोशनेसे. और जलचर जीव मारनेसे

१३४ प्र-रातअन्ध कायसे होवे? उ-त्री सध्या (फजर दोप्रहर शाम) को भोजन कारनेसे

१३५ प्र-रांधन वायू कायसे होवे? उ-घोडे ऊट. बैल वकरे गाडे आदी भाडे देनेसे

१३६ भगंदर कायसे होवे? उ-अन्डेका रस पीनेसे.

१३७ प्र-उल्लू (घुघु) कायसे होवे? उ-रात्री भोजन करनेसे. तथा त्रिन देखी वस्तु खानेसे.

१३८ प्र-सिंह सर्प कायसे होवे? उ-क्रोध क्लेशमें संतप्त हो आत्मघात करनेसे.

१३९ प्र- गध्धा कुत्रा कायसे-होवे? उ-अभीमान करके वशहो अकार्य कर मरनेसे.

१४० प्र-विल्ली कायसे होवे? उ-दगा करनेसे.

१४१ प्र-नवल सर्प कायसे होवे? लोभ करनेसे.

१४२-प्र-वाला (नारू) कायसे निकले? विना छा-

णा पाणी पीवे, जीवाणीका जत्न न करेतो.

१४३ प्र-मनुष्य कायसे होवे? क्षमा दया, नम्रता

१४४ प्र-स्त्री मरके पुरुष कायसे होवे? उ-सत्

शील, संतोष विनय आदी गुण धारन करनेसे.

१४५ प्र-देवता कौन होवे? उ-साधू, श्राव

तापस और अकाम (मन विन) निर्जरा करनेसे.

१४६ प्र-लक्ष्मी स्थिर कायसे रहे? उ-दान दे

पश्चाताप नहीं करे तो.

१४७ प्र-काणा कायसे होवे? उ-बीज, फल, फु

छेदे, हार गजरे वगैरे बनानेसे.

१४८ प्र-गलित कुष्टि कायसे होवे? सुवर्ण चां

लोहा तांबा वगैरे की खानो खोदनेसे.

१४९ प्र-यश करते अपयश क्यो होवे? उ-सचि

औषधी करनेसे. अन्यकृत उपकार न माननेसे

१५० ऑखमें बामणी कायसे होवे? निमक(लुण

के आगर खोदनेसे.

१५१ प्र-कांख मंजरी कायसे होवे? सम्यक द्रष्टि

हो मिथ्यात्वी का अनार्योका काम करनेसे.

१५२ रुंड मुंड सरीर कायसे होवे? उ-न्यायाधि

हो कठण दंड देनेसे.

१५३ प्र-कंठमाल कायसे होवे? उ-मच्छीका

अहार करनेसें.

१५४ निरोगी दिखे, और रोगिष्ट होवे सो क्या कारण? उ- लांच ले झूटा न्याय करनेसे.

१५५ प्र-संयोग मिल वियोग क्यों होवे? उ-कृ-तघनता, मित्र द्रोहो और विश्वास घात करनेसे.

१५६ प्र-डरकण स्वभाव कायसे होवे? उ-कठोर दंडी कोटवाल होवे सो तथा अन्यको टरावे सो.

१५७ प्र-खुजली कायसे चले? उ-लेद्री ज्यू लीख खटमल पिस्सू उदाइ टी मारनेसे.

१५८ प्र-ज्यूवो ज्यादा क्यों पडे? उ-मच्छ अहा-री करनेसे ज्यूरा अग्नी आदीसे डाल मारे तो.

१५९ प्र-तपस्या क्यों नहीं बने? उ-तप जपका अभीमान करे तो. तप करते अलाय देवे तो.

१६० प्र-असुहा मणी भाषा क्यों लगे? उ-वाक्य चातुरीका अभीमान करे तो कठोर वचन बोले तो

१६१ प्र-अपयशी क्यो होवे? उ- सासू, नणद, देराणी, जेठाणी, भाइ भो जाइ का ईर्षा करे तो

१६२ प्र-तरुणपणे स्त्री क्यों मरे? उ-भोगकी तिव्र अभीलाषा रखे अमर्याद विषय सेवे तो

१६४ प्र- छमुछिम मनुष्य कोन होवे? उ--नील, गुलीके कुड करे छमुछमकी घात करे सो.

१६५ प्र--भूख ज्यादा क्यों लगे ? उ-खेतीके क
करनेसे. ससक्त आश्रितोंको भूखे मारनेसे.

१६६ प्र--मृगी झोला क्यों आवे ? लोहारकी ध
ण धमे, मृगी, आने वालेको सतावेतो.

१६७ प्र--बोलते बगासी क्यों आवे ? उ-रंगार
कर्म करनेसे. तोतले को चीडानेसे.

१६८ प्र--बोलते थुक क्यों उडे ? उ--गोबर सडानेसे

१६९ प्र--झाज कायसे डूबे? उ-पाखानेमें झाड़े ज
वें. मुत्रमें मुत्र करे, सर्व रात्र मुत्रका संग्रह करनेसे.

१७० प्र--खोजा क्यों होवे ? उ--बहुत बन कटा
करनेसे. खोजोंके साथ क्रिडा करनेसे.

१७१ प्र--योवन अवस्थामें दाँत पडजाय श्वेत बा
होवेसो क्या कारण ? कोमल विनस्पति का छेदन
भेदन, चटनी कचुमर करनेसे.

१७२ प्र--भरा नीगल (गुम्बडा) कायसे होवे ? उ
फलोंको चीर मसाला भरनेसे.

१७३ प्र--सरीरमें कीडें कायसे पडे ? उ--दूसरेपे घ
डेका पिशाव छिटकनेसे. सडी वस्तु खानेसे.

१७४ प्र--साथही सोले रोग कायसे होवे ? उ-
ग्रामोंको उजाड करे लूटें धाडा, पाडनेसे.

१७५ प्र--पाले हवे मनुष्य क्यों बदले ? रसोंईका

वैपार करनेसे. अच्छी वस्तु दिखा खोटी खिलानेसे.

१७६ प्र-१२ वर्ष का छोड कायसे रहे? उ-पेशाब भेला कर सर्व रात्री रखनेसे.

१७७ प्र-२४ वर्षका छोड कायसे रहे? उ-तिव्र भाव विषय सेवनेसे. गर्भ गलानेसे.

१७८ प्र-सदा सरीर क्यों जले? उ-फूलोंका मर्दन करनेसे. बहोत अत्तर उगटणे लगानेसे.

१७९ प्र-वंझा स्त्री कायसे होवे? उ-फूलका अत्तर निकालनेसे. मनुष्य पशुके बच्चे मारनेसे.

१८० प्र-मृतवांझा कायसे होवे? उ-उगती विनास्पति, कूंपल चूंटनेसे

१८१ प्र-बहुत स्त्री होके भी पुत्र क्यों न होवे? उ-बहुत विनास्पतीका रस निकालनेसे

१८२ प्र-हलालखोर कायसे होवे? उ-जलचर जीव बहुत मारनेसे. कसाईके कर्म करनेसे.

१८३ प्र-सशक्त धर्म क्यों नहीं बने? उ-मभइ (मनुष्यका रक्त) बहुत निकाला होवेसो.

१८४ प्र-सरीर भारी कायसे होवे? उ आसा सराप दारू बहुत पिया होयतो.

१८५ प्र-साधुके सिर आल देवे, शुद्ध आहार लेने वाले साधू को अशुद्ध देवे तो गर्भमें आडा आवे

१८६ प्र—नर्क तिर्यंच गतिमें अकाम निर्जरा कर मनुष्य हुवा वो पहले दुःखी हो पीछे सुख पावे, कूलीन के सिर कलंक आवे. शक्त सजा पावे, फिर इन्साफ होनेसें निर्दोष ठेहरे छुट जावे.

१८७ प्र—मोक्ष कायसे मिले? उ—ज्ञान दर्शन चारित्र और तपकी सम्यक प्रकारे आराधन पालन स्फर्शन करनेसे. इति

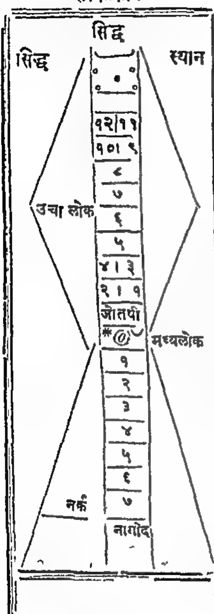
इत्यादी कर्म बन्ध करनेके, और भुक्तनेके, अनेक कारण शास्त्र ग्रन्थमें बतायें हैं. कित्नेक कर्म, इस भवके किये इसही भवमें भोगवते हैं. और कित्नेक आगे के जन्ममे भोगवते हैं अनंत ज्ञानी सर्वज्ञ भगवंतने संसारी जीवोंकी कर्म विपाकसे होती हुइ दिशाको अवलोकन करी, परन्तु वाणी द्वारा सम्पूर्ण वर्णन कर सके नहीं, क्यों कि सम्पूर्ण विश्व अनंत जीवों कर भरा हैं. और एकेक जीवके अनंत कर्म वर्गणाके पुद्गल लगे है और एकेक वर्गणाके वर्णादी पर्यायकी अनंत व्याख्या होती हैं. ऐसा अपरम्पार विपाक विचय का वर्णन, भाषा द्वारा कदापि न होसके, तथा

+ ९६ से उपरके बोल गौतम पृच्छा और अर्थ ज्ञान प्रकाशके अनुसारसें कुछ बढाके लिखे हैं

पि धर्म ध्यानी, ज्ञानी की आज्ञानुसार, विपाक विचय का यथा शक्त विचार करते हुये कर्मों की विचित्रता से वाकेफ होते हैं, वो कर्म वन्ध के कारण सें वचके, कर्मक्षय करनेकें मार्गमें प्रवृतन हो, अनत अध्यात्मिक सुख प्राप्त करते हैं.

चतुर्थ पत्र "संस्थान-विचय"

संस्थान नाम आकार का हैं सोजगत का, तथा जगत मे रहे हुये पदार्थोंका, आकार का विचार करे. सो सस्थान विचय धर्म ध्यान. अनंत अकाश (पोलार) रुप अनंत क्षेत्र है की जिसका अंतः पारही नहीं. उसे अलोक कहते हैं, इस अलोक के मध्य भाग मे, ३४३ राजू घनाकार लम्बी चौडी जित्नी जगा में, जीवाजीव व रुपी अरुपी पदार्थ रुप एक पिंड हैं, उसे 'लोक' कहते है, यह लोक नीचे सातमी नर्क के तले ७ राजू का चौडा हैं, और उपर सात राजू आवे वहां मूल से घटता २, मध्य लोक के स्थान एक राजू का चौढा हैं, और वहां से उपर चढते चौडास में वढते २, चार राजु (पांचमें देवलोक तक) आवे, वहां ५ राजू का चौडा है, और चौडास मे घटते २ तीन



राजू लोकाग्र (मोक्षस्थान)आवे वहां एक राजूका चौडा है. नीचे उलटा उसपे सुलटा और उसपे एक उलटा यो तीन दीवे रखे, तथा पांव पसार कम्मरकों हाथ लगा मनुष्य खडा रहे, इत्यादी संस्थान (आकार) मय लोक हैं. ऐसा कथन भगवति आदी शास्त्रमें लिखा है, इस लोकके मध्य भागमें एक निसरणी जेसी एक राजू चोडी और सातमी नर्कसे मोक्ष तक १४ राजू लम्बी त्रस नाल हैं. उसके अन्दर त्रस और स्थावर दोनो प्रकारके जीव है. वाकीके सर्व लोकमे एक स्थावरही जीव भरे है, त्रस नलके नीचेका विभाग सात राजू जित्नी (उलटे दींवे जैसी) जगामें सात नर्कस्थान है, वहां पापकी अधिकता होती है, वो जीव उपजके कृत कर्मके असुभ फल दुःखी हो भूक्तते है. मध्यमें दोनों दीवेकी संधी मिलती है, वहां गोळाकार

१८०० जोजन उंची जगा है. उसे मध्य (तिरछा) लोक कहते है. वहां मध्यमें तो एक लक्ष जोजन का उंचा और नीचे दश हजार जोजनका चौडा उपर एक हजार जौजन चौडा (मलस्थंभ जैसा) मेरु पर्वत है, उसके चारही तर्फ फिरता (चूडी जैसा) एक लक्ष जोजनका लम्बा चौडा (गोळ) 'जंबुद्विप हैं, उसके बाहिर चारही तर्फ (चूडी जैसा) फिरता दो लक्ष जोजनका चौडा 'लवण समुद्र' है. उसके चारही तर्फ वैसाही फिरता चार लक्ष जौजन चौडा 'धातकी खंडद्विप' हैं. उसके चौगिर्दा ८ लक्ष जोजन चौडा 'कालोदधी समुद्र हैं' उसके चौगिर्दा १६ लक्ष जोजन चौडा 'पुष्कराद्वीप' हैं ‡ यों एकेकको चौगिरदा फिरते और चौडासमें एकेकसें दुगणे, असंख्यात द्विप, और असंख्यात समुद्र, सब चूडी (वगडी) के संस्थानमें हं. मेरु पर्वतके जड में समभूमी हैं, वहांसे ७९० योजन उपर तारा मडल, वहां से १० जोज उपर * सूर्य का

‡ पुष्कर द्विपके मध्य भागमें गोळाकार (चुडा जैसा) मानुक्षेत्र पर्वत हैं उसके अन्दरही मनुष्य की वस्ती है जंबुद्विप धातकी खंड द्विप और आधा पुष्करार्ध द्विप यों अढाइ द्विप कहते हैं

* चन्द्रमा का विमान सामान्य पणे १८०० कोश चौडा है सूर्यका १६०० कोश चौडा और ग्रह नक्षेत्र तारा के विमान जघन्य १२५ कोश उत्कृष्ट ५०० कोश चौडे है, और १६ लक्ष कोश सूर्य

विमान, वहां से ८० जोजन उपर चन्द्रमाका विमान हैं. और उपर २० जोजन के अन्दर सब जोतषीयों के विमान आगये हैं. अढाइ द्विप के अन्दर के जोतषी के विमान आधे कबीठके संस्थान हैं. और बाहिर के इंट जैसे है. आगे उपर (मृदंग के संस्थान) सात राजू मठेरा कुछ कम लोक है, उसे उंचा लोक कहते है. वहां १२ देवलोक, ९ लोकांतिक ९ ग्रीवेक ५ अनुत्र विमान आगये है. इनमें सर्व विमान ८४९७०२३ है किस्नेक चौखूणे-किस्नेक तीखूणे और किस्नेक गोळाकार है. वहां पुण्य की अधिकता होती है वो जीव उपज के कृत कर्म के शूभ फल सुख मय भुक्तें है. सर्वार्थसिद्ध विमान के उपर १२ जोजन सिद्ध सिल्ला है सो चित्ते छत्र के जैसी ४५ लक्ष जोजन की लम्बी चोडी (गोळ) है उसके उपर एक जोज के छट्टे भाग में अनंत सिद्ध भगवंत अरुपी अवस्था में अलोक सें अड (लग) के विराज मान हैं. यह संक्षमें लोक का और लोक मे रहे स्थुल पदार्थों के संस्थानका वरणन किया.

जीवके ६ संस्थात-१ जिसका चारही तर्फ बरो

तथा १७ लाख ६० हजार कोशे चन्द्रमा पृथ्वीसे उंचा है ऐसा मिथ्य.मइन ग्रंथ में लिखा है

चर अंग होय-अर्थात् पद्मासन से वेठ के दोनो घुटने के विचमें की डोर और दोनो खन्धे के विच की डोरी वरोवर आवे. तैसे वोही डोरी वांहा खन्धा और वाये घुटनेके विच, और डावे खन्धा और ढावे घुटने के विच वरोवर आवे जैसे अच्छी कित्नीक जैन मूर्ती का वनाते है सो 'समच उरस संस्थान' २ जैसे वट (वड) का झाड नीचे तो फक्त लक्कड का ठूठ ढंढ मुंढ दिखता है, और उपर शाखा प्रतिशाखासें शोभे तैसेही कम्मर के नीचे का सरीर अशोभनीक, और उपरका सरीर शोभनीक होवे, सो 'निगोह परिमंडल' संस्थान. ३ जैसे खुरशाणी अम्वली, उपरको तो ठुंठा निकल जाय, और नीचे शाखा प्रतिशाखा कर शोभे तैसेही उपरका सरीरतो अशोभनीक, और कम्मरके नीचेका सरीर शोभनीक लगे, सो 'सादी संठाण' ४वावन ठिगना (छोटा) सरीर होयसो 'वावना संस्थान' ५ पीठपे तथा छातीपे कुवड निकले सो 'कुवडा सठाण' ६ आधा जला मुर्दाका जैसा सव सरीर खराव होय, सो 'हुड सठाण'

इन ६ संस्थान मेंसे नर्क पाच स्थावर तीन विक्लेंद्री और असन्नी तिर्यंच पचेंद्री मे फक्त १ हुंड सस्थान पावे सन्नी मनुष्य और सन्नी तिर्यंचमें ६ ही सस्थान पावे और सव देवता तिर्थकर, चक्रवृति, वलदेव,

वासुदेव आदी उत्तम पुरुषोंका एक समच उरस संस्था न होता हैं.

अजीवके ५ संठाण-१ वट्टे गोळ (◉) लड्डू जैसा २ तंसे=तीखुणा ▷ सिंघोडे जैसा. ३ चौरंसे=चौखुणा [] चौकी (बाजोट) जैसा. ४ परिमंडल=गोल ○ चूडी जैसा और पांचमां आइतंस=लम्बा । लकडी जैसा. इन पांचही संस्थानमय, इस चगत्में अनेक अजीव पदार्थ हैं. वट्टे तो वाटले वेताडादिक, तंसे और चौरंसे सो कित्नेक देवताके विमाण वगैरे. तथा परिमंडल द्विप समुद्रादिक ऐसे औरभी अनेक पदार्थ जानना.

यह संठाण-संस्थानो का जो वर्णव किया इन आकारके सर्व पदार्थोंमें, अपना जीव अनंत वक्त उप जके मर आया है. स्वतः सर्व प्रकारके उंच नीच संस्थान धारण कर आया है. और सर्व संस्थान मय वस्तुका मालिक हो आया है. भोगव आया है. अब्बी हां रे जीव ! तुझे पुण्योदयसे तेरे सरीरका, स्त्रीयादीका, मनोरम्य संस्थान मिलगया. तथा सयनासन, वासन, वस्त्र, भुषण, वाहन, इत्यादी इच्छित रूद्धी प्राप्त हुइ देख के, क्यों उसके फंदमें फसता हैं. क्या मरके उसहीमे उत्पन्न होना है? कहते है. "आसा वहां वासा' ऐसा जाण, अच्छे संस्थानके पदार्थोंपरसे

ममत्वका त्याग करना और कोइ वक्त अशुभोदय से अशोभनीक संस्थान मय अपना, सरीर यास्त्रीया दिक कुटम्ब सयोग मिलगया. या असन्योग सयनासनका योग्य बना तो, खेदित न वनें क्यों कि संस्थान तो फक्त एक व्यवहारिक रूप हैं, इससे अंत.रिक कुछ कार्य की सिद्धी नहीं होती है. जिससे किसी कार्य की सिद्धी न होवे उसपे रुष्ट तुष्ट होना येही अज्ञानता जानी जाती है. और भी विचारे की, रे जीव! तूं ज्ञानी धनके भी निकम्मे काममे राग द्वेप कर, कर्म वन्धन करता है, तो तेरे ज्ञानसे तुजे क्या फायदा हुवा इत्यादी विचार, अच्छे या बुरे, संस्थान मय पदार्थोंपेसे राग द्वेप कमी करे और सदा एकही आकारमें रहने वाले, जो निजात्म गुण तथा परमात्म स्वरूप है उस में अपनी प्रणतीको प्रणमावे

☞ यह धर्म ध्यानकें चार पायोंका सक्षेप में स्वरूप कहा धर्मध्यानके ध्याता इन्हीको यथा वुद्धी प्रमाणें विचर के धर्म ध्यानमें अपणी आत्माको स्थिर करें

द्वितीय प्रतिशाखा–"धर्म ध्यानीके लक्षण"



सूल धम्म-सणं झाणस्स चत्तारी लख्वणा पन्नंता तजहा–आणारुइ, नीसग्गरुइ, उवदेसरुइ, सुत्तरुइ,

अर्थत्—धर्म ध्यानके ध्याता को पहचाननेके चार लक्षण है. १ जिनाज्ञापे रूची होयसो अज्ञा रुची. २ जिनज्ञान के अभ्यासपे रुची होय सो निसग्ग रुची. ३ सद्बोध श्रवण करनेकी रुची सो उपदेश रुची. ४ जिनागम श्रवण करनेकी रुची सो सूत्र रुची-

रुची नाम उत्कृष्ट इच्छा का है, जैसे-कामी कों कामकी दामी को दाम की गामी कों नाम की, क्षुदित को अन्नकी, त्रपित को जलकी समुद्रमे पडे को झाज की. रोगी को औपधी की रस्ता भूले को साथ की. इत्यादी कार्यार्थिक कों कार्य पूर्ण करने की, स्वभाविक इच्छा होती है, जो कार्य पूर्ण न होवें वहां लग मनमे तलमल लगी रहे, कार्य पूर्ण होणेसे अत्यं-

त हर्षाय, और वियोग होने से पीछी वैसीही उत्क-ठा जगे उसी का नाम रुची है. संसारी जीवोंकी-जैसी रुचि व्यवहारिक पुद्गलिक कामोकी होती है, धर्म ध्यानी की वैसी रुची आत्म साधन के कामो-में-होती है यह आत्म साधन के परमार्थिक कामो-के मुख्या चार भेद किये है

प्रथम पत्र–अज्ञा रुची

१ आज्ञा रुची, अनादी काल मे यह जीव जिनाज्ञा का उलंघन कर, स्वच्छदा चारी हो रहे है जिससेही इत्ने दिन ससार मे परिभ्रमण किया उत्तराध्येयन सूत्रमे फरमाया है की "छंदो निरोहेण उवेइ मोरकं" अर्थात अपना छांदा (इच्छा) का निंरुंधन करे जिनाज्ञा मे प्रवृतनसे ही मोक्ष मिलती है. इसलिये मुमुक्षु जन को चाहीये की अपनी इच्छा कों रोक वितराग की आज्ञा मे प्रवृतने का पर्यत्न करे, अब वितराग की आज्ञा क्या है उसे विचारिये. वितराग=राग द्वेषके क्षय करने वाले को कहते हैं, जिनोनें राग द्वेशके क्षयमें ही फायदा देखा, वो राग द्वेष घटानेकी ही आज्ञा करेंगे

यह निसंदेह है. ऐसा जाण वितरागकी आज्ञाके इ- च्छक, सदा मध्यस्त प्रणामी रहे. प्रतिबंध रहित रहे, सो प्रतिवन्ध चार प्रकारके होते है. १ द्रव्यसे=१सजीव सो द्विपद. मनुष्य, पक्षिका. चतुष्यपद, पशुओका. २ अजीव सो वस्त्र, पात्र, धनादिकका, ३ मिश्र सो दोनो भेले, जैसे, वस्त्रा भुषण, मंडित मनुष्य, पशु, इत्यादी. २ क्षेत्रसें ग्राम, नगर, घर, खेत, इत्यादी. ३ कालसे घडी, प्रहर, दिन, पक्ष, मांस, वर्षादि. ४ और भावसे क्रोधादी कषाय. मोह ममत्व, इन चारही प्रतिवन्ध रहित रहें. * क्षुद्या, तृषा, शीत तापादी समभाव सें सहन करे मिष्ट कटु वचनकी दरकार न रख्खे. निद्रा प्रमाद अहार कमी करे, सदा ज्ञान ध्यान तप संयममे आत्मा को रमण करते प्रवृतें (इस आज्ञा रुचीका विस्तार पहलें आज्ञा विचयमे विस्तार से होगया है. वहां कहा सो तो विचार समजना और यहां कही सो प्रवृतन करनेकी इच्छा समजना.)

---

* यह श्रावक हमारे, यह क्षेत्र हमारे, इस प्रतिबन्धनमें बंदने से ही इसवक्त वितरागके अनुयायों में धर्म ध्यानकी हानी होके क्लेश पेदा होता हुइ द्रष्टी आता हैं आत्मार्थीयों को इस झगडेसे बच, अप्रतिबन्ध विहारी होना चाहीये की जिससे धर्म ध्यान अखंड रहे

द्वितीय पत्र-"निसग्गरुची"

२ 'निसग्ग रुची' धर्म ध्यानी पुरुष कों, इस विश्वालय में के सर्व पदार्थ ऐसें भाष होतें हे, की-जाने मुजे सद्बोध ही करते हे. श्री आचारांग शास्त्र के फरमान मुजब ज्ञानी महात्मा आश्रव के स्थान में हीं संबर निपजा लेतें हैं जैसे*नमीराज ऋषिने प्रेमलाओं के चूडीओं का अवाज सुना उससे (अन्यको काम राग वृधी करने का कारण होता है) उनोने वैराग्य प्राप्त किया. ऐसे ही झाड, पाहाड, खान, पान, वस्त्र भुषण, ग्रास, मशाण, रोग, हर्ष, शोग, बादल, विद्युत संयोग वियोग निर्वृती भाव यह सब वैराग्य उत्पन्न करने के कारण होतें हैं इत्यादीसे जिनको वैराग्य उत्पन्न होवें सो निसर्ग रुची और कित्नेक जाति स्मरण ज्ञान सें अपने पूर्व के ९०० भव (जो सन्नी पचेंद्रीय

---

* मिथला नगरी के नमी नरायजीक सरीर में दहा ज्वर हुवा, उसव क वैद्के कहेनमे शाता उपचार के लिये १००८ राणीयों बावन चंदन घिस के लगाने लगी, तब उन सबके हाथ की चुडीयों का एक दम शोर मच गया तब नमीराय बोले मुजे येश द अच्छा नहीं लगता है की उसी वक्त सब प्रेमलाने सोभाग्यके लिये एकक चूडी हाथ में रख सब चूडीयों उतार डाली अवाज बंद होने कारण समजने से विचार हुवा की, बहुत चूडी एक स्थान थी तबेहा गडबड था और एक रहनसे सब गडबड मिट गइ वसमेंहो संयम फसा हू नहा नकहीं दु खी हू जो इस वेदनासे मुक्त होवु तो सब संगत्याग सुखी बनू इत्ना विचारतेही रोग शांत हुवा और वो दिक्षा ले अनंत सुख पाये

के लगोलग किये होयँ उन्हे) जाननें सें. जन्मांतर में कृय कर्म के फल भागेवें हुये देख, वेराग्य उत्पन्न होता है. ऐसे २ अनेक कारणो से । जिनकों तत्वज्ञान प्राप्त करनें की रुची होती हैं. उसको निसर्ग रुची कहना. तथा अन्य मतावलम्वी अज्ञान तप का कष्ट सहने सें, अकाम निर्जरा होने से. ज्ञाना वर्णी कर्म का क्षय उपसम होनें से; विभंगज्ञान की प्राप्ती होवें. उस सें जैन मत के साधू की उत्कृष्ट शुद्ध क्रिया देख. अनुराग जगने सें, विभंगज्ञान फिट अवधी ज्ञान की प्राप्ती होवें तव तत्व ज्ञान पें रुची जगने सें सम्यक्त्व की प्राप्ती हुइ, सो निसर्ग रुची. ऐसे किसी भी तरह तत्वज्ञता प्राप्त हों, उसमें प्रणाम स्थिरीभूत होवें वो ही धर्म ध्यानी की निसर्ग रुची का लक्षण जाणना

तृतिय पत्र–"उपदेश रुची"

३ 'उपदेश रुची' श्री तिर्थंकर, केवल ज्ञानी, गणधर महाराज, साधू, साध्वी, श्रावक, श्राविका, सम्यक द्रष्टी, इत्यादीजो शुद्ध शास्त्रानुसार उपदेश करें. उसपे धर्म ध्यानी की रुची जगे सो उपदेश रुची. दशवे कालिक सूत्र के चौथे अध्येयनमें फर माया है.

गाथा सोच्चा जाणइ कल्लाण. सोच्चा जाणइ. पावग,
उभयपि जाणाइ सोच्चा जंसेय त समायेरे. ११

अर्थ-सुनने सेही मालम होती है के, अमुक सुकृत्य करने से अपणी आत्मा का कल्याण (अच्छा-भला)होगा और अमुक पाप कृत्य करनेसें बुरा होगा; तथा अमुक काम करने से, अच्छा और बुरा दोनो ऐसा मिश्र काम होगा जैसे की काम भोग में सुख तो थोडा है, और दुःख अनंत है, यह दोनो बात समजे. तथा मिश्र पक्ष जो ग्रस्थ धर्म हैं. जिसे शास्त्र में 'धम्मा धम्मी' तथा 'चरीत्ता चरित्ते' कहे हैं. क्यों-कि संसार में बेठे हैं सो विना पाप गुजरान होना मुशकिल ऐसा समज, उदासीन वृति से पश्चाताप युक्त काम पूरता कर्म करतें हैं. और आत्म कल्याण का कर्ता धर्म कों जाण. जब २ मौका मिलता हैं- तब २ अत्यंत हर्ष युक्त धर्म क्रिया करते है यह तीनही वातों सुनने सें मालम पडती है उसमे से अच्छी लगे उसे स्विकार के सुखी होतें है. ये सब उपदेश सेही जाणा जाता है उपदेश (वाख्यान) में सदा अभीनव तरह २ का सद्बोध श्रवन करने सें स्वभाविक तत्व रुची तत्वज्ञता उत्पन्न होती है ध्यानस्त हुये वो बोध ह्रदय में रमण करता है. तब अन्य सर्व वृती सें चित

निवृत हो, एकांत धर्म ध्यानहीमें लग, ध्यान की सि-
द्धी करता है. इस लिये धर्म ध्यानी उपदेश, श्रवण,
मनन, निध्यासन, औंर उसी मुजब प्रवृतन करने मे
अधिक रुची रखते है.

चतुर्थ पत्र-"सूत्र रुची"

४ सुत्र रुइ-सुत्र द्वादशांगी भगवंत की वाणी
को कहते है. सो १ आचारांग जिसमें, साधू के
आचार गोचार वगैरे वर्णव है. २ सुयगडायंग
जिसमें-अन्य मता लम्बीयो क मत का श्वरुप
वताके उसका निराकरण किया है. ३ ठाणायंगजीमें
दशस्थान का अधिकार है ४ सम वायंगजी
में, जीवादी पदार्थ के समोह का संख्या युक्त स-
मवेस क्रिया है. विवहा पणंती (भगवति) में विवि
ध प्रकार का अधिकार है. ६ ज्ञानामे धर्म कथा ओं
हे ७ उपाशक दशा मे दश श्राव को का अधिकार
है. ८ अंतगड दशांग मे, अंतगड केवलीयों का अधि-
कार. ९ अणुत्र रोववाइ मे, अणुत्र विमन में उपजे
उनका अधिकार. १० प्रश्नव्याकरण मे, अश्रव संवर
का अधीकार. ११ विपाकमे सुभाशुभ कर्म भोगवणेंकी

कथा और १२ व्रष्टी वादांग में सर्व ज्ञान का समवेश किया था.

यह द्वादशांगी श्रीजिनेश्वर भगवानकी वाणी, अगाध ज्ञान का सागर है तत्वज्ञान कर प्रतिपूर्ण भरी हुइ है. ज्ञाता को अपूर्व चमत्कार हृदयमे उत्पन्न करती हे आत्म श्वरुप बताने वाली, मिथ्या भर्म मिटाने वाली, मोह पिशाच भगाने वाली, मोक्ष पंथ लगाने वाली, अनत अक्षय अव्या बाध सुख कों चखाने वाली, एक श्री जिनश्वर भगवंत की वाणीही, गुण खाणी है जिसे पठन, श्रव न, मनन निध्यासन, करनेमें धर्म ध्यानी महात्मा सदा प्रेमातुर रहतें हैं एकेक शह्द अत्यंत उत्सुकता सें ग्रहण कर उसके रेशमें अंतः करण को प्रवेश कर, एकाग्रता सें लीनहो. अपूर्व अनोपम आनंद प्राप्त करतें हैं.

तृतीय प्रतिशाखा धर्मध्यानके "आलम्बन"

सूत्र धम्मस्सणं झाणस्स चत्तारि आलंबना पन्नते तंजहा वायणा पुच्छणा, परियट्टणा, धम्मकहा.

अर्थ-धर्म ध्यान ध्याने वाले को चार आलम्बन (आधार) फरमायें हैं, जैसे वृध मनुष्यको मार्ग क्रमणेको जेष्टिका (लकडी) आधार भूत होती है. या

मेहलपे चढने को पंक्तीये या आलम्बन डोरी आधार भूत होती है. वैसेही धर्म ध्यानमें प्रवृत होने वाले महात्माको चार तरहका आधार होता है सो कहे है:- १ वायणा=सुत्रका पठन, २ पुच्छणा=संदेह निवारन गुरूसे प्रच्छना (पूच्छना) ३ परियट्टना=पढे ज्ञानको वारम्बार संभारना. (फेरना) और ४ धम्मकहा=धर्म कथा (व्याख्यान) दे प्रगट करना.

प्रथम पत्र-"वायणा"

१ 'वाचना' गीतार्थ बहु सूली, आचार्य, उपाध्याय, इत्यादी विद्वरोंके पाससे. ज्ञान ग्रहण करना (पढना) या लिखित सूल ग्रन्थादी बांचना (पढना) यह ध्यानी के ध्यानका प्रथम आलंबन आधार हैं.

अव्वल चतुर्थ (चौथे) आरेमें, प्रवल (तिक्षण) प्रज्ञा (बुद्धि) के सबबसें, शास्त्रादिक लिखने की आवश्यकता बहुतही थोडीथी. वो अपणे गुरुओंके पाससे थोडेही कालमें बहुत ज्ञान कंठाग्रह कर लेतेथें, कित्नेक तो ऐसी तेज बुद्धि वाले थे की, चउदह पूर्वकी विद्या, जो कदापि लिखे तो १६३८३ हात्थी डूबे इत्नी इयाही लगे, इत्ने ज्ञानको एक मुहूर्त मात्रमें कठ कर लेतेथे. अर्थात् १ उपनेवा=उत्पन्न होने वाले प-

दार्थ, २ विघनेवा=विनाश होने वाले और ३ धुवेवा= ध्रव (स्थिर) रहने वाले पदार्थ, यह तीन पद पढाते जिसमें चउदह पुर्वका ज्ञान समज जातेथे जैसे कुंडभर पाणीमें एक तेलकी बुंद डालनेसें सब हौदमें फैल जाती है; तैसेही उन्हे सिखाया हुवा, संक्षिप्त शब्द विस्तार कर प्रगम जाताथा. और चउदे पुर्वका ज्ञान जिसके एक खुणेमें समाजाय,ऐसा द्रष्टी वाद अंगके पाठी (पढे हुये) भी विराजमान थे इस ज्ञानके प्रमोत्कृष्ट रसमे जब उनकी अंतात्मा लीन होजातीथी. तब छे छे महीने जित्ना समय ध्यान में वितिक्रंत होते भी उनको भूख, प्यास, शीत, उष्णादी पीडा (दुःख) ज नक न मालम होतीथी. ऐसे २ प्रबल बुद्धि वाले थे. तब लेखका कष्ट सहनेकी क्या जरूर पडे! चौथा आरा उतरे लगभग ९७६ वर्ष गये पीछे . 'श्री देवर्द्धी गणी क्षमा श्रमण' नामे आचार्य, किसी व्याधीकों निवारने सूठ लायेथे. और आहार किये बाद भोगवणेकों कानमें रखलीथी सो वक्तसिर खाना भूल गये और देवसी प्रतिक्रमण की आज्ञा लेती वक्त नमस्कार करते वो सूठ कानमेसे गिर पडी, उसे देख विचार हुवा की अब्बी एक पूर्व जित्ना ज्ञान होतेभी इत्नी बुद्धि मंद रह गइ है. तो आगे क्या होगा. जो

ज्ञान नष्ट हो गया तो घोर अन्धारा हो जायगा, इस लिये अब ज्ञान लिखनेकी बहुतही आवश्यकता है. लिखित ज्ञान भव्य जीवोंको आगे बहुतही आधार भूत होगा. इत्यादी विचारसें संक्षेपमें सूत्र लिखने सुरू किये. क्यों कि प्रथम आचारांगजीके १८०००* पद थे. अब्बी फक्त मूलके २५०० श्लोकही देखाई देतें हैं. ऐसेही द्रष्टी वादांग छोड, इग्यारे अंगादी ७२ सूत्रोंकी लिखाइ संक्षेपमें हुइ, की जिनकी हुन्डी (नामादी) श्री समवायंगजी तथा नंदीजी सूत्रमें हैं. बाकीका सब ज्ञान उन्हीके साथ गया.

अब इस पंच कालमे तिर्थंकर केवल गणधर द्वादशांग के पाठी पूर्वधारी वगैरे जो अपार ज्ञानके धारक कोइ नहीं रहे.

---

* गाथा—सोलस सयच उत्तीसा, कोडि तियसीदि लख्खयचेव
सत्तसहस्साठसया अठासीदिय पदवणा ३३६ गामटसार
अर्थ—१६३४८३७८८८ इत्ने वरण (अक्षर) एक पदके होते हैं.
गाथा—अठारस वतीस वादल अडक्कदी विछप्पणं
सचारि अठावीस घाउहाल सालस सहस्सा ३५५गो०सार
अर्थ—आचारांगजीके १८०००, सुयगडांगजीके ३६०००, ठाणायंगजीके ४२०००, समवायंगजी १६४०००, भगवतीजीके २२८०००, ज्ञाताजीके ५५६०००, उपाशकदशागके ११७००००, अंतगड़ दशांग के २३२८०००, अणुतरोववायजी के ९४४००, प्रश्न व्याकरणजीके ९३१६०००, विपाकजीके १८४००० यह ११ अंगकी पदकी सख्या जाणना.

श्री उत्तराध्ययन जीके दशमें अध्ययनमें कहा हैः-

गाथा— नहू जिणे अज्ज दिस्सइ, वहू मए दिस्सइ मग्गदे सिए, संपइ नेया उए पहे समय गोयम मा पमा- यए ३१.

अर्थात् अब्बी इस पंचम् कालमे, नहीं देखते है निश्चयसे श्री जिन, तिर्थंकर भगवान् व केवल ज्ञानी परन्तु बहुत हैं. मोक्ष मार्ग के उपदेशने बताने वाले जिनोक्त सिद्धांत तथा सद्बोध कर जीवोको मुक्ती पन्थ मे चलानें वाले, 'सद्गुरु' उनके पाससे न्याय मार्ग मोक्ष पन्थ प्राप्त करनेमें, हे गोतम (जीव) समय मात्र प्रमाद आळश मत कर! इस गाथानुसार अबी तो भव्य मोक्षार्थि जीवोंको फक्त जिनोक्त शास्त्र, और सद्बोधके सद्गुरुओकाही आधार रहा है, मोक्षार्थियोंकी इच्छा सिद्धी करने वाला ज्ञान है वो इस वक्त सूत्र व ग्रन्थोंमे हैं, और उसकी रहस्य गीतार्थो बहू सूत्रीयों उत्पात बुद्धी और दीर्घ द्रष्टी वालोके पास है; की जिनोंने अपने गुरुओंके पाससे यथा विधी धारण की है, और वो न्याय मार्गमें लोकीक लोकोत्तर में शुद्ध प्रवृत्तीसे प्रवृत्त रहे, क्षांत, दात, निरारंभी, निष्परिग्रही हैं उनके पास शास्त्राभ्यास करना. क्यों कि शास्त्र समुद्र अति गहन गुढार्थों करके भरा है; उसकी यथार्थ

समज होना है. सोही आत्म कल्याण करने वाली है.

इस वक्त कित्नेक ले भग्गूओं. अभीमान के मारे गुरु गम विन, पुस्तकी विद्या पढ २ पंडितराज बन बैठे हैं, उन्होंने बहुतसे स्थान अर्थका अनर्थ कर शास्त्रका शस्त्र बना दिया है; अनंत भव भ्रमण मिटा ने वाला पवित्र अहिंशा मय परम धर्म को हिंशामय कर अनंत भवका बढाने वाला बना दिया हैं; इस लिये ही चेताना पडता हें की मोक्षार्थियोंको अव्वल. ज्ञान दाता गुरूके गुणोंकी परिक्षा शास्त्रानुसार कर, उनके पाससे ज्ञान ग्रहण करना चाहीये.

श्री सुयगडायंगजी सूलके ११ में अध्ययनमें धर्मोपदेशकके लक्षण इस प्रमाणें फरमायें हैः—

गाथा आय गुत्ते सया दंते, छिन्न सोए अणासवे.
जे धम्म सुद्ध मक्काति, पडि पुन्न मणालिसं. २४

अर्थात् मन, वचन, काया, रूप, आत्माकों पाप मार्गमें जाती हुइ रोक, अपने वशमें करी है कूमार्गमें आत्माको नहीं जाने देते है, सदा पंच इन्द्रि, और मनको, विषय सें निवार धर्म ध्यान में लगा रख्खा है. संसारका जो आरंभ परिग्रह रूप प्रवाह हैं, उसे वंद किया है. मिथ्यात्व, अवृत्त, प्रमाद. कषाय, और जोग, इन पंच आश्रवों करके राहित हुये हैं,

और अहिंशा सत्य दत, ब्रम्हचार्य अनमत्व यह पंच महावृत धारन किये, इन्हे गुणके धारक होवें सोही, सत्य, शुद्ध, यथा तथ्य, श्री वितराग प्रणित धर्म फरमा सक्ते है, वो कैसा धर्म फरमायंगे, तो की प्रतिपूर्ण न्युन्याधिकता रहित. देशवृत्ती (श्रावकका) या सर्ववृति (साधूका) निरुपम औपमा रहित वैसा धर्म अन्य कोइ भी प्रकाश नहीं शक्ते है, ऐसे गुणज्ञोंके पाससे ज्ञान संपादन करना

अन्न, धन, आदी सामान्य वस्तुभी दातारके पाससे ग्रहण करतें अनेक लघुता करते है. तथा सरोवरमे से भी विना नमन किये पाणी प्राप्त नहीं हो सक्ता है तो ज्ञान जैसा अत्युत्तम पदार्थ विना लघुता नम्रता किये कहांसे प्राप्त होगा इस लिये, ज्ञान प्राप्त करनेकी श्री उत्तराध्ययनजीके पहले अध्यायमें यह रीती फरमाइ है:—

गाथा— आसण गउ न पुच्छेज्जा, नेव सिज्जागउ कयाइवि
आगमकुड उ संतो, पुच्छेज्जा पञ्जलि उडो २२
एवं विणय जुत्तरस सुत्त अरथच तदुभय
पुछ माणस्स सीसस्स वागरेज्ज जहा सुये २३

अर्थात्—अपने आसण (विछोन) पे बेठा हुवा तथा सेजामें सूता हुवा कदापि प्रश्नादिक नहीं पूछे

क्यों कि आसण यह अभीमान जनक हैं, और अभिमान ज्ञानका शत्रु हैं. और सूता हुवा ज्ञान ग्रहण करनेंसे. अविनय और प्रमाद होता है. यह ज्ञानके नाश करनेवाले हैं, इस लिये जब प्रश्न पूछनेकी या ज्ञान ग्रहण करनेकी इच्छा होय, तब, आसन अविनय मान और प्रमादको छोडके जहां गुरु महाराज विराजे होयॅ उनके सन्मुख नम्रता युक्त आवे, और दोनो घुटने जमीको लगा, दोनो हाथ जोड मस्तकपे चडा, तीन वक्त (उठ वेठ) नमस्कार करें, और दोनो घुटनें जमीनको लगाये, दोनो हाथ जोडे, नमा हुवा सन्मुख रहके, उच्च वहुमान वचनोसे प्रश्नोत्तर करें, सूत्र अर्थादिक दिल चायसो पूछे और क्या उत्तर मिलता है. ऐसी उत्कंठा युक्त एकाग्र उनके सन्मुख द्रष्टी रख, वो फरमावे सो, जी तहत, वचनसे ग्रहण करे, जित्ना अपनको याद रहे, उत्नाही ग्रहण करे. ज्यादा लोभ नहीं करे. ऐसी तरह विनय युक्त पूछनेसे, गुरु महाराजनें अपने गुरूके पास से जैसा ज्ञान धारन किया. वैसाही उसे देवेगे (पढावेंगे).

जो सद्गुरूके पाससे ज्ञान गृहण किया है, उसकी पुनरावृत्ती करते (फेरते) किसी तरह की शंका उत्पन्न होवें, या कोइ शब्द विस्मरण हो गया (भूल

गये) हो. तथा किसीने प्रश्न पूछा, उसका उतर नही आया हो तब पूर्वोक्त विधीसे गुरू महाराजके सन्मुख आके—

द्वितियपत्र—"पुच्छणा"

२ 'पूछणा' अर्थात् पूछा करे. की-हैं कृपाल आपने अनुग्रह कर. मुजे अमुक पढाया था. उसमें इस प्रकार संशय उत्पन्न होता हैं. सो हैं पुज्य, उसका निराकरणा- निवारण करने आपको तकलिफ देतां हु सो माफ किजीये और मुजे मार्ग बताइ ये, इत्यादी नम्रता युक्त, अपने मन की शंका खुली २ गुरुजी कें सन्मुख प्रकाश करे, और गुरु महाराज उत्तर देवें, वो आंप एकाग्रता सें- उत्सुकता से जी। तहेत इत्यादी सकोमल-मीठे वचनो से वधाता हुवा ग्रहण करें जहां तक अपने चितका पूरा समाधान न होवें, वहां तक तर्क उठा २ के पूछताही जाय, शरमाय नहीं, डरे नही, घबराय नही निश्चल चित सें पूरा निराकरण-कर*संदेह रहित होवें, की कोइ भी उस बात को पूछें ते आप उसके हृदय सचोट ठसा सके, ऐसा निश्चय करे

* चोयणा प्रति चायणा करनेंस ज्ञानी बहुत खुशी होते हैं और ज्ञातपण उसका खुलासा करते हे।

और जो अभ्यास कर निश्चय कर निसंदेह ज्ञान किया है उसे

तृतिय पत्र–"परियट्टणा"

३ 'परियट्टणा' अर्थात् वारवार फेरता (याद करता) रहे. क्यों कि अव्वी इत्नी तिव्र बुद्धि नहीं है की जो एक वक्त पढ, पीछा याद नहीं करे, तो विस्मरण (भूल) नहीं होवें, और वारंवार फेरनेमें बहुत फायदा है—

श्री उत्तराध्ययन जी सूत्रके २९ में अध्यायमें भगवंतने फरमाया है.

"परियट्टणं या एणं वंजण लद्धि च उप्पाएइ" अर्थात् ज्ञानको वारंवार फेरनेसे अक्षरानुसारणी लब्धी उत्पन्न होती है जिससे एक अक्षर, व पदके अनुसा रेसे, दूसरे आगे पीछे के अक्षरोंका ज्ञात होता है, अपनी विना पढी ही विद्या में काही अन्यके भूले हुये अक्षरोंको, आप वता सके, ऐसी शक्ती उपजे.

और जो ज्ञान फेरे, वो ऐसा नहीं फेरे की, जैसें बच्चे 'गुणनी' करते हें, की पढे हैं वो कह दे, परंतु उसके मतलबमे आप नहीं समजे, 'तूं चल, मे आया'

ऐसी 'गडवढ' भी नही करें, ज्ञान फेरती वक्त ' अणुप्पेहा' अर्थात् उपयोग रक्खे जो जो अक्षरोंका मुखसे उच्चार होवें. उसका अर्थ अपने मनमे, विचारता जाय उसपे, द्रष्टी फेलाता जाय, इसमें वहुत गुण हैं.



"अणुप्पेहापणं, आउयवज्जाउ सत्र कम्म पगडीउ धणीय वंधाउ, सिढिल वंधण बद्धा उपकरेइ, दिह काल ठिइयाउ, रहस्स उ काल ठिइयाउपकरेइ; वहु पएस गाउ, अप्प पएस गाउपकरेइ, आउयं चणं कम्मं, सियवंधइ, सियनोवंधइ असायावेयणि ज्जंचणं कम्मं, नो भुज्जो २ उवचिणाइ; अणाइयचणं, अणवगदगं, दीह, मद्धं, चउरंत संसार कंतारं, खिप्पा मेव वीइ वयइ' ३२ उत्तरा० अ० २९

अर्थात्—उपयोग युक्त ज्ञान फेरनेसे, या शब्द क अर्थ परमार्थ दीर्घ द्रष्टीसे विचारनेसे जीव आठ कर्म मेंसे आयुष्य कर्म छोड बाकीके ७ कर्मकी प्रकृतियों जो पहले निवड (मजबूत) बांधी होय, उसे स्थिल (ढीली) करे, (जलदी छूट जाय ऐसी) वहुत काल तक भोगवणा पडे, ऐसा वंध वाधा होय तो; थोडेही कालमे छुटका होजाय ऐसी करे. तिव्र भाव (वीकट रससे उदय आने) की होवें, उसे मंद भाव (सरलपणें)

भोग वाय ऐसी करें. *आयुप्य कर्म कदाचीत कोइ बंधे, कोइ नही बांधे. असाता वेदनी (रोग दुःख देनें वाले) कर्म वारंवार नही बांधे; और चार गती रुप संसार कंतार (जंगल) का पन्थ-मार्ग आदी रहीत है. और मुशकिल से पार होय ऐसा हैं. उसे क्षिप्र (शिघ्र) अतिक्रमें (उल्लंघे)-अर्थात जल्दी पार पावें मोक्ष प्राप्त करें देखयें श्री महावीर वृधमान श्वामीने खुद, शास्त्र द्वारा विचार ना (ध्यान) का किल्ने विस्तारसें गुणा नुवाद किया हैं. ऐसी उत्तम विचार शक्ती है, ऐसा जाण खूब उपयोग युक्त ज्ञान कों वारंवार फेरना चाहीये.

जो ज्ञान फेर कर पक्का किया उस का रस हूबेहु प्रगमा उसका लाभ दूसरे को देणे के लिये—

चतुर्थ पत्र "धम्मकहा"

४ 'धम्मकहा' अर्थात् धर्मकथा (वाख्यान) करें. धर्म कथा श्री ठाणायंग सूत्र में ४ प्रकार की कहके; एकेक के चार २ भेद करनें सें १६ प्रकार होते ह, सो-

[१]अखेवणी-अर्थात् अक्षेपनी. जो बोध श्रोताकों सुणावे उसकी असर श्रोताके मनमें हूबेहू होवें, पीछा वसन न होवे. ऐसा पक्का ठसजाय. रुचजाय, पचजाय;

*आयुष्य कर्म का बन्ध एक भवमें दोवक्त नहीं पड़ता है.

उसे अक्षेपनी कथा कहनी. इसके ४ भेद-[१] प्रथम साधूका धर्म ५ महाव्रत, ५ सुमती, ३ गुप्ती, (यह १३ चारित्र) आदी कहे, जो साधू होने समर्थ न होवें. उनके लिये श्रावकके १२ व्रत* आदी कहे, के यथा शक्त धारन करनेकी सूचना करे. [२] निश्चय में, और व्यवहारमें, प्रवृतनेकी रीती सद्वाद शैलीसे कहे, की निश्चय मे मोक्ष ज्ञानादी त्रय रत्नकी आराधनासें और व्यवहार में रजुहरण मुहपति आदी साधूके चिन्ह व शुद्ध कियासे, निश्चय विना व्यवहार, और व्यवहार विन निश्चय की सिद्धी होनी मुशकिल है, व्यवहारमे शुद्ध प्रवृत्ती कर, निश्चय सिद्धीकी क्षेप करनेसें सर्व सिद्धी होती है, [३] श्रोताओंको शंशयका उच्छेदन करनेको अपने मनसेही प्रश्न उठाके, आपही उसका समाधान करे की जिससे इष्टार्थ सिद्ध होवे, तथा प्रश्नका उत्तर मर्मिक शब्दमे दे समाधान करे [४] सत्य सरल सबको रुचे ऐसा सद्बोध करे परन्तु

* १ त्रस जीवकी हिंशा नहीं करे, स्थावरकी मर्याद करे. २ वडा झूट नहीं बोले ३ वडी चोरी न करे ४ परस्त्रीका त्याग करे परिग्रह की मर्याद करे ६ दिशाकी मर्याद करे, ७ उपभोग परिभोगकी मर्याद करे, ८ अनर्था दंड त्यागे, ९ सामायिक करे, १० दिशावकाशी करे, नेम चितारे, ११ पोषा करे, १२ मुनीराज को १४ प्रकारका सुजता दान उलट भावसे देवे

पक्षपात राग द्वेष वडे, या आतम श्लाघा, परनिंदा होवे ऐसा उपदेश नहीं करें. "पापकी निंदा करें परंतु पापी नहीं."

२ "विखेवणी" अर्थात विक्षेपनी. संयम या श्रधासे चलित प्रणामीं कों. पुनः सद्बोध कर आत्मा स्थिर करे, सो विक्षेपनी धर्म-कथा. इसके ४ भेद[१] अन्य मत्त के परिचय सें. तथा ग्रन्थावालोकन से. किसी की श्रधा भृष्ट हुइ होय तो. उसे जैन मत का गहन सुक्ष्म ज्ञान बता के, अन्य मत की बातों से मिला के, प्रत्यक्ष फरक बतावे; कि जिसकी अक्कल तुर्त ठिकाणे आजावें. एसा बोध करें. [२] एकांत अन्यमतमें ही, किसी का मन लगा होय तो. उसे उसी के मत के शास्त्रों में जो साधू ओं की कठिण क्रिया, तथा जैन मत से मिलती बातों, होवे. सो बता के उनसे पूछे की ऐसे चलने वाले जैन है, या अन्य? यो सत्यता द्रष्टीसे बता के जैंन का द्रढ श्रधाल्लू करें. [३] जब उनकी श्रधा जैन मत पे जमी देखें. तब उसके ह्रदय का मिथ्या कंद निकंद करने. न्याय प्रमाण के शास्त्रों सें खुल्लम खुल्ला मिथ्यात्व व का स्वरुप बता शल्योधार कर निर्मळ करे. [४[जिन का निर्मळ ह्रदय होगया हो- उनके ह्रदय में पीछा मिथ्यात्व प्रवेश

न कर ऐसा सम्यक्त्व का विस्तारसे यथा तथ्य रुची कारक स्वरुप बता के तथा अनेक प्रश्नोतर कर- पक्का करे, की वो किसी का डगाया डगे नहीं.

३ "संवेगणी" अर्थात सं=सीधे, वेग=रस्ते प्र लावे सो सवेगणी कथा. इसके ४ भेद (१) जिन २ वस्तूवोंपे ससारी जीवोंका प्रेम है, उनकी अनित्यता बतावे की देखो! देखते २ वस्तूवोंके स्वभावमें, स्वरुपमें कैसा फरक पडता है. ताजी वस्तु और बासी वस्तुकों देखनेसे मालम होता है. वस्तूका स्वभाव क्षिण भंगूर हैं, अर्थात क्षिण २ में पलटता हैं क्यों कि जो गुण और जो स्वाद गरममें था, वो ठन्डी हुये पीछे न रहा, ऐसेही इस शरीर कों देखो उत्पन्न हुये पीछे जवानी तक, कैसी सुन्दर तामें वृधी होती है. फिर बृधवस्था में कैसी हीनता होती है, और सरीर नष्ट हो जाता है ऐसे सर्व जगतूके सर्व पदार्थ जानना. क्षिण २ में नवे २ पुद्गल उत्पन्न होते हैं; और ज्युने विनाश होते है. सब पदार्थोंमें कुछ एकही दम फरक नहीं पडता है, परन्तु पडता २ ही पडना है, और एकदम पानीके परोटे जैसे विनाशको प्राप्त होते हैं. ऐसा पुद्गलोंका स्वभाव जाण, ममत्व निवारे. फिर मनुष्य जन्मादी सामुग्रही प्राप्त हुइ है. उसकी दुर्ल-

भता बतानेकी *-चोरासी लक्ष जीवा योनीमें अनंत परिभ्रमण करते महा पुण्योंदय सें सब भवभ्रमणका नाशका करने वाले, मनुष्य जन्म, शास्त्र श्रवण, शुद्ध श्रधा और धर्म स्पर्शनेकी समग्री, महा मुशीवतसे मिली है. इसे व्यर्थ गमा देगा, उसे किता पश्चताप करना पडेगा? और ऐसी वक्त जो काम करनेका है. वो कर लिया तो कैसा आनंद पावेगा? इत्यादी बातसें, वैराग्य प्राप्त कर धर्ममें संलग्न करे, [२] अल्पज्ञ जीवोंकों लालच लगने से धर्म वृधी करेंगे, ऐसे अवसर पे देवादिक की ऋधि की भोगकी, वैक्रयादी शक्ती दीर्घ आयुष्य, निरोगता, अहार वगैरे की वरणन करे. जो विशेष, और निर्दोष, धर्म करते हैं, उनको उत्तमोत्तम सुख मिलते हैं और जो संसारकी काम भोगमें लुब्ध रहते हैं पापरंभ करते है. वो नर्कमें जाके दुःख

* णिचिदुर धाउ सत्तय, तरुदश वेय लिंदिया सु छन्वेवं.
सुराणिरय निग्यिच उरो; चउदश मणुये सु सद सहस्सा

अर्थ—७ लक्ष निस्य निगोद ७ लक्ष इतर निगोद ७ लक्ष पृथवी ७ लक्ष पाणी, ७ अग्नी ७ लक्ष वायु १० लक्ष प्रत्येक वनास्पति २ लक्ष बेंद्री, २ लक्ष तेंद्री २ लक्ष चोरिंद्री, ४ लक्ष नर्क ४ लक्ष देव ४ लक्ष तिर्यच पचेंद्री, १४ लक्ष जात मनुष्य की यह ८४ लक्ष मय जानी है

भोगवने है. क्षेत्र वेदना परमाधामीकी वेदना वगैरे वरणन करे, क्षिणिक सुखके लिये- सागरोपमका दुःख पावे. इत्यादी रीत समजाणें से वो पापको छोड धर्म मार्गमें उद्यमवंत होवे. [३] "न पेम रागो परमत्थी बन्धा" अर्थात जगतमें प्रेमराग (स्नेह फास) जैसा और बन्धन नही है, प्रेम रागरूप फासमें फसे जीव अपना सुख दु.ख, भले बुरेका विचार नहीं करते स्व जन मित्रका पोषण करने अनेक आरंभ करते हैं, परन्तु उनकी स्वार्थता को नहीं पहचानते हैं. देखीये, जब 'कुंकू पत्री' देते हैं. तब कित्ना परिवार भेला होता हैं, ऐसेही संकट पडे तब, स्वजनकी सहायता लेने 'संकट पत्री' देवो तो कित्ने स्वजन आयंगे* अजी! आने तो दूर रहे, परंतु माल खाने वाले हीं कहेगे की क्या लड्डू किये विन नाक जाना था? इत्यादी कह उलटा अपमान करते है, ऐसे मतलबीयों को पोष, पापका भारा अपने सिरले, नर्क तिर्यंचादी गति में किये, कर्म के फल एकलेही

* एक मराठी कवीने कहा है —सपदा बहु आलीयावरी, सोयरे जमा होती त्या-घरी । गरीयास ती रष्ट होउनी, बघु सोयरे जाती सोडूनी

भुक्तते है.† पापका हिस्सा कोइ भी ले नहीं शक्का ह्यांही देखीये, चोर को ही शिक्षा होती हैं- उसके कुटम्ब (माल खाने वाले) को नहीं. ऐसा जाण कर्म वन्ध सें डरे, धर्म करे. सो सुखी होवें. इत्यादी समजने सें उसका मोह कम हो. वो धर्म में संलग्न करे. [४] कुटंब से ममत्व कमी हुयें पीछे-सर्व पुद्गलों पर से ममत्व कमी कराने बोध करे. की-यह जीव अनाद काल से नशेमे बेशुद्ध हो, अपना निज स्वरुप कों भुल, पर पुद्गलों के विषय त्री योग की रमणता कर रहे है, परन्तु यों नहीं विचारते हैं की. 'पराये अपने कब होंगे.' इस संसार व्यवहार में अब्बी जो कोइ एक वक्त दगा देदेवें तो सुज्ञ मनुष्य दूसरी वक्त उसकी छांह में भी खडा नहीं रहता हैं. और इन पुद्ग-

† दो भाइयों के आपसमें बहुत प्रम था- एकके नारु (वाले) का रोग हुवा दुसरेने जमीकंद और हरकाय के औषध किये वो मरके नर्क में नेरीया हुवा औ॰ दुसरे भाइने रोग कष्ट सहा, सो अकाम कष्ट मे परमा धामी देव हुवा; और अपने भाइ के जीव कों मारनें लगा और कहा की तेनें मेरे प्रेममें लूब्ध हो, बहुत जमी कंद का आरम्भ किया उसके फल भोगव नेरीया बोला भाइ मेंने तेरे लियेही पाप किया और तुंही मुजे मरता है यह कैसा अन्याय यम-बोला-हम न्यायान्याय कुछ नहीं समजते है तेरे किये कर्म के फल तुझेही भोगवणे पडेंगे " करता सो भुगता '

लों ने अपने साथ अनंत वक्त दगा किया कभी शुभ संयोग मिल हंसा दिया. तो कभी अशुभ संयोग मिला रोवा दिया कभी नवग्रयवेक तक उंचा चडाया और कभी सातमीं नर्क के तले नीगोद में दवाया. कभी सव के मनको रमणीक बनाया, और कभी भिष्ट रूप वन।, अपने उपर सव को थुकाय. ऐसी २ अनंत विटंवना इन पूद्गलो नें अपनी अनंत वक्त करी हैं ? और भी जहां तक इन की संग नहीं छूटेगा वहां तक पुद्गलों का जो स्वभाव हे की पुद्=पूरे (मिले) और गल=गले (बिछडे). वो कादापि नहीं छोडने के फिर कौन मुर्ख बने की उनकी संगत में लुब्ध हो, अपनी फजीती करावें. ऐसा जान, जो अपनी आत्मा कों सुख चाहवो तो. पुद्गलों का ममत्व त्यागो. और ज्ञान दर्शन चारित्र यह रत्न त्रय हैं. इन्के स्वभावमें कभी बी फरक (फेर) नहीं पडता है, ऐसे स्थिर स्वभावी निजात्म गुण हैं. उनको पहचान, अखंड प्रिती करे! कीं वो अपने रूप चैतन्य को वना, अनंत अक्षय अव्या वाध सुखका भुक्ता वनावे, इस बौद्धसे मोक्ष के तर्फ श्रोताओंका मन खेंचे.

४ निव्वेगणी-अर्थात निर्वृतनी संवेगणी में संसारका यथार्थ स्वरूप दर्शाया. और निव्वेगणी में,

संसारसे निवृत्तनेका स्वरूद दर्शावें. संसारमें रोकने वाले कर्म है. की इस भवके किये, इसही भवमें भोगवे, जैसे हिशा से सूली (फासी) झूटसे अप्रतीत, काराग्रह, चोरीसे कैद, खोडा बेडी, बिभचारसे फजीती व गर्मियादी रोगसे सडके मरना. ममत्वसें कूटम्बादिकके निर्वाहाका महाकष्ट सहना, वगैरे २, और भी जगत्वासी जीव जित्ने कर्म करते है, वे सब सुखके लिये करतें है, परन्तु सुखी बहुतही थोडे दिखते हैं, इससे प्रतक्ष समज होती है की जिस उपाय से सुख होता है वो नहीं जानते हैं, और दुःखका उपाय कर सुख चहाते हैं, सो कहांसे होय; अग्नीसे शीतलता कदापी न मिल सकेगी! तैसे जो धनसे सुख चहाते है. तो धन में सुख कहां है, विचारीये * धन उत्पन्न करते (कमाते) शीत, ताप, क्षूधा, त्रषा, वगैरे, अनेक कष्ट सह संग्रह करते हैं. और ज्यों ज्यों लक्ष्मीकी अधिकता होती है, त्यों त्यो तृष्णाभी अधिक बढती जाती हैं, और "तृष्णायां परमं दुःखं" अर्थात त्रष्णाही

---

*श्लोक– वित मार्जिताना दु ख-मार्जिताना, च रक्षण,
आय दु ख व्यय दु ख किमर्थं दु ख-साधन.
अर्थ—धन कमाते दु ख, कमाये पीछे रक्षण करनेका दु ख,
और चला जाय तो मा-दु ख फिर दुःखका साधन क्यों करते हो?

परम उत्कृष्ट दुःख हैं. अब अंतराय टूटनेसे द्रव्यकी वृ-धीं हुइ तो उसके स्वरक्षण करनेका दुःख, रखे मेरा धन राजा, चोर, अग्नि, पाणी, पृथ्वी, कुटम्ब, देवतादिकसे नष्ट हो जाय, व्यय (खरच) होजाय और रोकडमें एक पाइभी घट जाय तो सेठ जी कों चेन नहीपडे तो फिर पूर्ण नष्ट हुये तो उनके दुःखका कहनाही क्या ? इत्यादी विचार से धन दुःख काही साधन दि-खता हैं. और कित्नेक स्त्री से सुख मानते है, पति-वृता स्त्री तो इस कालमें मिलनी मुशकिल हैं, और कूभारजा तो अनेक दिखती हैं. उत्तम जातीयों मे भी पतीका अपमान करती है पतिके सन्मुख अनाचार कर तीहैं पतीको अपने हुकमसे चलातीहैं और इत्ने परभी पर घरमे भराके पतीके नामको और कुलको बट्टा ल गातीहैं. येही स्त्री से सुख समजतेहो क्या ? औरकित्ने क पुत्र से सुख समजतेहैं, पुत्र के लिये सम्यक्त्व रत्न में भी बट्टा लगा के. कूडेवोंके और ढड, चमारोंके पांव पडते है धर्म भ्रष्ट होते हैं, पुत्र हुनातो भी इस काल-में सपूत निकलना मुशकिल है परन्तु कूपूत बहुत दिखते है, वृध मात पिताकों, वचन और लठी के प्रहार करते हे, घरपे, धनपे, अपनी मुक्त्यारी कर राजमें झगडा कर फजीत करते हैं. पुत्रका सुख भी

दिख रहा है. इत्यादी किस २ का वयान करूं "संसार मी दुरक पउरय" अर्थात संसार दुःख करके प्रती पूर्ण भरा हैं. यह पापके फल वताय. [२] अब देखीये पुण्य फल, जो किसीको दुःख नहीं देतें हैं, वे हमेशा निश्चित आराम करते है, और वक्तपे सव मिल, उनकी सहाय्यता करते है. झूट नहीं वोलते है तो उनकी इज्जत, पंचायती में, तथा राज सभामें करते है, चोरी नहीं करते है वो वडे विश्वासु होते है. भंडारमें जातेभी उन्हे कोइ नहीं अटकाता हैं, ब्रम्हचारी है, उनका तेज, बल, बुद्धि, निरोगता, सर्वाधिक है, ममत्व तृष्ण रहित हैं. वे सदा सुखी है, " संतोषं नंदनं वनं " अर्थात संतोष 'नंदन वन' समान सुखदाता है. देखीये, साधूजी विना धन ही, वडे २ महाराजाके पूज्य हों, निश्चित ज्ञानमें अपनी आत्माको रमण करते, सीधे अन्न वस्त्रसे निर्वाह करते, सदा आनंदमें रहते है, यह सुभ कृत्यका फल इसही भवमें प्रतक्ष दिखता है, [३] किल्नेक कर्म ऐसे है की इस भवमें किये, आगे फलप्राप्त होते है, क्यां किल्नेक जन, पाप कर्म करतेभी सुखी दिखते है, वो सुख उनको पूर्वोपारजित, शुभ कृत्योका फल समजना चाहीये, आगे पापकृतके फल

जरूर भोगवेंगे, यथा द्रष्टांत—अव्वल पक्कान भोगव फिर कांदा (प्याज) भोगवे तो उसे पहले पक्कानकी डकार आयगी, और फिर कांदेकी दूसरा प्रत्यक्ष देखते है. एक पालखीमें बेठा और चार उठाके चलते है. पालखी वाला उतर गादीपे लोटता है. और उठाने वाले पांव दाब (चांप) ते हैं, वो पांचही मनुष्य एक सें होके प्रत्यक्ष पुण्य पापके फल भोगवते हैं, और जो कर्म फिर जाय तो उठाने वाले पालखीमें बैठ जाय. और बैठने वाले पालखी उठाने लग जाय, यह प्रत्यक्ष पाप पुण्यकी विचित्र रचना परभव के इस भवमें भोगवते द्रष्टी आते हैं, [४] ऐसेही कित्नेक ऐसे कर्म है की, इस भवके शुभ कृत्य के फल आगेके जन्ममें भोगवेंगे, जैसे कित्नेक धर्मात्मा ओंको दुःखी देखतें है तब मनमें शंका लाते है की, जो धर्मसे सुख होंता होता तो, यह दुःखी क्यों? परंतु वैस लानेका कुछ कारण नहीं है, प्रत्यक्ष देखीये, अबी कोइ औषध लेते है, वो लेतेही एकदम गुण नहीं कर देती है परन्तु मुद्दतपे, पथ्य पालन से गुण कर्ता होती है. जहां तक पहलेका विकार क्षय नहीं होगा वहां तक पहले औषधीका गुण दर्शना मुशकिल है, तैसेही गत अशुभ कर्मका जोर कमी न होवे, वहांतक धर्म करणीका

फल दर्शना मुशकिल हैं, परंतु इला तो निश्चय सम
ये की, "करणी तणा फल जाणजो, कदीय न निर्
होय" जो जन्मतेही सुखी द्रष्टी आते हैं. वो पूर्वोपा
जित पुण्यकाही फल हैं. ऐसेही ह्यांकी करणीभी अ
गे फल देगी. निर्वेगनी कथाका मुख्य हेतु यह है क
"कड़ाण कम्मा न मोरक अत्थी." अर्थात् कृत कर्म
फल अवश्य मेव भोगवनेही पडते हैं; फिर इस जन
में देवो, या आगे के जन्ममें ऐसा समज कर्म बन्ध
बचने प्रयत्न हमेशा करते रहीये.

वांचना, पूछना, ओर परियट्टणा कर, जो ज्ञा
पक्का किया हैं, उसे इन चारही प्रकारकी धर्म कथ
कर उसका लाभ दूसरे को देना चाहीये.

यह धर्म ध्यानके चार आलम्बन आधार कहे
है, इन चारही काममें धर्म ध्यानी मनको रमण कर
इन्द्रीयोको विकार मार्गसे निवार. आत्म साधन अ-
च्छी तरह कर, इष्टितार्थ सिद्ध कर सक्ते हैं.

चतुर्थ प्रतिशाखा-'धर्मध्यानस्य अनुप्रेक्षा'

सूल धम्मस्सण झाणस्स चत्तारीअणुप्पेहा पन्नता तंज्जहा
अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, एगत्ताणुप्पेहा,
संसाराणुप्पेहा.

अर्थात्-धर्म ध्यानीकी चार अनुप्रेक्षा भगवतने फरमाइ सो कहे हैं, धर्म ध्यान ध्याता महात्मा चार प्रकार अनुप्रेक्षा उयोग युक्त विचार करते हैं. सो १ अनित्यानुप्रेक्षा. २ असरणाणूप्रेक्षा ३ एकत्वानुप्रेक्षा, और ४ संसारानुप्रेक्षा

प्रथम पत्र-"अनित्यानुप्रेक्षा"

धर्मास्ति यादी ✪ षट द्रव्य रूप लोक का, द्रव्य द्रष्टिसे अवलोकन करने से छहो द्रव्य, अपने २ गुण में. व स्वरुपमें. शाश्वत (नित्य) हैं परंतु इन्की पर्याय (अवस्था) स्वभाव विभाव रूप उत्पन्न होती हैं,



नाम	धर्मास्ति	अधर्मास्ति	आकास्ति	कालास्ति	जीवास्ति	पुद्गलास्ति
द्रव्यसे	एक असन्ख्यप्रदेशा	एक असंख्यप्रदशा	एक अनत प्रदशा	अनत असंख्यप्रदेशा	अनत असंख्यप्रदेशा	अनत अनत प्रदेशा
क्षेत्रसे	लाक प्रमाणे	लोक प्रमाण	लोकालोक प्र	अढाइ द्विप प्र	लोक प्रमाण	लोक प्रमाण
कालमे	अनादी अनत	अ अनत	अ. अनत	अ अनत	अ अनत	अ, अनत
भावसे	अरूपी	अरूपी	अरूपी	अरूपी	अरूपी	रूपी
गुणमे	अचतन्य, अक्रिय, गति सहाय	अचेतन्य, अक्रिय, स्थि[illegible] सहाय	[illegible]	[illegible]	[illegible] जीव	सक्रिय पूर्ण गलन [illegible]

और विनाशपाती हैं. इस लिये यह अनित्य हैं. बहुत से संसारी जीवों को. वस्तुके गुण का ज्ञान बिल कुल न होनें से. और पर्याय का पलटा प्रत्यक्ष दिखने सें पर्यायों परही नित्या नित्य की बुद्धी कर- ममत्व भाव कर. राग द्वेष कों प्राप्त होतें हैं. उसइ बुद्धी कों स्थिर करनें ह्यां स्पष्टता से खुल्ला विचार करतें है.

मोह निद्रा ग्रस्त जीवों को जाने, घटिका (घडीयाल) कट २ शब्द कर चेताती हैं. कीं तुम १ वजी. दो वजी. यों क्या कहते हो? जैसे कटने से वस्तु कमी होती है. तैसेही घटि २ (घडि २ घट) कर. सर्व वस्तू का आयुष्य कमी होता है. और सर्वायुष क्षय हुये. वस्तु का नाश हो जाता है. अर्थात् अव्वल के रुप के परमाणुओं विखर (अलग २ सुक्ष्म रुप सें हो) रुपांत्र कों प्राप्त हो, अन्य रुप अन्य स्वभाव कों प्राप्त होतें है. यह अवस्था देख, जीवो विभाव को प्राप्त होतें है. की, वो मेरा असुक मरगया! यह मेरा नहीं हैं! हाय हाय !! यह कैसा हुवा !! तब ज्ञानी चेतातें है की' हे चैतन्य! यह जगत् की दिशा देख चेतो! जैसे तुमारी गत काल की सब घटिका ओं गइ और तुमारे सरीर व संपती का रुपांत्र किया. रम्या को अरम्य और अरम्य कों रम्य बनाया, तैसेही आगे

की रही हुइ घटिका पुर्ण होने से क्षिण मात्र मे सरीर संपती का क्षय हो जायगा! फिर तुम कोट्यान उपाय कर, गइ घटि को बुलावोगे तो वो नही आने *की और पस्तावोंगे तो भी कुछ नही होने का. ऐसा जाण हे हितार्थी ! जो बाकी आयुष्य रहा हैं. उसे व्यर्थ मत गमावों. यह चिंता मणी रत्न तुल्य घटि का, कू कर्म में व्यय (खर्च) मत करों, इस क्षिणक संसार की क्षिणिक स्थिती कों प्राप्त हो रही क्षिण में सुधारा करने का हो सो कर घडी कों लेखे लगावों.

और जो तुम शरीरको नित्य मानते होवो तो यहभी नित्य नहीं है, क्षिण २ में इसके स्वभावमें, रूपादी गुणोंमें फरक पडता हुवा परोक्ष और प्रत्यक्ष भाष होता है, देखीये, अव्वल जब जीव मनुष्य पर्याय रूप गर्भमे आ उत्पन्न होता है. तब माताका रुद्र; और पिता का शुक्रका, अहार कर मांड (चांवलोके धोवण) जैसा सरीरको प्राप्त होता हे. फिर काल

* गाथा—जाजा वच्चइ रयणी, नसा पडि नियत्तइ,
अहम्म कुण माणस्स, अफला जाति राइ उ

अर्थ—जो जो दिन रात्री जाते है, वो पीछे नहीं आते हैं, अधर्मीके निष्फल जाते हे और इसके आगेकी गाथामें कहा है, धर्मीके दिन रात सफल जाते हे

स्वभावसे फरक पडते २ उन पुद्गलोंमे काठिणता प्राप्त होते २ सेडा (नाकका मैल) चोर, अन्वा, रूप वन, अंगोपांग के अंकूर फूट इन्द्रियों क छिद्र पड, वाला दीका आगम हो, संपुर्ण सरीरके अव्यववों कों प्राप्त होता है, जन्म समय पून्योंदयसें सीधाही बाहिर पड,† अज्ञान अस्मर्थ अवस्थाके पराधीनता के अनेक कष्ट सहे, ज्ञानावस्थामें, विद्याभ्यासमें; तरुणपणा प्राप्त होतें विपय पोपणकी समग्रीयों का संयोग मिलानें, तरुणीयों के प्यारे बनने, कुटंबके भरण पोषण करने, वृधावस्था प्राप्त होतें, काया नगर की खरावी होने लगी, शिर थर्राराया, कर्ण कम सुने, चक्षुका तेज घटा, घ्राण झरने लगा. दंतावली नष्ट होनेसे मुख उजाड हुवा, जिभ्या लथडाने लगी, स्वर मंद पडा, जठराग्नी मंद होनेसे, पचन शक्ती घटी, जिससे अनेक व्याधीयों उठने लगी, कम्मर झुकी, गोडे थके, पांव धूजने लगे, इत्यादी सरीर की शक्ती हीन निकम्मी होतें. जिनको प्यारे लगतेथें उनको ही खार (खराव) लगने लगे और एक दिन सर्वायुष्य क्षय होने से सब सज्जन मिलके उनें ही सरिर कों चितामें जला

† कित्नेक गर्भ में आड आके कटके निकलते हैं.

भस्म करदीया, यह इस सरीरकी दिशा क्षिण २ में पलटती हुइ दिखती है. यह सरीर नित्य (सदा) अभीनव रूप धारण कर्ता है, समय २ में पलटता है, बालवस्थाको तरुणपण गिलता है, तरुण पणेको वृधपणा और वृधपणेका काल भक्षण कर जाता है, यह मच्छ गलागल लगी है. परन्तु ऐसा नहीं समजीये की बालका तरुण और तरुणका वृध, जरूर होगा. यह भरोसा नहीं है. कालको बाल युवा वृध का कुछभी विचार नहीं है. कालरूप घटीको तो हमेशा चन्द्र सूर्य फिरा रहें है, जैसे घटीके दो पट होते है, तैसे कालरूप घटीका, भूत कालरूप तो स्थिर पट है, और भविष्य कालरूप चल पट है, अयुष्य रूप खीले से अडके जो रहे है, वो वचे हैं, 'खूंटा छुटा के आटा हुवा', अपने देखते बहुतेका हो गया, और बाकी रहे उनका भी एक दिन होनेवाला, ऐसी इस सरीर की दिशा देखते जो इस सरीरको नित्य जाण. मोह

* छपय–मनुष्य तणो, अवतार वर्ष चाली सें मीठो. कडवो होय पचास साठे क्रोध पइठो मिन्तर सगो न कोय अस्सीये नांही सगाइ नव्वे नगो होय हसे सर्व लोक लुगाइ वर्ष आया जव सेकडा तन हुवा सर खोंकरा पतिवृता पावे कों कहे अब मरे न छूटे डोकरा १

मे गर्क हो रहे है, यह वडा आश्चर्य है.

इस सरीरका नाम उदारिक है. इसके दो अर्थ करते हैं. (१) उदार, प्रधान, और (२) उदारा मांगके लिया, जैसे पंचायती जगा, क्रिया वर करने के लिये, पंचोंसे मांगके थोडे कालके लिये उदारी लेते हैं, और उसे सिणगार के उस्मे जो क्रियावर करनेका है वो कर लेते है, तो उनको वो जगा छोडती वक्त पश्चाताप नहीं होता है, और जो क्रियावर हुये पहले मुद्दत पूरी हुये, पंचोके सिपाइ मकान खाली करते है. तब रोना पडता है की, कुछ नहीं किया, ऐसेही यह सरीर (पंच भूत वादी के कथनानुसार) पृथव्यादी पंच भूतोका बना हुवा सरीर रूप बाडा क्रियावर (अच्छी क्रिया धर्म करणी) करने कों मिला. जो धर्म करणी कर लेते हैं, उनको मरती वक्त पश्चाताप नहीं होता है. और करणी नहीं करी है, उनके सरीर को काल छोडावेगा, तब पश्चाताप साथ छोडना पडेगा. ऐसा जाण इस क्षिण भंगूर सरीरसे. धर्म करणी बने

† पिता ने खुशी में आके पुत्रीसे कहा की लक्ष्मी इधर आ तब पुत्री गुस्सेमें कहने लगी पिता श्री इसनामसे मुजे कदापी न बुलाइये में लक्ष्मी जैसी नीच नही हुवी एक निदमें अनेक मालक (पती)बनाव्.

जित्नी शिघ्र करलीजीये, की इसे छोडती वक्त पश्चाताप नहीं करना पडे.

जैसी सरीरकी अनित्यता है, वैसींही कुटंबकी भी समजीये, क्यों कि मात पितादी स्वजन भी, उदारिकही सरीरके धरण हार हैं, अपने पहले आये, माता, पिता, काका, मामा, वगैरे, अपने बरोबर आये, भाइ, बेन, स्त्री, मित्र, वगैरें अपने पीछे आये, पुत्र, पौत्रादिक और भी जक्त वासी जन, देखते २ आयू खुटे चल गये हैं, चल रहे हैं, और रहे सो एक दिन सब चले जायेंगे, "जो जन्मा है, सो अवस्य मरेगा" इस लिये कूटंब परिवार को भी अनित्य समजींये.

जैसा कुटम्ब अनित्य है, तैसे धनभी अनित्य है, इसे 'दोलत' कहते हैं, अर्थात आना और जाना ऐसी दो लत (आदत) इसमें हैं, तथा पोशकको क्षिण में हसाना और क्षिणमें रूलाना ऐसी दो आदतें हैं यह किसीके पास स्थिर नहीं रहती है‡ "जर जोरु और जमीन, किनकी न हुइ यह तीन" जरमनि तीजोरीयोंमें, खूब उंडे खड्डेमें या नग्गी समशेरोके पहेरेंमेंभी, खूब चंदो-

‡ पृथवी की हड्डी आदी पाणी का रक्त मुना दी-अग्नी का अठाराग्नीयादी वायूका श्वासोश्वास और आकास रुप पोलार एपच भूत

वस्तके साथ रक्खी, तोभी नहीं रहनेकी, पुण्य खूटेसें हाथसे रक्खा हुवा धन रूपांत्र पाके कंकर कोयले पाणी या सॉप, बिच्छू जैसा दिखने लगता है, ऐसी लक्ष्मी अनित्य है.

तैसे घर भी अनित्य लक्कड मट्टी के संयोगसे बना उसे अपना मानके वैठे है, येही जीर्ण होनेसे बिखर जायगा, केइ घर या ग्रामादी नवीन वसते है. केइ उजड होते हैं, विनश ते हैं, यह प्रतक्ष अनित्यता दिखती है. ऐसेही उपभोग, (एक वक्त भोगवने मे आवे अन्न-पुष्पादी) ओर परिभोग (वारंवार भोगवने मे आवे वस्त्र भुषणादी) यह भी अनित्य हैं, क्षिणिक है. सर्व वस्तु उत्पन्न हुइ के उनकी पर्यायमें फरक पडना सुरू होता है, विनाश कालतक फरक पडते २ उसका स्वरुप ही और हो जाता है. यह अनित्यता की प्रतक्षता है.

प्रतक्ष देखते है की, जीव आता है, तब वह्य रूपमें कुछभी साथ लेके नहीं आता है, उत्पन्न हुये पीछेही सरीर संपत्ती आदी संजोग मिलता है, और फिर वोभी 'पंच समवाय*' प्रमाणे हीन होते२, सव

* काल—स्वभाव-भव्यतव्य—कर्म—और उद्यम, इन ५ समवाय के सयोगसें सर्व कार्य होते हैं.

ह्यांहीज प्रलय पाता है, चा रह जाता है, और आप आया था वैसाही, इकेला जीव आगेको चला जाता है, ऐसा तमाशा एकही वक्तमें पूरा नहीं होता हैं; परन्तु अनंत काल से येही रीत चली आती है, और चली जायगा, मिलना और विछडना, येही पुद्गलोंका धर्म हैं, सोही बना रहगा! अच्छा का बुरा और बुरा का अच्छा; नवा का ज्यूंना और ज्यूंनाका नवा, कोइ, प्रतक्षतासे और कोइ परोक्षता (छुपी रीत) सें, पुद्गलोंका रूपांत्र होनेका जो स्वभाव है, वो होयाही, करता है, यह तमाशा देखते हुयेभी इसे नित्य मान लुब्ध हो रहे है, इससे ज्यादा अश्चर्य और कोनसा होय?

मुढ प्राणी का आयुष्य ज्यों ज्यों हीन स्थिती, कों प्राप्त-होता है, त्यो त्यो ममत्व और पापकी बृद्धी करता हैं, और उनके फल भुक्तने आपभी रूपांत्र पा के रौरव नर्कमे गिरता है तब असाह्य दुःखसे घबरा, कर रोता है.

भाइ! अग्नी ज्ञानसे शीतलता, और विष भक्षणसे अमरत्व चहाते हैं, तैसेही आत्म घाती, जन पुद्गल के संगसें सुख चहाते है इन अज्ञको कैसे समजावे

औरभी अनित्यताके दर्शाने लिये देखीये (१) हमेशा श्यामको वृक्षोंपे पक्षीयोंका समोह आ जमता है, जिस डालपे आप बैठे. वहां दूसरे पक्षीको बेठने नहीं देते है, क्यों कि उस वृक्षको अपना मान लिया है. परन्तु वोही पक्षीयों सूर्यका प्रकाश होते दिशो-दिश उड जाते है, तब उस झाडका पत्ताभी उन्हके साथ नहीं जाता हैं. तैसे ही देह वृक्षपे जीव पक्षीयों च्यार गतियों में से आबैठे है. कालरूप सुर्योदय होते सब जायंगे, देह छांड रह जायगा.

(२) वादीगर (ईन्द्र जालीया) की डुमडुमीका शब्द सुणतेही चहुदिशासें मनुष्य वृंद उलट आते हैं, बाजी समेटी के सब दिशोदिश भग जाते है. और इकेला बाजीगर दंड भंड ले आपने रस्ते लगता हैं. तैसेही जीव वाजीगरकी, पुन्य सामग्री देखने कुटम्बादी मिले है. पुण्य खुटे सब रस्ते लगेंगे, और जीव इकेला चला जायगा.

(३) मेल-यात्रा दी में चौदिशा से मनुष्यों का समागम होता हैं वांही समयानंतर, सुन्य अरण्य (जंगल) रह जाता है.

(४) लग्नादी उत्सवके प्रसंगमें, स्वजानादी स मोह जमता है; और उत्सव निवृतते पर धणीही रह

जाते हैं.

(५) संध्या [श्याम] की वक्त वहुदा आकाशमें संध्याराग [विचित्र रंग] का दर्शाव होता हैं, और क्षिणंत्रमें अन्धकार फेलजाता है.

इत्यादी अनित्यता दर्शानेके अनेक वनाव हमेशा वनते हैं. और देखते है, परं मोहकी धुन्धी मे मुग्ध वने, कौन विचार करें!!

एक समय राज्यारूढ महोत्सव की धामधूम लपका उत्सहा द्रष्टी पडता है; और उसी स्थल उसही समय, पुद्गलोंका रूपांतर होनेसे मृत्युआदी निपजनेसे हाहाकार मच जाता है स्मशान गमनकी तैयारी होती क्यों, क्या नहीं देखते हैं? ऐसे २ अनित्यता बतानेके जक्त में थोडें साधन हैं क्या?

ज्यादा क्या कहूं, जिन २ प्रमाणुंओ पदार्थों कर तेरे सरीरकी रचना हुइ, और पोषणता होती हैं, वेही प्रमाणुं गये कालमें तेरे शत्रु वन तेरे धारण किये हुये अनंत सरीरोंका नाश किया था, की उनके साथ तूं अत्यंत प्रेम करता है. और वक्त पडे, येही तेरे सरीरके घातक वन जायेंगे मतलवकी पुद्गल संयोगसेही सम्वन्ध जुडता हैं. और संयोगसेही विखरता है.

श्री भगवतीजी सूत्रमे 'अविचय' मरण कहा

है, की जो जगत्के सर्व पदार्थका आयुष्य क्षिण २ मे क्षय करता हैं, जैसे अंजली [हाथके खोबे] में लिया हुवा पाणी बुंद २ कर कमी होता है, तैसेही सब पदार्थोंका आयुष्य घटता है.

औरभी जैसे १. स्वप्नकी सायबी, २. मेघ पटलों (बादलों) का समोह, ३. विद्युत (विजली) का चमत्कार, ४. इन्द्र धनुष्य, ५. मायवी सायबी, वगैरे अनेक पदार्थ क्षिणिकताके सूचक है. उनको आँखोसे देख. हृदयमें विचार सौंच समज मानू ये मेरे सब्दोध कर्ता गुरूही हैं. और समजा रहे हैं, की हे चैतन्य अब चेत ! चेत !! मोह धुन्धी उडा, अज्ञानका पडदा दूर कर, और अंतःरिक ज्ञान लक्ष लगाके देखकी कपिल केवली ने फरमाया है "अधुव असासयं मी, संसारंमी दूरक पउरए" अर्थात् यह अध्रुव (अनिश्चल) अशाश्वत और दुःखसे पूर्ण भरा हुवा संसार हैं, इसमें रहे जो ममत्व मुरछा करते हैं, वोही दुःखी होते हैं,

---

हरीगीत —बहु पुण्य केरा पुंज्य थी शुभदेह मानव नो मल्यो तो ए अरे भव चक्र नो आंटो नहीं एके टल्यो सुख प्राप्त करतां सुख टळेछे, नेक एलक्ष लहो, "क्षिण २ निरज भाव मरणें" का अहो राची रहो

कवी रायचन्द्र

जब जीवोके देखते पदार्थोंका नाश होता है, तो जीवकोही पश्चाताप होता है, की हाय मेरे प्राण प्यारी वस्तु कहां गइ. और पदार्थ छोडके जीव जाता है, तबही वोही रोता है, की हाय इस सायबी को छोड अब में चला न की वो पदार्थ रोयंगे की मेरे मालक कहां गये. क्यों कि उनके मालक बणने वाले अनेक बैठे है

ऐसा समज है सुखार्थी धर्मार्थी जीवो! इस अनित्यानुप्रेक्षा के सत्य विचार सें अनित्य अशाश्वत वस्तुयें सें ममत्व त्याग, निजात्म गुण ज्ञानादी की रज़ नित्य शाश्वत, अक्षय अनंत उनमें रमण कर सुखी बनो.

द्वितीय पत्र—"असरणाणु प्रेक्षा"

स्याद्वाद मतसे हरेक तर्फ अनेकांत द्रष्टीसें देखा जाताहै, निश्चयसें तो कोइ किसीको सरण का दाता आश्रम का देनें वाला नहीं है क्योंकि सर्व द्रव्य अपनी२ शक्ती के बलसे ही टिक रह है, इस सबबसें कोइ किसीका कर्ता हर्ता नहीं हे, व्यवहार द्रष्टीसें फक्त निमित मात्र यह जीव दु.ख, कष्ट उत्पन्न हुये, अन्यके सरण

की अभीलाषा करते हैं; मेरी वस्तुका नुकशान न होय या मेरेपर किसी प्रकार का दुःख आके नहीपडे, इस लिय कोइ तारण–सरण आश्रय कादाता होय उनका सरण ग्रहण करु, कीजिससे मुजे किसी प्रकारकादुःख नही होय इत्यादी विचार सें अन्यन्य अनेक का सरण ग्रहण करता है, परन्तु यों नहीं विचारता है की जिस दुःख से बचने मे आश्रय सरण ग्रहन करता हुं, वो खुदही इस दुख से बचे हैं क्या? क्यों कि जो आप दुःखसे बचे होंगे, तो दुसेरकोभी बचा सकेंगे, और जो आपही की रक्षा नहीं कर सके तो, अन्यकी क्या करेंगे फिर व्यर्थ उनके सरण ग्रहण करनेमें क्या सार है, अब विचारिये अपन जिन २ का सरण ग्रहण करते हैं. वो योग्य है या अयोग्य, ऐसा प्रथक २ (अलग २) विचारीये.

हे जीव! तूं इस सरीर करके तेरा रक्षण चहाता हैं, तो देख! यह सरीर पुद्गल पिंड क्षिण २ में नष्ट होता है. आधी व्याधी उपाधी कर भरा हुवा है. वारम्वार रोगों कर ग्रासित जरा कर पिडित, और मृत्यूका भक्षक बनता है. यह अपनी रक्षा नहीं कर सक्ता है, तो तेरी क्या करेगा. इस लिये सरीर को तरण सरण मानना व्यर्थ है, जो तूं तेरे परिवार और

मित्रको सरण दाता समजता होय तो भी तेरी भूल हैं निर्मोह बुद्धीसें देख. जो तूं द्रव्योपारजनमें कुशल सबकी इच्छा प्रमाणें चलनें वाला हूवा तो माता पिता कहेंगे. हमारा पुत्र रत्न हैं, भाइ कहेंगा मेरी वाहा है, बेहन कहेगी मेरा वीरा हीरा है, स्त्री कहेंगी मेरे भरतार करतार (परमेश्वर) है. इत्यादी सर्व कुटम्ब हुकम हाजीर रहे, जी! जी! करतें हैं. और जो मूर्ख बेकमावू होय तो; मात पित कहे पेटमें पत्थर पडा होता तो नीम (मकान के पाये) में देने काम आता, भाइ कहे मेरा वैरी है. बेहन कहेकिरका भाइ लाइ (गरीब) स्त्री कहे मौल्या (मोल लिया गुलाम है) इत्यादी सब स्वजनों की तर्फसें अपमान और दुःख प्राप्त होता है, स्वार्थ लुब्ध मातानें ब्रम्हदत्त चक्रवृत कों मारनेका उपाय किया, कन्क रथ राजा जन्मतें पुत्रों. कों मारें, भृत बाहुबली दोनो भाइ आपसमें लडे. कोणिक कुमरने अपने पिता श्रेणिक राजाको पिंजरेमें कब्ज किया, दुर्योधननें सब कूटम्बका संहार किया. और सूरी कंता राणीनें प्यारे पति प्रदेशी राजाके प्राण हरण कर लिये ऐसे २ प्राचीन अनेक दाखले है. और वृतमान में बणाव बण रहे हैं. ऐसे मतलबी जन सरण भूत कदापि न होने वाले.

सरीर, धन, कुटम्ब इत्यादी जिनको प्राणसे भी अधिक प्यारे समज रहा है, चिंतामणी तुल्य मनुष्य जन्म जिसके लिये गमा रहा है. वो भी तारण सरण न होवे तो, अन्यकी क्या कहना. मतलबकी त्रिकाल काल बेतालकी फांस में फसे हुये उस फास सें बचा-ने कोइ समर्थ नहीं है, कालबली वडा जबर है, नरेंद्र चक्रवृती यादी राजा, सुरेंद्र शक्रेंदादी देव. वडे २ ब-लिष्ट दैत्य जैसे शस्त्रधारी क्षत्रीयों, वेद पाठी ब्राम्हणो श्रीमंत साहुकारों जमीदार जागीरदारों, सहश्र विद्या के साधक विद्याधरों (खेचरो) सिंहादिक वनचरों, सर्पादी उरचरों घर वस्त्र, भुषण, इत्यादी सर्व पदार्थों के पीछे काल बेताल लगा है, कालसे ज्यादा बलिष्ट इस संसारमें कोइ भी नहीं हैं, कालसे बचानें जैसी कोइ घर, भूंवारा, गुफा पहाडादी कोइ स्थान नहीं. की जहां छिप जाय, अमृत और अमर वेल, वगैरे ना मधारी बूटी औषधीये, भी काल रोग मिटाने समर्थ नहीं, तो अन्यका क्या ? रोहणी प्रज्ञासी यादी विद्या, घंटा करणादी मंत्र, विजय प्रतापादी यंत्र, रस सिद्ध यादी तंत्र, सें भी कालसे बचाने की शक्ती नहीं, स-रघनी यादी कोई शस्त्रभी नहीं, जिससे कालको डरावे बन्धु गणो ! काल अजब शक्ती वाला है, पाणीमे गल

ता नहीं, अग्नीमें जलता नहीं, हवामें उडता नहीं, वज्रमय भींतसे भी रुकता नहीं, यम जैसे प्राक्रमीसे ही दबना-डरता नहीं है, काल बडावे विचार है, बाल, वृध, तरुण, नव प्रणेत, धनाढ्य, गरीब, सुखी, दुःखी अनेको के पालने वाले और अनेकोके संहारने वाले ऐसे २ मनुष्योंको, पशुवोंको, दिपवाली यादी तेंहवारोंको उंच नीच ग्रहका, काम पूरा नहीं हुवा, उनका, रात्री दिन भोगमें मशगुल उनका,, इत्यादी किसीका भी जरा विचार नहीं है, कैसा ही हो झपाटेमें आयाही चाहीये, की तुर्त गट काया, अनंत प्राणीयोका अनंत वस्तूओंका भक्षण अनंत वक्त किया, तोभी कालका पेट नहीं भराया, साक्षात् अग्नी सेंभी अधिक सदा अवती महा विक्राल राक्ससही हैं, महा प्रतापी है, वडे २ सुरेन्द्र, नरेंद्र, इसकी द्रष्टी मात्र से अत्यंत त्रास पाते है. भान भूल जाते हैं, आर्त, रौद्र, ध्यान ध्याने लगते है, उनका भी मुलायजा कालको नहीं हैं यह तो फक्त अपने मतलब साधनेंकी तर्फही द्रष्टी रखता है. ऐसे निर्दयी निर्लज्ज, काल वेतालके फास में पडे जीव जो अन्यके सरण से सुख चहाते है, वो मृगजल से प्यास बुंजाना चहाते हैं, वाझा का पुत्र खिलाना चहाते हैं, या आकाश पुष्पोंसे शृंगार

ना चहाते हैं, तैसा निष्फल काम हैं.*

इस काल की रचनाका तो जरा विचार करो, यह काल हरेक वस्तुका एक वक्त अहार कर, पीछा तुर्त निहार कर देता है, और तुर्त पीछा उसके भक्षणेका लोलपी हो, उसके पीछ पडता हैं. सो दूसरी वक्त उसका पूरा भक्षण नहीं करें, वहां तक उसका क्षिण २ में क्षय करताही रहता है, और अचिंत्य खा जाता है, और पीछे वोके वोही हाल, ऐसे अहार निहार करते २ अनंतानंत समयवीत गया, तो भी यह त्रप्त न हुवा और न होगा.

अपने स्वजनका मृत्यू देख, मूर्ख फिकर करता हैं. परन्तु यों नही समजता है की. मभी काल की दाढ में बेठा हूं. जराक मस्का लगने की देर हैं. की इस जैसे हाल मेरे भी होंगे!!

काल के विचार मात्र सेंही, बडे इन्द्र नरेन्द्र निजस्थान चुत हो नीचे पडतें हैं. तो बेचारे मनुष्य जैसे कीडे की क्या कथा.

---

* गाथ,—जस्सत्थी मच्चूणं सख, जस्सत्थि पलाइण,
जो जाणे न मरीसामी, सोह करवे सुहेसय
उत्तराध्येयन,

अर्थ—जिनकी कालसे प्रीती होय, मग जाणकी शक्ती होय, अथवा भरोसा होय के मै नहीं मरुगा, वोही सुखसें सूता रहे

एक मनुष्य वन में सूना था, की वहां रात्री कों अचिंत्य दावा नल (आग) लगी, और उस मनुष्य कों घेर लिया. उश्नता लगते वो तुर्त जागृत हो, एक वृक्षपे चड बेठा, और चारही तर्फ जंगली जानवरों कों जलते देख, हँस ने लगा. की यह जला. यह मरा! परंतु मुढ यों नहीं समजता है की. यह वृक्ष जाला की मेरीभी येही दिशा होगी. अर्थात-जैसे जगत जीव मरते हे वेसेही एक दिन अपन भी मरेंगे! इसमे संशयही नहीं॥

बाप, दादे, गये वोभी इस धन, कुटम्ब. कर अपना रक्षण नहीं कर सके, तो तुम को न समर्थ वली बच सकोगे.

निश्चय समजीये. सब सज्जन मुह ताकतेही खडे रहेंगे सब संपती* निजस्थान हीं पडी रहेगी, और चित मुनी के कहे मुजब, एक दिन सब की दिशा होगी.

---

* स्वैया—कंचनके आसन, सुखनासन कचनके पलग शार इनामत भर रहे शाथी हट शालनमें, घोड घुरशा नयें, कपड जमा दानीमें घडी बंध ही रह. बेटा और बडी दोलतका पार नई. जरागोंक डब्बपे ताले भी जडे रह, देह छाड दिगे जब हो चले दिगम्बर, कुलके कुटम्ब सब गेवेही खड रहें.

जहेह सिहो व भिय गहाय, मच्चु नरं नेइहू अंत काले-
न तस्स माया व पियाव भाया, कालंमि तस्स सहरा भवंति११
उतरा० १३

अर्थात्—जैसे बनमें फिरते हुये मृग (हिरण) के जुत्थ मे सें. सिंह (शेहर) एक मृग कों पकड के ले जाता है, तब सब हिरणे थर्र २ कांपते, अपनी २ जान बचाते भग जाते हैं. तैसे ही कुटंबो के वृंद में, रहे हुये मनुष्य को, काल सिंह ले जायगा. तब सब मुह ताकते ही खडे रहेंगे. परं कोइ भी बचा नहीं सकेगा.

तैसेही आगे कों तुम्हरी सहाय करने तुम्हरी संपती में सें कुछ भी साथ न आवेगा. कहा हैं—

श्लोक — धनश्च भौमो पशु वाश्च गोष्टी, कान्ता घर द्वार जनस्य मशाण देह श्चैता यां परलोक मार्गे, कर्माणगो गच्छाति जीव एका.

अर्थात्, धन, जमीन, पशु, घर संपती, यह सब निजस्थान रह जायगी, कान्ता प्रिय पत्नी. वो दारा कहते है, वो दरवाजे तक आयगी, और कुटम्ब परिवार सब स्मशाण तक (देह) को पहोंचा ने आयंगे, यह सरीर चितामे जल जायगा. आगे, अपने किये हुये शुभाशुभ कर्मोकों साथ ले चैतन्य इकेला जायगा.

एसा निश्चय कर, हे सुखार्थी जनो, इस दुर्ल-भ मनुष्य जन्मादी समग्री को अन्यके सरण के लालच में पड मत गमाओ निश्चय करो की,, इस जगतका कोइ भी पदार्थ मेरा रक्षक नहीं हैं; सब भक्षक है, एसा जान उनपेसे ममत्व त्याग —तरण तारण, दुःख निवारण, निराधार के आधार गरीबनिवाज, महा कृपालु, करूणा सागर, अनंत दुःखा से उधार के कर्ता त्रिकाल काल व्याल के दुःख के हरता. अनंत अक्ष अजर अमर अविन्याशी अतुल्य सुख रुप मोक्ष स्थानके दाता व्यवहारमे तो श्री अर्हंत सिद्ध आचार्य उपध्या और साधू यह पंच प्रमेष्टी हैं और निश्चय से अपने आत्मा गुण ज्ञानादी त्री रत्न की शुद्धता हैं जिनका अश्रय सरण ग्रहण कर हे, अजरामर आत्मा परमानंदी परम सुखी बन!!

तृतीय पत्र-"एकत्वानुप्रेक्षा"

जैसे सुवर्णका और मट्टीका अनादी सम्बन्ध होनेसें दोनो एकही रुपमे दिखते हे अर्थात् सुवर्णभी लाल मट्टि जेसा दिखता हैं परन्तु हे दोनो अलग २, जो दोनो एकही होय तो मट्टी मेंसे सुवर्ण जुदा निकले नही.

परन्तु अनादी सम्बधंसे एक रुप दिखते हैं' जैस सु-वर्ण से मट्टी को अलग कर निजरुप में प्राप्त करनेके वास्ते सुवर्णकार, मूश, अग्नी, सोहागीक्षार, और द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव, की अनुकुलता, इत्यादी योग्य मि. लनेसे सुवर्ण मट्टीसे अलग हो निजरूपको प्राप्त होता है, तैसेही जीव कर्मका अनादी सन्वन्ध तोडाने-छोडाने चार वस्तुकी आवश्यकता है.

१ 'ज्ञान' रूप सुवर्णकार ज्यों सुवर्णकार मट्टी से सुवर्ण निकालने का जाण होता है, और यथा वि धी कर्म कर कार्य साधता है. तैसेही जीव ज्ञान कर कर्मसे अलग होनेकी विधीका जाण होता है. कृतव्य प्रायण होणेकी शक्ती आती है. २ 'दर्शन' श्रधा रूप मूश, क्यों कि श्रधाही सद्गुणोंके रहने का स्थान हैं, ३ 'चारित्र' संयम रूप 'क्षार' क्योंकि चारित्रही कर्म मेलको फाडनेवाला है और ४ 'तप' रूप अग्नी. क्यों कि तपही कर्म मेल जलाने समर्थ है, यह चारही प-दार्थोंका योग मिले उदारिक सरीर रूप द्रव्य आर्य क्षेत्र, चतुर्थ आरादी काल, और भव्यात्म भाव का संयोग मिले यथा विधी साधन करनेसे अनादी कर्म

दुहा—मुशी पावक सोहगी, फुक्यातणो उपाय,
रामचरण च रू मिल्यां, मेल कन्कका जाय १

रूप मेलको दूरकर चैतन्य निजात्म रूपको प्राप्त होता है.

ऐसेही दूध में घी मिला होता है, और उसे निकालने खटाइ, रवाइ, भाजन, मथक (मथन करने वाला) का संयोग होनेसे छाछ रूप मेलको छोड घृत अपने रूपको प्राप्त होता है, तैसेही अतर और पुष्प लोह और चमक, वगैरे अनेक द्रष्टांत कर जीवका औ र कर्मका अनादी सम्बन्ध समजना और सुवर्ण की तरह इन पदार्थोंको अनादी सम्बन्ध छुडाके, निजरूप में प्राप्त करनेके, अनेक उपाय समजनें. तैसेही जीव कोभी अनादी कर्म सम्बन्धसे छुडाके, निजरूपमें प्राप्त, करने के, वरोक्त ज्ञानादी चार साहित्योंका संयोग अक्षीर (पुक्त भकम) उपाय हैं

बडा विद्वान और सदा शुची पवित्र रहने वाला वारुणी (मदिरा) के नशे मे गर्क हो, अशुची से भरे उकरडेपे लोटनेमे गादीपे लोटने जैसा मजा मानने लगताहै. और गटरोकी हवाको वगीचेकी सहल समजने लगता है, उसे अशुचीसे निवृतनेके बोधकको मूर्ख जाण गाली प्रदान करने लगता है वोही जीव नशेसे निवृते बाद, अपनी कू दिशा देख, शरमाने लगता है, और किसीके विना कहेही उकरडेको त्याग, (छोड) चला जाता है ऐसेही जीव रूप पवित्र पुरुष, मोह

मद रूप मंदिराके नाशमें छक हो. कर्म रूप उकरडा भोग (विषय) रूप अशुचीसे भरे हुयेपे लोटता हुया आनंद मानता है, और विषय विरक्त सब्दोधकको मूर्ख जान, उनके उपदेशका अनादर करता है, और वोही जीव सत्संगतादी प्रसंगसे मोह नशा उतरनेसे शुद्धी में आ, अज्ञा दिशामें कृत कर्मका पश्चाताप कर, तुर्त विषय विरक्त हो एकी भाव को अङ्गीकार करता हैं.

जैसे बचपनसे बकरीयोंमे उछरा हुवा सिंहका बच्चा, अपनी जाती कों भूल, अपन को बकराही मान रहाथा. और वनमें सचे सिंहके दर्शन और सद्बोधसें बकरीयों का सङ्ग छोड. स्वच्छारी एकला हुवा, ऐसेही जीव अनादी कर्म सम्बन्ध सें अपना निज स्वरूप भूल कर्म जनित पदार्थ सरीर संपत्ती आदीको अपनी समज रहा है, जब सद्गुरु के सद्बोध का सम्बन्ध सें अपना आत्म भान प्राप्त हुवा, तब जानने लगा की, मै चैतन्य, आधी व्याधी, उपाधी, करके रहित हूं, यह सरीर, संपत्ती, तीनही दुःखोसें व्याप्त हैं, मै निराकार हूं, यह साकार हैं, मै शुद्ध शुची हुं. यह अशुची अशुद्ध है, मै अजरा मर हूं. यह क्षणिक विन्याशी है. मै अनन्त ज्ञानादी गुण युक्त चैतन्य हूं. यह जड है. इत्यादी किसी भी प्रकारसे इनका मेरा सम्बन्ध नहीं

मिले, इनके प्रसंग कर मैने ४ गत २४ दंडक ८४लक्ष जीवा योनीमें, उच्च नीच जाती स्थानमें, अनत विटंवना भुक्ती है. अब इनका संङ्ग छोड मुजे एकत्वता धारण करनी योग्य हैं. ऐसे विचार से सर्व सम्बन्ध परित्याग कर, वितराग दिशाको अवलम्बे.

जैसे वद्दलो के फटनें सें, सूर्य स्व प्रकाश को प्राप्त होता है, तैसेही कर्म पडुल दूर होनें सें आत्म के निजगुण ज्ञानादी प्रका सित होतें हैं, और चैतन्य अपना स्वरुप पहचानता हैं.

एक त्वानु प्रेक्षक, विचार करे की, में कौन हूं. एक हूं या अनेक हूं, दीखने रुपतो एकही सरीर का धारक हूं परन्तु जो एक मानू तो. मातपिता कहे मेरा पुत्र, क्या मे पुत्र हू? वेहन कहे मेरा भाइ. तो क्या में भाइ हू? स्त्री कहे भरतार तो क्या में भरतार हूं? पुत्र पुत्री कहे पिता तो क्या में पिता हूं, यों कोइ काका, कोइ वावा, कोइ मामा माशा, व्याइ, जमाइ ऐसे २ सब मेरा २ कर मुजे वोलाते है, अब विचार होता हैं कि में कोन हू, और किसका हू, हा,! अश्चर्य, मेरा पत्ता लगना हीं, मुजे मुशकिल हुवा में एक हो कित्ने नाम धारी कित्ने का हुवा, परतु जो निश्चयात्मक हो विचारता हूं तो, यह सब कर्मोके चाले, हैं,

में न पुत्र हूं, नपिता हूं, न कोइ अन्य हूं. न मेरा कोइ हैं, और न मैं किसीका हूं. जो में इन नाम रुप होता तो. सदा इसही रुप में बन रहता, जो में पुरुष हूं? ऐसा निश्चय करूंतो. अन्य जन्म में स्त्री हो पुरुष संभोगकी क्यों इच्छा करी. और जो स्त्री हूं ऐसा निश्चय करूंतो अन्यज में पुरुष हो स्त्री भोग को क्यों चाहू. इत्यादी विचार सें यह सब मिथ्या भाव विदित होता हैं, में मोह नशामें बेशुद्ध हो, कर्म संयोग से विकल हो. भूल राह हूं, जैसे नाटकिया नाटक शाळामें स्त्री पुरुषा दी नाना रुप धर नाचता हैं. जैसा रुप बनाता है वैसही भाव हूवाहू भजता हैं, परन्तु जो अंतर द्रष्टी, सें,देखतो, वोनट वैसा नही है, राजा नहीं, राणी न-

---

गाथा—एगया खत्तीय होइ, तउ चंडाल बुक्कस्स तउ कीडे पय गया तउ कुथु पिवलीया १ एव मडब जोणी सु पाणीणो कम्म किं विस नाना विजती ससार सवठे सुव खात्तिय उतरा अ ३

अर्थ—जैसे क्षत्री राजा महा परिश्रम सेभी पूरा राज्य मिलाके त्रप्त नही होता है. तैसे जीवभी कोइ वक्त क्षत्री हुवा कोइ वक्त चडाल (भंगी) हुवा कोइ वक्त बुकस (वर्ण शकर) हुवा कभी कीडा तो कभी पतगाया इत्यादी योनीमें कर्मोंके वस हो प्राणी परिभ्रमण करते नाना (अनेक) प्रकारके रुप धरतेभी सर्व अर्थ प्राप्त करने समर्थ न हुवा.

इति गेष्ठार्थ

हीं, संयोगी नहीं, वियोगी नहीं, इन सब भावों से अलग ही हैं, फक्त प्रेक्षक कों देखाने हँसाने फसाने. रुलाने, अनेक भाव दर्शाता हैं. और अतर में वो सब सें अलग हैं, तैसेही संसार रुप नाटक शाळामें चैतन्य नट कर्म सयोग अनेक उच नीच एकेंद्री से पचेंद्री तक चंडाल से चक्र वृती तक, रुप धारण कर उस रुप प्रमाणें अनेक योग्या कर्म किये. और अखीर एकही कायम नहीं राह! सब निज २ स्थान रहगये. और चैतन्य अलग ही राह. यह देखीयें कर्मों का तमाशा अब जरा कर्म रुप नशाका उतार आया दिखता है, जिस से थोडा भान आया, और ऐसा विचार होने सें कर्मों की विचित्रता समज भेद विज्ञानी बना हैं, तो अब विभाव कों त्याग स्वभाव मे रमण कर

देख! जब तूं आया (माताकी योनीसे बाहिर पडा) था तब इकेलाही था. और तेरे देखते २ अनेक गये, वो इकेलाही गये. वैसे तू भी इकेलाही जायगा अशुभ कर्म के फल भोगवने नर्कमें, और शुभ कर्मके फल भोगवने स्वर्गमें गया तो इकेलाही गया! धन, वस्त्र, मकान, भोजन, भुषण, वगैरे का हिस्सा (पांती) लेने वाले अनेक स्वजन हैं. परन्तु कृत कर्म के फलों-

का हिस्सा लेने वाला कोइ नहीं है.

इस जक्तमें परिभ्रमण करते हुते अनंत जीवों. मेंसे रस्ते चलते २ थोडे दिनोके लिये कोइ स्त्री बन जाता है कोइ पुत्र हो जाता है, ऐसे २ अनेक सम्बन्ध करते हुये. पुद्गल परावृतनके फेरेमें किदर के किदर ही चले जाते हैं. फिर उनका पताभी लगना मुशकिल होता है. ऐसेही हे जीव! तूं भी केइका पिता, केइ का पुत्र, केइकी स्त्री, इत्यादी बन आया, और छोड आया वो तुजे पहचाने नहीं, तू उन्हे पहचाने नहीं, ऐसे २ विचार भी तेरे समक्ष रुजु होते. तेरा एकत्वपणा तुजें भाष (मालम) नहीं होता हैं. यह अश्चर्य है.

हे आत्मन्! सर्व जगत के पदार्थ तेरेसें भिन्न (अलग) हैं. और तूं उनसे भिन्न है. तेरे उनके कुछभी सम्बन्ध नहीं हे, इस लिये अब तूं तेरे निज स्वरूप कों पहचान की तूं शुद्ध है. सत्या है, चिदानंद है, सिद्ध समान है. हमेशा इसही ध्यान में लीन हो की, इस रूप बने

चतुर्थ पत्र-"संसारानुप्रेक्षा"

संसारके स्वरूपको विचारे, सो संसारानुप्रेक्षा,

'संसरति इति संसारः" जिसमें परिभ्रमण करना पडे, सो संसार, चार तरह का है उन्हे चार गति कहते हे गतागत (आवा गमन) करे सो गति चार.

१ नर्क गति न=नहीं+अर्क=सूर्य अर्थात् अन्धकारसे भरी हुइ अन्धकार मय सो तम+ गति या नर्क गतिके ७ स्थान अधो (नीचे) लोकमे एकेक के नीचे हे, (१)॰ रत्न प्रभा=श्याम वर्णके रत्नमय भयकर सर्व स्थान. २ शर्कर प्रभा=तरवारसेभी अति तिक्षण सर्व स्थान है. (३) 'वालू प्रभा'=भाड भूंजके भाडकी वालू (रेती) से भी अत्यंत उष्ण सर्व स्थान (४) पंक प्रभा रक्त, मांस, पीरू के कीचड मय सर्व स्थान (५) धुम्म प्रभा, राइ मिरची के धूमृ(धूवे) से भी अधिक तिक्षण धुम्रमय सर्व स्थान (६) तम प्रभा भाद्रव की घटा छाइ अम्मावस्या की रात्री से भी अत्यंत अन्धकार मय सर्व स्थान (७) तम तमा प्रभा, घोरानघोर अन्धारे मय सर्व स्थान यो सातही नर्क के गुण निप्पन्न नाम (गोत्र) हे इन ७ नर्क मे ४२ आंतरे (खाली जगा) ४९ पाथडे नेरी ये रहने की जगा, ८४

+ यहुत शास्त्रमें नर्कका तम गति भी नाम है

॰ गम्मा, वशा, शीला, अजना, रिट्टा, मग्घा, माघवति यह ७ नर्क के नाम

लक्ष नर्को वासे (उत्पति स्थान) हैं. इनमें रहे समद्रष्टी जीव तो स्वकृत कर्मोदय जाण, सम भाव से दुःख भोगवते हैं, और मिथा द्रष्टी हाय त्रहा कर दुःख भोगवते हैं नर्क मे तीन तरह की वेदन १प्रमाधामी (यमदेव) कृत २आपस की ३क्षत्र वेदना

१ प्रमा धामी १५ जातके हैं १ 'अम्बे नेरीये' को आमकी तरह मशलते हैं, २ अम्बरसे आम का रस निकाले त्योंरक्त मांस हड्डी अलग २ करते हैं. ३ 'शाम'=प्रहार करते हैं. ४ 'सबल'=मांस निकालते हैं. ५ 'रुद्र' शस्त्रसें भेदते हैं. ६ 'महारुद्र'=कसाइ की तरह टुकडे २ करते है. ७ 'काल'=अग्नीमें पचाते है. ८ 'महाकाल'=चिमटेसे चर्म मांस तोडते है. ९ 'असि पत्र'=शस्त्रसे काटते हैं. १० 'धनुष्य' शिकारी की माफिक धनुष्य बाणसें भेदते है. ११ 'कुंभ' कुम्भीमे पचाते है. १२ वालु=भाड भुंजे माफिक उष्ण रेतीमें भुंजते है. १३ वेतरणी=अत्यंत उष्ण रससे भरी वेतरणी नामक नदीमे डालते है. १४ 'खरसर' शस्त्रसेभी अति तिक्षण पत्रवाला शामली वृक्षके नीचे बैठा पत्ते डालते है. १५ 'महाघोष' अन्धेरी कोटडीमें ठसोठस भरते हैं. यह नाम गुण कहे. परंतु इन शिवाय औरभी अनेक तरहके दुःख, कृत कर्मके

वैसेही फल देते है. जैसे मांस भक्षीको उसीका मांस तोडके खिलाते है. मदिरा पानीको तरु आ गर्म कर पिलाते हैं. पर स्त्री भोगी को लोहकी उष्ण पुतली से संगम कराते है. हिंशक जैशी तरह हिंशा करे, वैसी-ही तरह उसे मारते है. इत्यादी अनेक कष्ट दुःख नेंरीये को देते है. वो वेचारे प्राधीन हो अक्राद करते सहते है.

२ आपसकी वेदना=तीसरी नर्कके आगे, यम (परमाधामी) नहीं जा शक्ते है वो नेरीये अनेक विक्राल भयंकर खराब जंगली रूप बनाके, आपसमें लडते है. मरते है, हाय त्राहा करते है, ज्यों नवा कुत्ता आनेसे दूसरे कुत्ते उस पे टूट पडते है वेसा.

३ क्षेत्र वेदना=१० प्रकारकी है. १ अनंत क्षुदा=नर्कके एक जीवको सर्व भक्ष पदार्थ खिला देवे तो भी त्रप्ती नहीं आय, और तावे उम्मर खाने एक दाणा नहीं मिले. २अनंत त्रषा=सर्व जगत्का पाणी पीनेसे प्यास नहीं मिटे, और पीने एक बुंदभी नहीं मिले ३ अनंत शीत[1] लक्षमनका लोहेका गोला विखर जाय ऐसी ठन्ड शीत ज्योनी स्थानमें हैं ४

1 पहलेकी ४ नर्क उष्ण ज्योनी है

अनंत उष्ण[2] लक्षमण लोहेका गोला गलके पाणी हो जाय-ऐसी गर्मी उष्ण योनी स्थानमें हैं. ५ अनंत दहा ज्वर. ६ अनंत रोग सब रोगोसे नेरीये का सरीर व्याप्त है. ७ अनंत खाज (खुजली). ८ अनंत निराधार. ९ अनंत शोक (चिंता) १० अनंत भय. सदा भयभीत रहे. यह १० प्रकारकी वेदना स्वभावसेही है.

ऐसे दुःख मय नर्क स्थानमें, अपना जीव अनंत वक्त उपजके दुःख भोगव आया है.

२ "तिर्यंच गति" तिरछे वहुत बडनेसे तिर्यंच (पशु) कहे जाते है. ४८ भेद पृथवी काय, आप काय तेउ काय, वायू काय. इन एकेकके सुक्ष्म[3] का प्रजाप्ता, अप्रजाप्ता[4], और बादर[5] का प्रजाप्ता, अप्रजाप्ता, यों ४×४=१६ हुये विनाश पतिके सुक्षम साधारण[6] प्रत्येक[7] इन तीन के प्रजाप्ता, अप्रजाप्ता, दो भेद करने से ३×२=६ हुये बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्री इन तीनके प्रजाप्ता अप्रजाप्ता यों ३×२=६ भेद हुये. जलचर[9],

2 पंचमासे ७ मी तक शीत ज्योनी है 3 द्रष्टी न आवे 4 जिव जगे जित्नी प्रजा हैं, उत्नी पूरी बांधे सो प्रजाप्ता. 5 अधुरी बांधे सो, अप्रजाप्ता 6 द्रष्टी आवेसो 7 एक सरीरमे अनत जीव च ?. 8 एक सरीरमें एक जीव 9 पाणीमें रहे मच्छ विगैरे,

थलचर[10], खेंचर[11], उरपर[12], भुजपर[13], यह पांच सन्नी[14] और पांच असन्नी[15]. इन १० के प्रजाप्ता अ. प्रजाप्ता, यों १०×२=२० यह सब मिल ४८ भेद तिर्यंच के हुये

यह वेचारे कर्माधीन हो परवस में पडे हैं. मट्टी को खोदते हैं. फोडते हे. गोवरादिक मिला के निर्जीव करते हे पाणी को गर्म करते हैं. न्हावण, धोवण वगेरे गृह कार्यमें ढोलते हैं क्षरादी मिलाके निर्जीव करते हें अग्नी को प्रजालते हें बुजाते हैं पाणी मट्टी यादी से मारते हैं वायू पङ्खा, झाडू, खांडन. झट्टक, फटक, उघाडे मुख वोलना, वगेरेसे मारते हे, विनशपति को छेदन, भेदन, पचन, पीलन, गालन अग्नी मशाला वगेरे से निर्जीव करते हे. वेंद्री, तेंद्री, चोरींद्री, मट्टीके पानीके हरी-लीलोत्रीके इधनके, अनाजके वस्त्र पात्र आदीके आश्रय रहे, गमनागमन करते, आरभ समु भारंभ करते धुम्रादिक प्रयोग से शीत, उश्न वृष्टी, से आदी अनेक तरह उपजते भी हे और मरते भी है जलचर पाणी खुटनेसें. नवा पाणी आणे से या धीवरा दिक मारते हैं स्थल चर-या वनचर

10 पृथ्वी चले, गायादिक 11 आकाशमेंउडे पक्षायादि 12 पेटरगड चले सर्पादिक. 13 भुजने चले उदरादिक.

पशु ओं बेचारे शीत, ताप, वृष्टी, भूख, प्यास सहन करतें है. कॉटे, कंकर, कीचड, कीडे, वाली भोमीमें पडे जन्म दुःख करते है. घर वस्त्र रहित, हीन, दीन, गरीब अनाथ, घास फूल आदी निर्माल्य मिले जित्ना खा के संतोष करते है. ऐसे निपराधी कों भी रसग्रधी निर्दयी मार डालते है. वन्धनमें डालते है.. ऐसेही ग्रामके रह वासी गौ (गाय) महिषा (भैंस) दिकभी निर्माल्य वस्तु देवें जित्नी खाके रहने वाले, खेतीयादी अनेंक काममें म. दत-कर्ता दूध जैंसे उत्तम पदार्थके दाता. मालिककी आज्ञामें चलने वाले गरीव बेचारेके उपर, असाह्य बजन भर देतें है. कठिण वन्धन से बांधते है. कठोर प्रहार से मारते है. वहुत चलाते है. दुख से, रोग से, या थाक से, मुर्छित हो पडे हुवें को. श्वास रोक के उठातें है खान पान पूरा नहीं देते है. और काम पूरा लेते है. और मतलव पूरा हुये. कृत्घनी कसाइ यादी कों बेंच देते हे. वहां विष शस्त्र से आकले रीवा २ मारे जाते है. इन दीनो की करुणा करने वाला कौन है? ऐसी तिर्यंच गति में अपना जीव अनंत वक्त उपजके दुःख भोगवने आया हैं.

३ मनुष्य गति—मनकी इच्छा मुजब साध

कर सके सो मनुष्यके ३०३ भेद, अस्सी[1], मस्सी[2], कस्सी[3], यह तीन कर्म कर उपजीविका करे सो कर्म भूमी मनुष्यकी उत्पति के १५ क्षेत्र, १ भर्त, १ ऐ-रावत, १ महाविदेह. यह तीन क्षेत्र जंबुद्विपमे और यही दो दो होनेसे ६ क्षेत्र घातकी खंडमें और यों ही ६ पुष्करार्ध द्विपमें यों ३+६+६=१५ वगेक्त ती-नही प्रकारके कर्म विना दश प्रकारके* कल्पवृक्ष से उपजीवका होवे. सो अकर्म भूमी मनुष्यके ३० क्षेत्र १ हेम वय २ अरण वय, ३ हरीवास, ४ रमक वास, ५ देव कुरू. ६ उत्तर कुरू, यह ६ क्षेत्र, जंबुद्विपमें, येही दो दो क्षेत्र होनेसे १२ क्षेत्र घातकी खंडमें, और येही १२ क्षेत्र पूष्करार्ध द्विपमें यो ६+१२+१२ =३०. जंबुद्विपमें के चूली हेमवत और शिखरी प्रवत मेसे आठ दाढों (खुणे) लवण समुद्रमें गइ है. उन्ह

1 हथा यार (शस्त्र) से 2 लिखने का 3 कृपाण (खेती)

* १ मतगा वृक्ष=१ मधुर रस दे २ भिंगा वृक्ष= बरतन दे ३ तुडी यगा वृक्ष= बाजिंत्र सुणावें ४ दिव वृक्ष= दिवा जैसा प्रकाश करें ५ जोइ वृक्ष= सूर्य जैसे प्रकाश करे ६ चितगा वृक्ष= विचित्र रंग के पुष्प हारदे ७ चित रसा= इछित भोजन दे ८ मन वेगा वृक्ष= रत्न जडित भुषण दे. ९ गिह गारा रहने अच्छा मकान दे १० अनि या णा वृक्ष= श्रेष्ट वस्त्र दे १० अकर्म भोमी और ५६ अतर द्विप में रह-ने वाले मनुष्यो का इन १० कल्प वृक्ष से इच्छा पुरी होती हैं

एकेक दाडोपें साट २ द्विप है. तो आठ दाढोंपे ७×८ —५६ अंतर द्विपमे भी, अकर्म भुमी जैसे मनुष्य रहते हैं यह १५+३०+५६—१०१ मनुष्यके क्षेत्र हैं, इन मे जो मनुष्य होते है. उनके दो भेद अप्रजाप्ता और प्रजाप्ता, यह २०२ हुये, और १०१ अप्रजाप्ता मनुष्य के १४* स्थानमें जो समुत्छिम (स्वभावसे) उत्पन्न होते है वो अप्रजापतेही मरते हैं. इस लिये. १०१ भेट उनके यो सर्व मिल ३०३ भेद मनुष्य के हुये.

कर्म भोमी में महा विदेह छोड, वाकी के क्षेत्र में छे आरे की प्रवर्ती मे कभी पुद्गलिक सुखकी बृधी और कभी हानी होती है सदा एकसा न रहना वो भी दुःख का कारण है. और महा विदेह मे सदा चतुर्थ कल प्रवृतता है. तो वहां भी विचित्र प्रकार के मनुष्य हैं मतलब की जहां कर्म कर के उपजीका है वहां दुःख ही हैं; अस्सी हथीयारसे उपजीका

* १ उच्चार=भिष्टामें, २पासवर्ण=मुत्रमें, ३ खेल=खंकारमें, ४ सघेण=नाकके मेलसेडामें, ५ उत्ते=उल्टीमें ६ पिते=पितमें ७ सूए=रक्तमें, ८ पुए=रस्सी (पीरु) में, ९ सुके=सुत्र (वीर्य) में, १० सुके पुगल परिसारे=शुक्रके सूखे पुद्गल पीछे भीजनेसे ११ मृत्यूकलेवर=पचेंद्रीके कलेवरमें, १२ स्त्री पुरुषके संयोगमें, १३ नगरके नालेमें और १४ लोक के सर्व अशुची स्थानमें (शीतल हुये तुर्त असख्य मनुष्य उत्पन्न होते है)

करने वाले, कसाइ होके वेचारे गरीव निरपराधी जीवोंकी घात कर, महा जब्बर पाप उपराजते हैं, सिपाइयो हो के अपराधी और निरपराधी को विनाकारणभी मारते हैं. कित्नेक राजादिक महा भारत संग्राम करते हैं, कित्नेक स्वकुटुंव का संहारही कर डालते हैं. तो वेचारे एकेंद्रियादिकका तो कहनाही क्या? शस्त्र अनर्थकाही कारण है. शस्त्र हाथमे आयाकी प्रणाम हिंसामय हुये. मसी लिखाइ के कर्म कर उपजीविका चलाने वाले वणिकादिक कसाइ, कुंजडे, कलाल, दाणेका, लोहेका, धातूका वगैरे अयोग्य वैपार कर गजा उपरांत वजन उठाये, गामडे में भटकने हैं गुलामी करतेहैं, वगैरे महा कष्ट सहतेहैं. कस्सी=कृषी (खेती) के कर्म में अनेक एकेंद्री से पचेंद्री तक जीवकी घात करते हैं शीत ताप क्षुध्या तृषादी महा कष्ट सहते हैं महा मेहनत से तीनही रुतू वितिकृंत करते हैं, अब्बी वृत मान कालकी स्थितीका ख्याल करते मालम होता है की, द्रव्य (धन) है तो वहुत स्थान कुटवकी अतराय रहती है, कुटंव है तो दरिद्रता रहती है. धन कुटंव दोनो है तो संप नहीं. सरीर रोगीला, सदा क्लेश, लेने देनेका इज्जत का, वगैरे अनेक दु ख भुक्त रहे हैं कित्नेक वेचारे गरीव है, उन को अपने पेट

भरनेकी ही मुशीवत पड रही है. तो अन्य कुटम्बका निर्वाहा तो दूरही-रहा, कित्नेक, अंगोपांग, हीन लूले, लंगडे, अन्धे, बहीरे, वगैरे है, कित्नेक अनार्य म्लेच्छ देशमें उत्पन्न हूवे; फक्त, नाम मात्र मनुष्य है, उनके क र्म पशुसेभी खराब हैं, धर्म के नाममेंभी नही समजते हैं, मनुष्यका अहार करते है, वस्त्र रहित रहते है, मात, भग्नी, पुत्रीयादी से विभचार का कुछ विचार नहीं है. जंगलमें भटक २ जन्म तेर करते है. अक्रम भूमी के क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुये मनुष्य देव कुरू उत्तर कुरू में सुखकी उत्कृष्टता हैं, हरीवास, रम्यकवास में सुखकी मध्यसता है और हेमवय ऐरण्यवयमें सुखकी कनिष्टता है परंतु सर्व धर्मरहित भद्रिक प्रणामी. प्रयाय पशुकी तरह पूर्व पुण्यसे प्राप्त हुये, दशकल्प वृक्षो के योग्य से सुख भोगवते है और मर जाते है

अंतर द्विपमे रहने वाले मनुष्य नाम मात्र हैं पानी पे डूगरीयोमें बनमे रहते हैं सरीर मनुष्य जैसा होके. कित्नेकके मुख हाथी घोडेसिंह गाय जैसे होते हैं. यह मिथ्यात्व द्रष्टी हैं कुछ पुण्योदयसे इन्की भी इच्छा कल्प वृक्ष पूरतेहैं.

समुत्छिम मनुष्य, फक्त मनुष्य अंग के पदार्थ भिष्टा,मुत्र रक्तादी सें होते हैं. जिससे वो मनुष्य कहे

जाते है परंतु द्रष्टी नही आते हे सुक्ष्म रुप से एक स्थान में भेलंभेल असंख्य उपजतेहै, और तुर्त मरते है. भिष्टपेभिष्टा, मुत्रमें मुत्र, करने से वगैरे इनकी हिंशा हर वक्त होती हे.

ऐसे दुःखमय स्थानमे, अपन अनंत विटंवना भोग आये हैं [मनुष्य जन्मकी श्रेष्टता गिनने का इत्नाही प्रयोजन है की, तिर्थंकर साधू, श्रावक, वगैरे इसीमें होते है 'और मोक्षभी मनुष्य जन्म विन नही मिल शक्ति हे]

४ देवगति—दिव्य उच्चगतिवाले सो देवता के १९८ भेद कहे हैं असुर कुँवार, नाग कुँवार, सुवर्ण कूँवार, विद्युत कुँवार अग्नी कुँवार, उदधी कुँवार, दिशा कुँवार, द्विप कुँवार, पवन कुँवार, स्थनी कुँवार, यह १० और १५ पहले परमाधामी [यम] देवके नाम कहे, सो २५ ही भवन पतिके जातके देवता है. यह पहले नर्कके आंतरे में रहते हैं और पिशाच्च, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुप, महोरग, गंधर्व, इसीवा, भुइवा, आनपन्नी, पानपन्नी, कंदिय, महाकंदिय, कोहड ओर पहं देव यह १६ व्यंतर तथा आन झमक पाणझमक, लेणझमक, सेणझमक, वस्थ झमक, पत्त झमक, पुप्प झमक, फल झमक, वी-

ज झमक, अभी पत्त झमक, यह १० झमक मिल २६ भेद वाण व्यंतरकी जातीमें गिने जाते है. यह पहले नर्क के उपर पृथवी के नीचे रहते हैं. चंद्र, सूर्य, ग्रह नक्षेत्र, तारा, यह ५ अढाइद्विपके अंदर चलते फिरते हैं, और इन्ही नामके ५ अढाइ द्विपके वाहिर स्थिर है. यह १० जोतषी गिने जाते हैं. १ तीन पलिये, २ तीन सागरीय ३ और तेर सागरीये, यह* तीन किलमुखी नीच जातके देव हैं. १ सुधर्मा, ६ईशान, सनत कुमार, महेंद्र, ब्रम्ह, लांतक, महाशुक्र, आण, प्रण, अरण, अचुत यह १२ देवलोक, साइच, माइच, वरुण, वन्ही, गदतोय तुसीय, अरिठा, अगिच्छा अववाह, यह ९ लोकांतिक उंच देव हे भद्दे सुभद्दे, सुजाय, सुमाण. से, सुदंसण, पियदंशण, आमोय, सुपडिभद्दे, जसोधर, यह ९ ग्रीवेग हैं विजय, विजयंत जयंत. अपराजित और सवार्थ सिद्ध यह ५ अनुत्र विमान हे. २५+२६+१०+३+१२+९+९+५ =९९ हूये. इन के अप्रगासा और प्रगासा यह १९८ देवता के भेद हुये.

---

* तीन पल्पेकील मुखी देव, जातषी के उपर रहते हैं तीन सागरीये, दूर र देवलोक के उपर तीसरके नीचे होते हैं तेरे सागरीये छटे देवलाकके पास रहते है यह विद्रुप और हीन स्थितीवाले हैं चार तीर्थका निंदक धर्म ठग निन्हवे इनमें अवतार लेता है

अन्यगति करते देवगति में सुखकी अधिकता है. सब वैक्रय सरीर धारी है दिल चाहे जैसा, और दिलचाह जिस्ने रूप बना सक्ते है. निरोगी, महा दिव्य सदा तरुण, सरीर होता है. आयुष्य जघन्य (थोडासे थोडा) दश हजार, वर्षका, और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम का सेंकडो हजारो वर्पमें क्षुधा लगी के तुर्त सर्व दिशामेंसे शुभ पूद्गलोंका अहार, रोम २ से ग्रहण कर तप्त हो जाते है. इनके विषय सुख अन्योपम सेंकडों हजारों वर्षके होते हैं. इनके सामान्य नाटक में दो हजार वर्ष, और वडे नाटक मे १० हजार वर्ष वितिक्रंत हो जाते है उनके वहां रात्री नहीं है सदा महा प्रकाश बना रहता है.

इत्यादिक सुखके देव भुक्ता है तो भी दु.खी है, क्योंकि, क्षुधा वेदनी तो लगी ही है. और सब देवता वरोवर एकसे नहीं है, कित्नेक इन्द्र हैं. कित्नेक तायत्रिक (इन्द्रके गुरुस्थानी) है कित्नेक सामानिक [इन्द्रके बरोवरीके के] है. कित्नेक आत्म रक्षक. (प्रहरादार) हैं, कित्नेक प्रपादके देव है. कित्नेक अणिका (शैन्य) के देव है. गंधर्व (गायन करने वाले) देव, नाटकिये (नाचनें वाले) देव, अभोगी (नोकर) देव और प्रकीर्ण (अनेक विमान वामी) देव. ऐसे

१० प्रकारके देव बारे, देवलोंक लग है, इनमेंसे ज्यादा ऋद्धि धारी देव है. उन्हे देख कमी ऋद्धि वाला देव शरमाता है. और पश्चाताप करता है, की मे ऐसा क्यों नहीं हुवा, कित्नेक वेविचारी देव, अन्य देवोकी सुरूपा देवीका तथा वस्त्र भूषणका हरण करते हैं. उन्हे इन्द्र शिक्षाद्वारा वज्र प्रहार करते है, जिससे वो छे महिना तक महा वेदना भोगवते हैं. और भी सबसे ज्यादा दुःख मरणका है. सोभीं उन्हे छोडता नहीं है. मृत्यूके छे मांस पहले उन्हे आलस आने लगता है. मेहल, वस्त्र, भुषणकी ज्योती मंद भाष होती हैं, अच्छे नहीं लगते हे. चित्तमे भ्रम पडने लगता है पुष्फमाल कूमलावे. इत्याही चिन्हसे देवता अपना मृत्यू जाण, फिकरमें पड जाते है. की हाय ऐसे सुख को छोड अशुची स्थानमे उपजना पडेगा इत्यादी महा शोक सागरमें डूबे हुये आयुष्य समास करते है. बारे देव लोकसे उपरके देवता अहमेंद्र [स्वता मालक] है. वोभी क्षुद्रा मृत्यूकी पीडा वगैरे मानसिक दुःख भोगवते है. पांच अनुत्र विमान छोड बाकी सब स्थानसे अपना जीव अनत वक्त उपजके मर आया है, सब तरहकी विटंबना भोगव आये हैं.

यह चार गतिके दुःख का संक्षेप में वरणन--

त्या नर्क निगोद दुःख अपार है, एसा यह स-
ार दुःख सें भराहे वो सर्व दुःख अपने जीवने अं
त वक्त सहन किये है

गाथा ॥ धी धी धी ससारे, देव मरिउण जतिरिय होइ;
मरिउण राय सया, परि पच्चइ निरिय जालाए

वैराग्य शतक जैन

अर्थात्—किसी को एक वक्त किसी को दो व-
क्त धिक्कार दी जाती हैं परंतु इस संसार को तीन
क्त धिक्कार है क्यो की देवता जैसे महा ऋद्धी, म,
हा सौख्य के, भुक्ता मरके, पृथवी, पाणी, विनाश-
पति, यादी तिर्यंच योनी में उत्पन्न होते हैं. और रा-
जा ओ के राजा चक्रवृती महाराजा मरके नर्क में
चले जाते हैं

जरा अश्चर्य तो देखीये, जो चक्रवृती मरके उ-
नका जीव नर्कमे गया है और उनका सरीर ह्यां पडा है
उसका संस्कार (स्मशाण मे लेजाणे की) क्रिया अ-
र्चना, श्रृंगार वगैरे करते हे और नर्क मे उनके जी-
वपे यम देव ताड मार करते है देखीये क्या सरीर
के हाल! और क्या जीव के हाल!!

महान पुन्योंदय से मनुष्य जन्मकी सामग्री
का दुर्लभ लाभ को तूं प्राप्त हो भव भ्रमण से छू-

टने का उपाय कर. अनंत अक्षय अव्यबाध मोक्ष सु-ख को प्राप्त कर.

यह धर्म ध्यान ध्याता की चार अनुप्रेक्षा (विचारना) का स्वरुप कहा. इस में रमण करनें से धर्म ध्यान में एकाग्रता प्राप्त होती हैं.

धर्म ध्यानस्य–पुण्यफलम्.

इस धर्म ध्यान में एकांतता न होने से. अर्थात् पुद्गल प्रणती की मिश्रता युक्त विचार और प्रवृती होने से. संपूर्ण कर्म की निर्जरा न होते. पुन्य की अधिकता हाती हैं. उस पुन्य फल कों भोगवने के लिये ज्यों ज्यों ध्यान की अधिकता होय त्यों त्यों उंच स्वर्ग में निवास मिलता हैं.

स्वर्ग (देव) लोंक में उत्पन्न होने की सेज्या (पलंग) है उसपे एक देवदुष्य नामे वस्त्र ढका हुवा होता है, ह्यांसे सरीर छोड पीछे धर्म ध्यानी का जीव उस सेज्या मे जाके उत्पन्न होंता हैं. और एक मुहुर्त पीछे पूरी प्रजा बांधके उत्तवस्त्रकों ओढ (सरीरकों ढक) के बहेठा होजाते है; उसी वक्त उनके अज्ञाकित

देव देवींयो+वहां अत्यत हर्षउत्सहाके साथ एकत्रहो हाथ जोड, अंत्यत नमृता सें पूछते है, आपने क्या कर नी करी, जिससे हमारे नाथ हुये. तब वो देव* अव धी ज्ञान से पूर्व भवका हाल जान, और देवलोककी ऋद्धिसे चकित हो, अपने पुर्वले सम्बधीयोंको चेताने उत्सुक होते हैं, तब वहां के डेव कहते हैं, एक महूर्त मात्र हमारा नाटक देखके, फिर इच्छित कीजीये वो सामान्य नाटक करते हैं, उसमे ह्यांके दो हजॉर वर्ष बीत जाते हैं, ह्यांके सम्बधीयो मरक्षप जाते हैं, और वो भी प्राप्त सुखमें लुब्ध हो जाता हैं

१ बारे देवलोकके उपरके सर्व देव अहमेंद्र है, अर्थात् सब बरोबरीके है छोटा वडा कोइ नहीं हैं इस लिये वहां नाटक चेटक करनेवाला कोइ नहीं है और बारमें स्वर्गके उपर जैन शुद्धाचारी विपूल ज्ञानी साधू ही जाते है. वो पहलेसेही अल्प मोही होते हैं इस लिये ज्ञान ध्यान सिवाय अन्य तर्फ रुचीही मंद होती है, वो सावधान होतेही पूर्व सम्पादन किये हुये ज्ञान के ध्यानमें मशगुल हो जाते है जिससे जिनोका उत्कृ-ष्ट ३३ सागरोपम का आयुष्य परमानंद परम सुखमें

+ दूसरे देवलोक के उपर देवी नहीं है

* देवतामें अवधी ज्ञान जन्मसे स्वभाविकही होता है

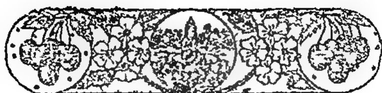
वितिक्रंत हो जाता है.

वहांसे आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य होते हैं की जहां दशबोलका* जोग होता है. ऐसे मनुष्य देवताके जघन्य ३ और उत्कृष्ट १५ भव या संख्यात भव कर सुक्लध्यानी हो मोक्ष प्राप्त करते हैं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके
सम्प्रदायके बाल ब्रम्हचारी मुनी श्री अमोलख
ऋषिजी रचित ध्यान कल्पतरुस्य धर्मध्यान
नामक तृतीय-शाखा समाप्त.



*क्षेत्र घर, धन, पशु गौवादी, नोकर, १,२ मित्र औरन्यती बहूत होय' ४ उच गोत्र ५ सुन्दर सरीर' ६ रोग रहित, ७बुद्धी तिव्र ८ यशवंत ९ विनयवंत (मिलापु) १० प्राक्रमी बलवत यह १० बोलका जोग जिस जगह होय वहापुन्यात्मा अवतार लेते है



उपशाखा-"शुभध्यान"

श्लोक — गुप्तेन्द्रिय मनोध्याता, ध्येय वस्तु यथास्थितम्
एकाग्र चिन्तन ध्यान, फल सम्वर निर्जरौ १

अर्थ—शुद्ध ध्यानके करने वाले, पंच इन्द्रिय और मनको स्ववश अपने आधीन कर, शुद्ध वस्तुकी तर्फ एकाग्रता अभिन्नता लगाके अखंडित रह ध्यान ध्याते है. इसका फल सम्वर (आगामिक पापका निरुधन) और निर्जरा (पूर्वोपार्जित पापका क्षय) होता है, यो सर्व पापका क्षय-नाश होनेसें मोक्षके अनंत अक्षय अव्याबाध सुखकी प्राप्ती होती है, इस लिये मुमुक्षु ओको शुद्धध्यान की विशेष अवश्यकता है सोही कहता हू.

बरोक्त श्लोकमें शुद्धध्यान करनेके लिये इन्द्रियो और मनको निग्रह करनेकी जरुर बताइ, सो इन्द्रियोंभी मनके स्वाधीन है, उत्तराध्येयन सूत्रमे कहा है—"एगं जीय जीय पच" अर्थात् एक मनको जीतने से पंन्च इन्द्रियो वश हो जाती है और भी कहा है,

की="मनएव मनुष्याणाम् कारण वन्ध मोक्षयो" अर्थात कर्मसे वन्धने वाला और छोंडने वाला मनही है. *प्रसन्नचंद्र राज ऋषिकी तरह. इस लिये मनको जीतने की अवश्यकता है—

*राज ग्रही नगरीके श्रेणिक महाराजा गुणसिल बागमेंविराजते हुवे श्रीमहा वीरभगवन्त के दर्शन करने लियेजातेहुवे मार्गमें एक प्रसन्न चन्द्र नामे राज ऋषि को सूर्य के महातापमे अडोल ध्याना रुढ देख, अश्चर्यचकित होश्रीमहावीरस्वामी को नमस्कार कर प्रश्न पुछा की महाराज दुष्कर तपके करने वाले सामुनी आयुष्यपुर्ण कर कहां जायेंगे, भगवंत—अभी मरे तो पहली नर्कमें, श्रेणिक है पहली नर्क भगवंत—नहीं दुसरी नर्क में, श्रेणि—है दुसरी! भ - नहीं तिसरी यों श्रेणिक अश्चर्य में आ प्रश्न करता गया और भगवंत चोथी पाचवी छट्टी जाव सातवी नर्क तक फरमा दिया श्रेनिक नें फिर अश्चर्य हो पूछा ऐसे महा मुनी सातमी नर्कमें जाय? तब भगवंतने फरमाया नहीं छटी यों श्रेणिक अश्चर्य धर पूछता गया और भगवंत पांचमी, चौथी, तीसरी, दुसरी, पहली भवनपति, व्यंतर जोतषी, देवलोक ग्रीवेक, और अनुत्तर विमान, का नाम फरमातेही देवदुदवीका शब्द सुणाया तब श्रेणिकने पृछा महाराज! यह दुदवी क्यों बजी? भगवंतने फरमाया की उन प्रश्न चन्द्र राजऋषीको केवल ज्ञानकी प्राप्ती हुइ! यह सुण श्रेणिक राजा अति ही अश्चर्य चकित हो पुछने लगा भ

असंशय महाबाहो मनो दुर्निग्रह चलम्
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च ग्रह्यते भगवद्गीता

अर्थ—श्री कृष्ण कहते हैं की हें अर्जुन! मनको वश करना बहुतही मुशकिल है. क्यों कि मन अती चपल है+ परन्तु निरंतर अभ्याससे और वैराग्यसें मन वश में हो सक्ता हैं-

किसीसे भी पूछ देखो की भाइ तुम मनको

बडा निर्दयी है छोटेसे बच्चेपे राजभर डाल आप साधू बन गया और बेचारे उस बचेको परचक्री सता रहा है यह सुणतेही राजऋपि क्रोधातुर हो उस परचक्रीके साथ मनोमय संग्राम करने लगे (उस वक्त तेने पूछना शुरु कियाथा) अनेक सैन्यका संहार कर शत्रुको मारने चक्र लेनेक लिये शिरपे हाथ डाला के (उस वक्त सातवी नर्क के दलीये भेले किये थे) रुंड मुंड मस्तक पा या! उसी वक्त चौंक गये भान आया के अरे! मेने साधू होके यह क्या जुलम किया? यों पश्चाताप करने लगे. (उस वक्त संचित कर्म के दलिये क्षपने लगे) त्यों त्यों उच्च चढते गये और शुद्ध विचारमें एकाग्र होनेसे चन घातिक कर्म नष्ट हो गये तब केवल ज्ञान दर्शनकी प्राप्ती होगइ (शुद्ध ध्यान में इत्नी प्रबलता है) यह सुण श्रेणिक राजा बडे खुशहो गये भगवंतको और उन राजऋपि वगैरे साधुओंको नमस्कार कर निजस्थान गये

+'अतिचचल मतिसुक्ष्म सुदुर्लभ वेगवत्तया चेत'—हेमचद्राचार्य अर्थात—यहमन् अतीहीचचल होके अतीसुक्ष्म है इस लिये इसकी गतीको रोकना मुशकिल हैं

वश कर सक्ते हो? तो वो येही कहेगाकी वहोतही उपाय करते हैं, परन्तु पापी मन वशमें नहीं रहता है क्या करें! ऐसे मनको वशमें करनेका सहज उपाय इस श्लोकमें कहा है की, निरंतर अभ्यास से जो वैराग्य प्राप्त करता है. वो मन वशमें कर सकेगा.

पंच इन्द्रियोंके छिद्रों कर जो शब्दादी पुद्गलका प्रवेश होता है. उन्हे ग्रहण कर मन राग द्वेषमय प्रणम, सुखी दुःखी बनता है. उस राग द्वेषमें प्रणमते हुये मनको रोकना उसीका नाम वैराग्य. राग द्वेष प्रणतीमें प्रणमनेका मनका अनंत कालका स्वभाव पड रहा है उससे एकाएक मन रुकना बहुतही मुशकिल है. इस लिये मनको रोकनेका अभ्यास करना चाहीये जैसे जोशमय आते नदीके पूरको कोइ एकदम-रोकना चाहे तो कदापी नहीं रुक सकेगा! परन्तु उसे पलटानेका जो प्रयत्न करे तो हो सके बस तैसेही मनके वेगको पलटानेके प्रयत्नकी अभ्यास की आवश्यकता है

वो अभ्यास ऐसा चाहीये की, जिन २ शब्दादी विषय मय पुद्गलोमें मन प्रणमें उसीही वक्त उन पुद्गलोंके स्वभाव गुण और फलके तर्फ मनको फिराना की यह क्षिणिक और कटु फलद्रुप हैं ऐसा हरव-

क्त अभ्यास रखनेसे मन किसी कालमें इन्द्रियोंके विषय से वृत्ती कर सकेगा.

और फिर ध्यानमें मनको स्थिर करने एकाग्रता का अभ्यास करना एकाएक मन एकाग्रहोना मुशकिलहैं परन्तु अभ्यास से वोभी हो सक्त है, जो जो काम अपने नित्य नियमिक हैं अवलतो उन्हीमे एकाग्रता करना चाहीय प्रतिक्रमण करते होय तो उस प्रतिक्रमणके शब्दार्थादीमेही मनको गडादेना उस विचारको छोड अन्यतर्फ नहीं जाने देनाएसेही सझ्याय-स्वध्याय करती वक्त स्वध्यायमें व्याख्यान देती वक्त व्याख्यानमें गौचरी व आहार करती वक्त अहार-में इत्यादी सर्व दिवस राती सम्बधी कार्यमें सदा सर्वकाल क्षिणंत्र रहित, मनकी एकाग्रता का अभ्यास रखना यों कित्नेक कालतक करते २ वो सहजही एक वस्तुपे टिकने लग जाता है, फिर हरेक इष्ट पदार्थपे मनकी एकाग्रता हो सक्ती है यो अभ्यास युक्त वैराग्य मनको अडोल ध्यानी वनाता है

अब वो एकाग्रता तथा ध्यान किस वस्तुका करना सो कहता हूं



प्रथम प्रतिशाखा-"आत्मा"

सूत्र "जे एगं जाणइ से सव्वं जाणेइ; जे सव्व जाणेइ, से एगं जाणइ. आचारांग अ ३ सूत्र २०९

अर्थ—जो एकको जाणेगा, वो सबको जाणेगा और जो सबको जाणेगा वोही एकको जाणेगा!*

वो एक पदार्थ कौनसा है? और कैसा है? की जिसको जाणने से सर्वज्ञता प्राप्त होवे। उसका स्वरूप यां दर्शाते है.

वो "आत्मा" है. आत्माके ३ भेद किये हैं १ बाहिर आत्मा, २ अंतर आत्मा, और ३ परमात्मा.

प्रथम पत्र—"बाहिर आत्मा"

१ बाहिर आत्मा=जो यह प्रतक्ष हाडका पिंजर रक्त मांसादी धातूओंसे भरा हुवा, और रंगी बेरंगी चमडी करके ढका हुवा. मनुष्य या तिर्यञ्च (पशुवों)

---

*श्लोक—एको भाव सर्वथा येन दृष्टा, सर्वे भावा सर्वथा तेन दृष्ठा सर्वे भावा सर्वथा येन दृष्टा, एको भाव सर्वथा तेन दृष्टा

अर्थ- जिनने एक पदार्थ को प्राति पूण रूपसे देखा, उनने सर्व पदार्थ प्राति पूर्ण रूपसे देखा; ओर जिसन सर्व पदार्थ पूर्ण से देखा जिनने एक पदार्थ पूर्णसे देखा

दुहा-निज रूपे निज वस्तु है. पर रूपे परवस्त.
जिसने जाणी पैंच यह इसने जाणा समस्त

का सरीर; तथा अन्य अशुभ पुद्गलों (वस्तुओं) से ब ना, नर्क निवासी जीवोंका सरीर; और शुभ पुद्गलोंसे बनाहुवा, देव लोक निवासी जीवोंका सरीर, उसे बाहिर आत्माकहते हैं अज्ञानी जीव उसेही आत्मा मान बेठे हें, और अपने सरीर को हाथलगा कहते हैं. मै गोरा हूं. कालाहू, लम्बाहू, छोटा हूं, जाडाहूं पतलाहूं मेरा छेदन भेदन होता है मेरे अंगोपांग दुःखते हैं, रखेमेरी आत्माका विनाश होवे, और वो इन्द्रीयोंके शब्दादीक विषयों के पोषण में मजा मानतें है, मैं स्त्री हूं, पुरूष हूं, नपुंशक हूं इत्यादी विचारसें परस्पर भोगमे आनंद मानतेंहं, हा हा करतेहैं. मतलबकीजो सरीरको आत्मा मानें, सरीरके सुख दुःखसे अपना सुखदुःख मानें सरीर की पुष्टाइसे हर्ष, और कष्टासे दुःख मानते है; वेहीबाहिर आत्माको आत्मा मानने वाले अज्ञानी जानना* शुद्ध ध्यान के ध्याता, इस अनादी भाव कों मिटाने देहा ध्यास छोडने, प्रणासोकी निशुद्धी करने, विचार

* श्लोक–देहात्म बुद्धिजपाप, नतद्गोवध कोटीभी आत्मा अहंबुद्धिज, पुण्य नभूतो नभाविष्याति

अर्थ– सरीरहीको जो आत्मा मानते हैं उन्हे क्रोडो गायों के वध करनेवालेसेंभी अधिक पाप लगता है और मै आत्माहा हूं ऐसे विचारवालेको जित्ना पुण्य होता है वो पुण्य त्रिकालके पुण्यसें भी अधिकहै

करें की यह सरीर पुद्गलो के संयोग से निपजा हैं. श्री उत्तराध्ययनजी में फरमाया हैं की

"गाथा" नो इंदिये गिझं अमुत्त भावा, अमुत्त भा-वा विय होइ निच्चो अझत्थ हेउ निययं सं बंधो, संसार हे उंच वयंति बंधं १९

अर्थ=जो मूर्ती पदार्थ हैं वोही इन्द्रियों सेंग्रहण किये जाते हैं. और जो पदार्थ इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जाते हैं वो जड होते हैं और चैतन्य तो अमूर्ती (अरूपी) हैं. उसको इन्द्रियों ग्रहण नहीं कर सक्तीहैं इसालिये वो अजड अविन्यासी नित्यहैं, अनादी देहाध्यासके कारण से जड और चैत्यन्य सम्बंध से एकत्र रुपहो रहाहैं, जैसे दूध और घृत. यह जो जडका और चैतन्य का सवन्ध है, सोही संसार का हेतूहैं. इस अनादी सवन्ध का निकंद करने, श्री आचारांग सूत्र मे फरमायाहैं "जेएगं णामे, से वहुणामें, जेवहुणामेंसे एगंणामे," अर्थात्जो एक मोह (ममत्व)को नमावे सो बहूतो को नमावे, अर्थात सर्व कर्मोको नमावे, और जो वहुत (सर्व)को नमावेगा सोही एक (ममत्व)को नमावेगा और'जेएगं विगिंचमाणे पुढोगिचइ पूढो विगिंचमाणे एगं विगिंचइ'अर्थात् जो एग मोहको खपाते हैं वोसव (कर्मो)को खपाते है; और जोसर्वको खपते है. वोही

एक को खपाते हैं-क्षय करते हैं. इत्यादी विचार से सरीरसे आत्म बुद्धिका त्याग कर. ममत्व उतार अंतर आत्माकी तर्फ लक्ष लगावें.

द्वितीय पत्र-"अंतरात्मा".

२ अंतर आत्मा=अंतर आत्मा में रमण करते हुये ध्यानी विचारतें हैं, मैं जिसे सम्बोधन करताहूं,सो फक्त लोकीक व्यवहार सें करता हूं. क्यो कि आत्मा तो निष्कलंक हैं, इसे कौन संबोध सक्ता हैं. आत्मा तो आत्ममय पदार्थ को ही ग्रहण करता है. अन्यको नहीं, अन्यको तो अन्यही ग्रहण करते हैं. ऐसा भेद विज्ञान (पुद्गल और चैतन्यकी भिन्नताका जिन्हे होवे. अंतर (निजात्म स्वरूप) की तर्फ लक्ष लगे वो अंतरात्मी. जैसे अन्धकार में स्थंभका मनुष्य भाप होता है, और अन्धकारके नाश होनेसे वो यथातथ्य स्थंभका स्थंभही दिखता है. तब प्रथमका भर्म नाश होता हे तैसेही भेद विज्ञान अनस्त सूर्यके प्रकाश होनेसे सरीर और आत्माका यथार्थ भाप होता हे

"अंतर आत्म विज्ञानीका विचार"

१ जो स्त्री पुरुषादिक की प्रयाय हैं.

करें की यह सरीर पुद्गलो के संयोग से निपजा हैं. श्री उत्तराध्ययनजी में फरमाया हैं की

गाथा — नो इंदिये गिझं अमुत्त भावा, अमुत्त भा-
वा विय होइ निच्चो अझत्थ हेउ नियमं सं
बंधो, संसार हे उंच वयंति बंधं १९

अर्थ=जो मूर्ती पदार्थ हैं वोही इन्द्रियों सें ग्रहण किये जाते हैं. और जो पदार्थ इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जाते हैं वो जड होते हैं और' चैतन्य तो अमुर्ती (अरूपी) हैं. उसको इन्द्रियों ग्रहण नहीं कर सक्तीहैं इसालिये वो अजड अविन्यासी नित्यहैं, अनादी देहा ध्यासके कारण सें जड और चैत्यन्य सम्बंध से एकत्र रुपहो रहाहैं, जैसे दूध और घृत. यह जो जडका और चैतन्य का सवन्ध हे, सोही संसार का हेतूहैं. इस अनादी सवन्ध का निकंद करने, श्री आचारांग सूत्र मे फरमायाहैं "जेएगं णामें, से बहुणामें, जेवहुणामेंरो एगंणामे," अर्थात्जो एक मोह (ममत्व)को नमावे सो बहूतो कों नमावे, अर्थात सर्व कर्मोको नमावे, और जो वहुत (सर्व)को नमावेगा सोही एक (ममत्व)को नमा वेगा और'जेएगं विगिंचमाणे पुढोगिंचइ पूढो विगिंचमा णे एगं विगिंचइ'अर्थात् जो एग मोहकों खपाते हैं वोसव (कर्मो)को खपातें हे, और जोसर्वको खपते हे. वोही

घ्क को खपाते है-क्षय करते है. इत्यादी विचार से सरीरसे आत्म बुद्धिका त्याग कर. ममत्व उतार अंतर आत्माकी तर्फ लक्ष लगावें.

द्वितीय पत्र-"अंतरात्मा".

२ अंतर आत्मा=अंतर आत्मा में रमण करते हुये ध्यानी विचारतें हैं, मे जिसे सम्बोधन करताहूं,सो फक्त लोकीक व्यवहार सें करता हूं. क्यों कि आत्मा तो निष्कलंक हें, इसे कोन संवोध सक्ता हैं. आत्मा तो आत्ममय पदार्थ को ही ग्रहण करता है. अन्यको नहीं, अन्यको तो अन्यही ग्रहण करते हैं. ऐसा भेद विज्ञान (पुद्गल और चैतन्यकी भिन्नताका जिन्हे होवे. अंतर (निजात्म स्वरूप) की तर्फ लक्ष लगे वो अंतरा त्मी. जैसे अन्धकार मे स्थभका मनुष्य भाष होता है, और अन्धकारके नाश होनेसे वो यथातथ्य स्थभका स्थंभही दिखता है तब प्रथमका भर्म नाश होता है तैसेही भेद विज्ञान अनस्त सूर्यके प्रकाश होनेसे सरीर और आत्माका यथार्थ भाष होता हे

"अंतर आत्म विज्ञानीका विचार"

१ जो स्त्री पुरुषादिक की प्रयाय हे, वो कर्मो-

का स्वभाव है; चैतन्यका नहीं. चैतन्य तो निर्वेदी, निर्धिकारी है. तो फिर वीकारीक वस्तुओंको देख, विकारी क्यों होता है-

२ जो शत्रुता, मित्रता, के प्रणाम होतें है, सोही कर्म स्वभाव है. निश्चयमें तो "अप्पा मितंममितं च" जो अक्कलसे निवृते तो अपणी आत्मज मित्र है, नहीं तो शत्रुताका साधन तो होताही है. इस विचारसे शत्रु मित्र पर व अच्छी बुरी वस्तुपर सम प्रणामी बने. राग द्वेष न करे.

३ इत्ने दिन में तो बालककी तरह अनेक चेष्टा करता सो अन्यका प्रेरा हुवा करताथा, न की चैतन्यका क्यों कि चैतन्य तो अनंत ज्ञानादी शक्तीका धारक है. वो किसी प्रकार चेष्टा (ख्याल तमाशा) करेइ नहीं.

४ इत्ने दिन अन्य पदार्थ सच्चे मालम पडतेथे, अब वोही स्वप्न और इन्द्र जाल जैसे मालम पडने लगे. फिर इसकी प्रतीत कां रही. और असत्य को सत्य माने सोही मिथ्यात्व.

५ जो परमात्माको अविन्यासी कहते है वो मेंही हूं. फिर जंगम और स्थावर से मेरा विनाश होवे यह वैसही खोटा है. "मरे सो और, और में और'

इस विचार से निडर बने.

६ हा! हा! अश्चर्य की, जिन्ह कामोंसे, या कारणोंसे, अज्ञानीयों कर्म का बन्ध करते हैं. उन्हीं कामोंसे ज्ञानी कर्म बन्ध तोड निर्मुक्त होते है इस विचार से सबसे ममत्व घटावें.

७ इतने दिन संसारमें जो मै रूपोकी विचित्रता पाया, सो 'भेद विज्ञान' के अभावसेही पाया; अब वैसा नहीं बनूं.

८ यह जग तारक वाहण (झाज-स्टिमर) सब के सन्मुख से चले जाते हुयेभी, अनंत जीवो डूब रहे हैं इसका एक मुख्य कारण, "भेद विज्ञानकी अज्ञानता ही हैं." अब मै तो उससे छूटा होवुं!

९ क्या मजा है! यह आत्मा आत्माके द्वारा ही पहचानी जाती हैं. इसे चशमें या दुर्बीन की कुछ जरूरही नहीं यो आत्मा देखे

१० विशेष आश्चर्य तो यह हैं की—जो विषय मय पदार्थ अज्ञानियो को प्रिती उत्पन्न करने वाले होते है वोही ज्ञानीयोंको अप्रिय दु'ख दायक लगते है; और संयम तपादिक, अज्ञानीयो को अप्रिती दु'ख उत्पन्न करने वाले भाष होते हे. वोही ज्ञानीयों को सुखानंद दाता भाप होते हैं

११ वोही हूं में, वोही में हूं, ऐसी एकांत भावना कर्ता हुवा यह आत्मा उसी पदको प्राप्त होता है, "अप्पासो परमप्पा" अर्थात आत्मा है सोही परमात्मा है? * उसी पदको प्राप्त होता है. और इससें ज्यादा सद्बोध कौनसा.

१२ मैंने मेरीही उपासना करनी सुरु करी, तो फिर मुजे अन्य उपासनाकी क्या जरूर, क्यों कि जैसे परमात्मा है, वैसाही में हूं.

१३ भेद विज्ञानी महात्माको दूकर तप, और महान उपसर्गसेभी किंचित मात्र क्षिन्न नहीं कर सक्ते हैं, चला नहीं सक्ते है.

१४ अंतर आत्माका ध्यान रागादि शत्रुके क्षयसेही होता है.

१५ जो भ्रम रहित हो, जीव और देहको अलग २ समजेगा, वोही कर्म बन्धन से छूट मोक्ष प्राप्त करेगा. रागादी शत्रु दूर हुये की आत्मा दिखी.

१६ अज्ञान और विभ्रमके दूर होनेसेही आत्म तत्व प्राप्त होता है.

१७ जिस कायाको प्राण प्यारी कर रक्खी थी, अज्ञान दूर होनेसे उसीही कायको तप संयमादी में

*अन्य मती भी कहते हैं—आत्माचीनेसो परमात्मा"

गालने लगते है.

१८ आत्म ज्ञान विन कोरे तप करनेसे, दुःख मुक्त नहीं होता है.

१९ बाहिर आत्मा वाला, रुप धन, बल सुख, इत्यादी का अहो निश ध्यान करता है. और अंतर आत्मिक इस से विरक्त हैं.

२० अज्ञानी फक्त बाह्य त्यागसे सिद्धी मानते हैं, और ज्ञानी बाह्य अभ्यंतर दोनो उपाधीयों त्याग नेसे सिद्धी मानते हैं,

२१ अध्यात्म ज्ञानी व्यवहार साधने वचन और कायासे अन्यन्य कार्य करते भी मनसे एकांत अंतर आत्मामें ही लीन रहते हैं

२२ आत्म साधन करती वक्त, जो उपसर्ग, व. दुःख होता है उसे अध्यात्मी दु.ख नही समजते है* बल्के सुखही समजते है, जैसे रोगी कटू औषधीके स्वादको न देखता गुणहीका गवेक्षी होता है.

---

*श्लोक– नैव छिदन्ति शास्त्राणि, नैन दहतिपावक
नचेनक्लेदय तऽपो, नशोषयाति मारुत ॥१॥

अर्थ– इस आत्माको तिक्षण शस्त्र छेद. शका नही है, प्रचन्ड अग्नी जलासक्तानही है, पागलासक्ता नही है औरवायू (पवन) सुकासका नही है, तो फिर भय (डर) किसका

११ वोही हूं मैं, वोही मैं हूं, ऐसी एकांत भावना कर्ता हुवा यह आत्मा उसी पदको प्राप्त होता है, "अप्पासो परमप्पा" अर्थात आत्मा है सोही परमात्मा है? * उसी पदको प्राप्त होता है. और इससे ज्यादा सद्बोध कौनसा.

१२ मैंने मेरीही उपासना करनी सुरु करी, तो फिर मुजे अन्य उपासनाकी क्या जरूर, क्यों कि जैसे परमात्मा है, वैसाही मैं हूं.

१३ भेद विज्ञानी महात्माको दूकर तप, और महान उपसर्गसेभी किंचित मात्र क्षिन्न नहीं कर सक्ते हैं, चला नहीं सक्ते है.

१४ अंतर आत्माका ध्यान रागादि शत्रुके क्षयसेही होता है.

१५ जो भ्रम रहित हो, जीव और देहको अलग २ समजेगा, वोही कर्म बन्धन से छूट मोक्ष प्राप्त करेगा. रागादी शत्रु दूर हुये की आत्मा दिखी.

१६ अज्ञान और विभ्रमके दूर होनेसेही आत्म तत्त्व प्राप्त होता है.

१७ जिस कायाको प्राण प्यारी कर रक्खी थीं, अज्ञान दूर होनेसे उसीही कायको तप संयमादी में

*अन्य मती भी कहते हैं—आत्मासोही परमात्मा"

गालने लगते है.

१८ आत्म ज्ञान विन कोरे तप करनेसे, दुःख मुक्त नहीं होता है.

१९ वाहिर आत्मा वाला, रुप धन, बल सुख, इत्यादी का अहों निश ध्यान करता है. और अंतर आत्मिक इस से विरक्त हैं.

२० अज्ञानी फक्त वाह्य त्यागसे सिद्धी मानते हैं, और ज्ञानी वाह्य अभ्यंतर दोनो उपाधीयों त्याग नेसे सिद्धी मानते हैं,

२१ अध्यात्म ज्ञानी व्यवहार साधने वचन और कायासे अन्यन्य कार्य करते भी मनसे एकांत अंतर आत्मामे ही लीन रहते हैं.

२२ आत्म साधन करती वक्त, जो उपसर्ग, व-दु·ख होता है. उसे अध्यात्मी दुःख नहीं समजते हैं* वल्के सुखही समजते है, जैसे रोगी. कटु औपधीके स्वादको न देखता गुणहीका गवेक्षी होता है.

---

*श्लोक– नैव छिदन्ति शास्त्राणि, नैन दहतिपावक',
नचेनक्लदय तऽपो, नशोपयति मास्त' ॥२३॥
अर्थ– इस आत्माको तिक्षण शस्त्र छेद शक्त नहीं है, प्रचन्ड अग्नी जलासक्तानहीं है, पागलासक्ता नहीं है और वायू (पवन) सुकासका नहीं है, तो फिर भय (डर) किसका

२३ ज्ञानीको आत्म साधन सिवाय अन्य कामकी फुरसतही नहीं मिलती.

२४ परमानन्द आत्मामें ही है. वाहिर क्या ढुंढते हो!

२५ इच्छा है सोही संसार है, इच्छा त्यागसे संसार सहज छुटता है.

२६ जैसे पहरे हुये वस्त्र जीर्ण होते, वेरंगी होते या नष्ट होते सरीर जीर्ण, वेरंगी, और नष्ट नहीं होता है, तैसेही सरीर और जीव जानो.

२७ अज्ञानी, मंद बुद्धीके कारणसे पर वस्तुमें मजा मानते हैं, और ज्ञानी भ्रम नष्ट होनेसे अन्तर आत्मा मेंही अनन्द मानते हैं.

२८ स्थिर स्वभावीज मोक्ष पाते हैं, स्थिरता ही सम्यग दर्शनकी रूद्धी हैं,

२९ लोकीक प्रेमसे वचनालाप, वचना लापसे चित्त विभ्रम चित विभ्रम सें विकलता विकलतासे चंचलता यों एक से एक दुर्गुणोकी वृधी जान, लोकीक प्रेम छोड,लोकोत्रसे लगावे.

३० जब ज्ञान होता है; तव जक्त वावला (गहले) सा दिखता है. और जब ध्यान होता है, तव वस्तुका यथार्थ स्वभाव भाषने लगता है उससे जैसा

है. वैसाही दिखता है. अर्थात राग द्वेप नष्ट होजाता है

३१ आत्मा आत्माके द्वारा ऐसा विचार करेकी मै आत्माही हूं सरीरसे भिन्न हूं. ऐसा द्रढ निश्चय होने से फिर स्वपनेमेंभी सरीर भावको प्राप्त न हो, जिस से आत्म सिद्धी होगा.

३२ जाती और लिंगकी अहंता त्यागनेसेही सिद्धी होती है

३३ जैसे वत्ती दीपकको प्राप्त हो दीपक रूप बनती है. तैसेही आत्मा सिद्धका अनुभव करनेसे सिद्ध रूप होती है. .

३४ आत्माको आराधने योग्य आत्माही है; अन्य नहीं. आत्मा आत्माका आराधन करनेसेही परमात्म बने है. जैसे काष्ठसे काष्ट घसनेसे अग्नी होवे.

३५ अपन गर गये, ऐसा स्वपन आनेसे अपन मरते नहीं है, तेसेही जागृत अवस्थामेंभी, आप के मरनेसे आत्मा मरती नहीं है

३६ ज्ञानी अवसर (वक्त), शक्ती, विभाग, अभ्यास समय, विनय, स्वसमय (स्वमत) परसमय, अभीप्राय,इत्यादी विचार कर इच्छा रहित हो प्रवृतते है.

३७ सरीर जैसा बाहिर असार है, वैसा अदरही है.

३८ जहां ममत्व नहीं है. वोही मुक्ती मार्ग है.

२३ ज्ञानीको आत्म साधन सिवाय अन्य कामकी फुरसतही नहीं मिलती.

२४ परमानन्द आत्मामें ही है. बाहिर क्या ढुंढले हो!

२५ इच्छा है सोही संसार है, इच्छा त्यागसे संसार सहज छुटता है.

२६ जैसे पहरे हुये वस्त्र जीर्ण होते, वेरंगी होते या नष्ट होते सरीर जीर्ण, बेरंगी, और नष्ट नहीं होता है, तैसेही सरीर और जीव जानो.

२७ अज्ञानी, मंद बुद्धीके कारणसे पर वस्तुमें मजा मानते हैं, और ज्ञानी भ्रम नष्ट होनेसे अन्तर आत्मा मेही अनन्द मानते हैं.

२८ स्थिर स्वभावीज मोक्ष पाते हैं, स्थिरता ही सम्यग दर्शनकी ऋद्धी हैं,

२९ लोकीक प्रेमसे वचनालाप, वचना ला चित्त विभ्रम चित विभ्रम सें विकलता विकलतासे चलता यों एक से एक दुर्गुणोकी वृधी जान, लो प्रेम छोड,लोकोत्रसे लगावे.

३० जब ज्ञान होता है; तब जक्त बावला (हले) सा दिखता जब ध्यान होता है, वस्तुका यथार्थ लगता है उससे

है. वैसाही दिखता है. अर्थात राग द्वेष नष्ट होजाता है.

३१ आत्मा आत्माके द्वारा ऐसा विचार करेकी मै आत्माही हूं. सरीरसे भिन्न हूं. ऐसा द्रढ निश्चय होने से फिर स्वपनेमेंभी सरीर भावको प्राप्त न हो, जिस से आत्म सिद्धी होगा.

३२ जाती और लिंगकी अहंता त्यागनेसेही सिद्धी होती है.

३३ जैसे वत्ती दीपकको प्राप्त हो दीपक रूप बनती है. तैसेही आत्मा सिद्धका अनुभव करनेसे सिद्ध रूप होती है.

३४ आत्माको आराधने योग्य आत्माही है; अन्य नहीं. आत्मा आत्माका आराधन करनेसेही परमात्म बने है. जैसे काष्ठसे काष्ट घसनेसे अग्नी होवे.

३५ अपन मर गये, ऐसा स्वपन आनेसे अपन मरते नहीं है, तैसेही जागृत अवस्थामेंभी, आप के मरनेसे आत्मा मरती नहीं है.

३६ ज्ञानी अवसर (वक्त), शक्ती, विभाग, अभ्यास समय, विनय, स्वसमय (स्वमत) परसमय, अभीप्राय,इत्यादी विचार कर इच्छा रहित हो प्रवृतते हैं.

३७ सरीर जैसा वाहिर असार है, वैसा अदरही है

३८ जहा है वोही मुक्ती मार्ग

२३ ज्ञानीको आत्म साधन सिवाय अन्य कामकी फुरसतही नहीं मिलती.

२४ परमानन्द आत्मामें ही है. वाहिर क्या ढुंढते हो!

२५ इच्छा है सोही संसार है, इच्छा त्यागसे संसार सहज छुटता है.

२६ जैसे पहरे हुये वस्त्र जीर्ण होते, वेरंगी होते या नष्ट होते सरीर जीर्ण, वेरंगी, और नष्ट नहीं होता है, तैसेही सरीर और जीव जानो.

२७ अज्ञानी, मंद बुद्धीके कारणसे पर वस्तुमें मजा मानते हैं, और ज्ञानी भ्रम नष्ट होनेसे अन्तर आत्मा मेंही अनन्द मानते हैं.

२८ स्थिर स्वभावीज मोक्ष पाते हैं, स्थिरता ही सम्यग दर्शनकी ऋद्धी हैं,

२९ लोकीक प्रेमसे वचनालाप, वचना लापसे चित्त विभ्रम चित्त विभ्रम सें त्रिकलता विकलतासे चंचलता यों एक से एक दुर्गुणोकी बृधी जान, लोकीक प्रेम छोड,लोकोत्रसे लगावे.

३० जब ज्ञान होता है; तब जक्त यावला (गहले) सा दिखता है. और जब ध्यान होता है, तब वस्तुका यथार्थ स्वभाव भापने लगता है उससे जैसा

है. वैसाही दिखता है. अर्थात राग द्वेप नष्ट होजाता है.

३१ आत्मा आत्माके द्वारा ऐसा विचार करेकी मै आत्माही हूं. सरीरसे भिन्न हूं. ऐसा द्रढ निश्चय होने से फिर स्वपनेमेंभी सरीर भावको प्राप्त न हो, जिस से आत्म सिद्धी होगा.

३२ जाती और लिंगकी अहंता त्यागनेसेही सिद्धी होती है

३३ जैसे वत्ती दीपकको प्राप्त हो दीपक रूप वनती है तैसेही आत्मा सिद्धका अनुभव करनेसे सिद्ध रूप होती है.

३४ आत्माको आराधने योग्य आत्माही है, अन्य नही आत्मा आत्माका आराधन करनेसेही परमात्म वने है जैसे काष्ठसे काष्ट घसनेसे अग्नी होवे.

३५ अपन मर गये, ऐसा स्वपन आनेसे अपन मरते नहीं है, तेसेही जागृत अवस्थामेंभी, आप के मरनेसे आत्मा मरती नहीं है

३६ ज्ञानी अवसर (वक्त), शक्ती, विभाग, अभ्यास समय, विनय, स्वसमय (स्वमत) परसमय, अभीप्राय,इत्यादी विचार कर इच्छा रहित हो प्रवृतते है.

३७ सरीर जेसा वाहिर असार है, वैसा अंदरही है.

३८ जहा ममत्व नहीं है. वोही मुक्ती मार्ग है.

३९ लोकका स्वरूप जाण, लोक सज्ञासे दूर रहना.

४० परमार्थ दर्शी, मोक्ष मार्ग शिवाय, अन्य स्थानमें रती (सुख) नहीं मानते है, वोही मोक्ष पाते हैं.

४१ *केवली भगवानको, न बन्ध है न मोक्ष हैं

४२ परमार्थी दर्शीको, कुछभी जोखम नहीं है.

४३ अज्ञानी सदा निद्रिस्थ है, परमार्थी सदा जाग्रत हैं.

४४ जो शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्शकी सुन्दरता असुन्दरतामें सम प्रणाम रखते है. वो ज्ञान और ब्रह्म (निर्विकल्प सुख) को जाण सक्ते है, और वोही लोकालोक को जाणते है.

४५ कर्मको तोडने सेही, पवित्र आत्माके दर्शन होते है.

४६ जो अपनी तर्फ देखता हैं, वोही सर्व तर्फ देखता है

४७ जो क्रोधको छोडेंगे, वो मानको छोडेंगे, जो मानको छोडेंगे वो मायाको छोडेंगे, जो मायाको छोडेगे, वे लोभको छोडेगे, जो लोभको छोडेंगे, वे रागको छोडेंगे, जो रागको छोडेंगे वे द्वेषको छोडेंगे, जो द्वेषको छोडेंगे, वे मोहको छोडेंगे, जो मोहको

* आचारांग कलम १६०

छोडेंगे, वे गर्भसे छूटेंगे, जो गर्भसे छूटेंगे, वे जन्मसे छूटेंगे, जो जन्मसे छूटेंगे, वे मरणसे छूटेंगे, जो मरण से छूटेंगे वे नर्क से छूटेंगे, जो नर्कसे छूटेंगे, वे तिर्यंचसे छूटेंगे, जो तिर्यंचसे छूटेंगे, वो सर्व दुःखसे छुट परम सुखी होवेगे.

४८ आत्म ज्ञान विन शास्त्र ज्ञान निकम्मा है.

४९ इन्द्रियों के सुखका त्यान कर, आत्म ज्ञान प्राप्त करते ऐसा नहीं जानना की, इन्द्रियोंके सुख छुटनेसे दुःखी वन जाता है, क्योंकि आत्म ज्ञानकी सिद्धी होते अमृत मयही संपूर्ण बन जाता है. ओर उस अमृतपान सें आत्म जन्म मरणका दुःख दूर हो जाता है जिससे परम सुखी वन जाता है

५० हे आत्मन् आत्माके साथ निश्चय कर, मै अतिन्द्रिय हुं, अर्थात मेरे इन्द्रि नही है, तथा मै इन्द्रियोके गोचर आवू ऐसा नहीं हू. तथा इन्द्रियोका शब्दादी विषय है सो आत्मामेनही है इससे अतिन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियातीत हू और अनिर्देश हूं अर्थात् वचन द्वारा मेरा वर्णन नही हो सक्ता, इस लिये वचनातीत हूं ऐसेही मै अमुर्ती हू चैतन्य हूं आनंदमय हूं इत्यादी विचारसे निज स्वरूपमे निश्चल होवे

५१ हे आत्मन्, आत्माके साथ ऐसा विशुद्ध

निर्मल अनुभव कर की यह आत्मा समस्त लोकके यथार्थ स्वरूप को प्रगट करनें वाला अद्वितिय सूर्य है. विश्वमें सामान्य अभीसे दीपकका प्रकाश अधिक गिनते है, दीपकसे मशालका, मशालसे ग्यासका और ग्याससे बिजलीका प्रकाश अधिक पडता है. इन कृतिम प्रकाशसे स्वभाविक चन्द्रमा का प्रकाश अधिक है, और चन्द्रके प्रकाशसे सूर्यका प्रकाश अधिक लगता है. पगंतु आत्म ज्ञानके प्रकाश तुल्यता कोटी सूर्य भी प्रकाश नहीं कर सक्के हैं, अन्य दीपका दिक के प्रकाशको वायू वगैरे घातिक वस्तुका और चंद्र सूर्य को राहू वद्दल वगैरे के अच्छादन होनेसे तथा अस्त होनेसे प्रकाशका नाश होता है. परंतु आत्म ज्योतीको मेरु पर्वतको हलाने वाला वायूभी नही बुज सक्ता है और न वद्दल या राहू, उसे अच्छादन (ढक्कन) दे सक्ते हैं. आत्म जोती यथा रूप प्रकाशित होनेसे तीन लोकके सुक्ष्म वादर चराचर सर्व पदार्थ एक वक्त एक ही समय मात्रमें भाष होने लगते है, तव आत्मा परमानंदी बनता है. इत्यादी विचार में प्रवृते सो अंतर आत्मावाला जाणना. अंतर आत्माको प्राप्त हुवेही परमात्मा होते है.

तृतीय पत्र-"परमात्मा"

३ "परमात्मा" सर्व कर्म रहित अनंत ज्ञानादि अष्ट गुण सहित सिद्धी (मुक्ति) स्थानमे संस्थित अ जरामर अविकार, सिद्ध परमात्मा है, वोही परमात्मा है

पुष्पम-फलम्

यह तीनही आत्माका ध्यान, विशेषता से अ प्रमत मुनी को होता है. क्यों कि अप्रमत पणाई ध्यानकी विशुद्धता, उत्कृष्टता करता है. उसके जोर से महामुनी आगे गुणस्थान रोहण सुखे २ कर, सर्व क र्मको क्षपाके सिद्धस्थान प्राप्त कर सक्ते है.



द्वितीय शाखा-"उपध्यान" चार.

"श्लोक" पिण्डस्थच पदस्थंच, रूपस्थ रूप वर्जितम्
चतुर्द्धा ध्यान माम्नात, भव्यरा जीव भास्करैः
ज्ञानार्णव अ० ३६

अर्थ—१ पिण्डस्थ ध्यान २ पदस्थ ध्यान. ३ रूपस्थ ध्यान. और ४ रूपातीत ध्यान इन ४ ध्यानके ध्यानेसें भव्य जीवों, केवल्य ज्ञान रूप भास्कर (सूर्य) को प्राप्त कर सक्ते है अब इनका अर्थ—

श्लोक पदस्थं मन्त्र वाक्यस्थं, पिण्डस्थं स्वात्म चिन्तम्
रुपस्थं सर्व चिद्रुपम्, रुपातीतं निरञ्जनम्
द्रव्य संग्रह

अर्थ– १ मूल मंत्राक्षरोका स्मरण करना, सो पदस्थ ध्यान.

२ स्व आत्मके पर्यायका विचार करना सो पिण्डस्थ ध्यान

३ चिद्रूप अर्हत भगवंतका ध्यान करना सो रुपस्थ ध्यान.

और ४ निरंजन निराकार सिद्ध परमात्म का ध्यान करना सो रुपातीत ध्यान.

प्रथम पत्र–पदस्थ ध्यान.

१ 'पदस्थ ध्यान"=मन्त्र (मनको त्रस करे ऐसे पद (वाक्य) सो इस जक्तमे मतांतरो की भिन्नतासे इष्ट देवो विषय श्रधा मे भी भिन्नता हो गइ है. इसी सबब से भिन्न २ मतावलम्बीयों, भिन्न २ देवो के नामसे मंत्र रचना कर, उनका स्मरण करते हैं. जैसे–"ॐ नमः शिवाय" "ॐ नमो वासुदेवायः वगैरे. तैसे जैन मतमें माननिय, अनादी सिद्ध देवाधी देव, पंच परमेष्टी हैं उनका स्मरण सर्वोत्तम हैं, वो अनेक प्रकारसे किया जाता है. यथा–

गाथा पणत्तीस सोलड ठप्पण, चउ दुग मेगच ज-
वह ज्झाएह, परमेठी वाचयाण, अण्णं च
गुरुवए सेण १ द्रव्य समह.

अर्थात—पैंतीस (३५) सोले (१६) अठ (८) पांच (५) चार (४) दो (२) एक (१) इस प्रमाणें अक्षरो के स्मरण से पंच प्रमेष्टी योंका जप-ध्यान हो सक्ता हें. और इस सिवाय अन्यभी तरह, मुन्याधिक अक्षरोंके साथ प्रमाणसे पंच प्रमैष्टी का ध्यान होता हैं. सो गुरु गम्मसे धारण कर जाप करना

३५ अक्षरका मूल मन्त्र.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
ण मो अ रि हं ता णं, ण मो सि द्धा णं, ण मो
१५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
आ य रि या णं, ण मो उ व ज्झा या णं, ण मो
२९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५
लो ए स व्व सा हू णं,

षोडस (१६) अक्षरी मन्त्र

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
'अ रि हं त, सि द्ध, आ चा र्य, उ पा ज्झा य,
१५ १६
सा हू,*

* इसमें पच प्रमैष्टीके नाम मात्र हैं.

'अठ (८) अक्षरी व पंचाक्षरी (५) मन्त्र

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ १ २ ३ ४ ५

अ रि हं त सि द्ध सा हू* ॥ अ, सि, आ, उ, सा,†

चार, दो, और एकाक्षरी मन्त्र.

१ २ ३ ४ १ २ १

सिद्ध साहू,‡ ॥ सिद्ध§ ॥ ॐ¶ ॥

---

* इसमें अरिहंत और सिद्ध दो मूल मन्त्र के पद कायम रख, पीछे के तीन पद एक साहू शब्द में लिये हैं क्यों कि आचार्य, उपाध्याय, और साधू यह तीन साधू ही होते हैं

† इसमें— 'अ' से 'अरिहन्त, 'सि' से सिद्ध 'आ' से आचार्य 'उ, से उपाध्याय और 'सा, से साहू. यों एकेक अक्षरका जाप है

‡ इसमें 'अरिहंत' और 'सिद्ध' इन दोनो को सिद्ध पदमें लिये क्यों कि अरहन्त भी आगे सिद्ध होने वाले हैं उन्हे सिद्ध कहनेमें कुछ हरकत नहीं, और आचार्यादि तीन पद साधु पदमें समाये सो तो पीछे कह दिया है

§ 'सिद्ध' पद छोड बाकीके चारही पदकी मुख्य इच्छा सिद्ध पद प्राप्त करनेकी हैं इस हेतूसे पांचही पदको एक सिद्ध कहनेमें कुछ हरकत नहीं है

¶ गाथा—'अरिहंता, असरीरा, आयरिया, उवज्झाय, मुणिणो पंचख्खर निप्पन्नो ॐकारो पच पर मिठि" अर्थ—अरिहंत की आदीमें 'अ' है असरीर (सिद्ध) की आदीमें भी 'अ' है और आचार्य के आदीमें भी 'आ' दीर्घ है उपाध्याय की आदीमें 'उ' है और मुनी (साधु) की आदीमें 'म' है, यह पांच अक्षर अ-अ-आ-उ-म् व्याकर्ण सिद्ध हेमचन्द्राचार्य कृत शाकटायन के सुत्रसे तीनो दीर्घ 'अ' मिल एक दीर्घ 'आ' बना, तब 'आउम' ऐसा हुवा 'आ' कार और 'उ' कार मिलनेसे 'ओ' कार होता है और मकार बिन्दूरु होनेसे ओं (ॐ) कार सिद्ध हुवा

यह पंच प्रमेष्टी के जाप स्मरण की संक्षेपसे रीत बताइ और भी इस सिवाय, शास्त्र ग्रन्थमें स्म; रण करने के मन्त्र कहे हैं. उसमे के कुछ यहां दर्शाये जाते हैं

गाथा — मङ्गल शरणो पदानि, कुरस्वं यरतु संयमी स्मपति अविकल मेकाग्रधिया, सचा पवर्ग श्रिय श्रयाति.

अर्थात—मङ्गल, शरण, और उत्तम इनका जो स्मरण करते हैं, वे मुनीराज मोक्षरूप महा लक्ष्मीका आश्रय लेते है सो—

मन्त्र — चात्तारि मङ्गल, अरहन्ता मङ्गल, सिद्ध मङ्गल, साहु मङ्गलं केवालि पण्णतो धम्मो मङ्गलं, चत्तारी लोगुत्तमा-अरहन्त लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलि पणतो धम्मो लोगुत्तमा, चत्तारि सरणं पव्वज्जामी, अरहन्त सरणं पव्वज्जामी, सिद्ध सरणं पवज्जामी साहू सरणं पवज्जामी केवलि पणतो धम्म सरण पव्वज्जामी.

सूत्र—चउवी सत्य एण दंसण विसोहि जणयइ उत्तरध्येन

अर्थ—चउवी सत्य (चतुर्वीस जिनरत्तनं) सेल. अर्थात्–चौवीस जिन (तिर्थंकर) की स्तुती (गुणग्रा-

म) करनेसे, दर्शन (सम्यक्त्व) की विशुद्धता, निर्मलता, होती हैं. वो चउवी सत्व. यह हे.

मन्त्र लोगस्स उज्जोयगरे, धम्म तित्थयरे जिणे, अरिहंत केतइसं, चउवी संपि केवली.१ उसभ माजियंच वंदे संभव माभिनंदण च सुमइंच पउमप्पहं सुपास, जिणंच चंदप्पहं वंदे,२ सुविहं च पुप्फदत शिअल सिज्जंच वासु पुज्जंच मिमल मणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ३ कुंथु अरंच मल्लिं, वंदे मुणि सुव्वय नमि जिणं च वंदामि रिट्ठ नेमि पासंतह वद्धमाणंच ४ एवं मय अभिथ्थुया, विहुय रयमला, पहीणं जर मरणा, चउवि सपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसिथंतु ५ कितिय वंदिय माहिया जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा. आरुग्गं वोहिलाभं सामाहिवर मुत्तम दिंतु ६ चंदे सुनिम्मल यरा, आइच्चेसु अहिय पयास यरा, सागर वर गंभीरा, सिद्धा सिद्धीं मम दिसंतु.

सूत्र—थय थुइ मगलेण नाण दसण चरित्त वोहिलाभ जणयइ, नाण दसण चरित्त वोहिलाभ सपणेणं जीवे, अंत किरिय कप्पां विमाणो ववत्तियं आराहणे आराहेइ,

अर्थ, थय थुइ [स्तुतीरूप]मंगल सो नमोत्थुण रूप मंत्र पढनेसे ज्ञानकी निर्मलता होय. बुद्धिकी वृद्धीहोय. दंशण की निर्मलता होय सम्यक्त्व शुद्ध होए. चारित्रके गुणकी वृद्धी होए.

२४ होए और ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी शुद्धी होनेसे मोक्ष की प्राप्ती होती हैं, कदास पुण्य की वृद्धी हो जाय तो १२ देवलोक ९ ग्रेयवेक ५ अनुत्तर विमान इसमे महारिद्धिक देव होए.

मन्त्र—नमोत्थुणं, अरिहताण, भगवताण, आइगराण, तित्थयराण, सय स बुद्धाणं, पुरिसुत्तमाण, पुरिससिहाणं पुरिसवर पुडरियाण, पुरिसवर गध हत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोग नाहाणं, लोग हियाणं, लोग पइवाणं, लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं, चक्खूदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाण, बोही दयाण, धम्म दयाणं, धम्म देसियाणं, धम्म नायगाणं, धम्म सारहीणं, धम्म वर चाउरंत चक्कवटीणं, दीवो ताणं सरण गइ पइहा. अप्पडी हय वरनाण दंसण धराण, वियट्ट छउमाणं, जिणाण जावयाणं, तिन्नाणं तार याणं, बुध्धाण, बोहियाण, मुत्ताणं, मोयगाणं, सव्वन्नुण, सव्वदरिसिण, सिव मयल-मरुय मणंत-मख्खय म-व्वावाह, मपुणरावीती. सिध्दिगइ नाम हेयं ठाण संपताणं नमो जिणाणं, जिय भयाणं (यह यय शुइ मंगलं)

यह नवकार चउवीस्तव (लोग्गस्स) और नमोत्थुणं यह तीन स्मरण तो यहा बताये, और इन सिवाय जित्ने जिन भापित सुत्रों की सज्झाय (मूल पाठका पढना) तथा और भी श्रीजिनस्तव तथा मुनीस्तव.

वैराग्य आत्मज्ञान गर्भित. अध्यात्मिक, शांतादी रस से भरपूर. इत्यादी जो स्वध्याय परियट्टणा रूप ज्ञान करना सो सब पदस्थ ध्यान जाणना*

अनुभव युक्त पदस्थध्यान ध्यानेसे जीव परमोत्कृष्ट रस में चडाहुवा महा निर्जरा करता है

द्वितीय पत्र पिण्डस्थध्यान

२ पिण्डस्थध्यान=पिंड=सरीर में. स्थरहीहुइजो आत्मा उसकी भिन्नता का चिंतवणा सो पिणुस्थ ध्यान.

गर्भित पुद्गल पिण्डमे, अलख अमूर्ती देव
फिरे सहज भव चक्रमें, यह अनादी टेव

अर्थात्—यह पिण्ड [सरीर] सप्त [७] धातूओं करके बना हुवा. महा अशुचीका भंडार, क्षिण २में पर्याका पलटने वाला. मृगापुत्रके फरमान मुजब "वाही रोगाण आलए" अर्थात्—आधी [चिता] व्याधी[रोग] उपाधी [दुःख] का घर, ऐसे सरीरमें अलख—जो लक्ष [अक्कल] में जिसका गुण न आवे. (समावे) ऐसे और अमूर्ती जो देखनेमे न आवे, ऐसे देव विराजमान हैं परन्तु अनादी कालसे जिनका फिरनेकाही स्वभाव

---

*"ॐ" यह पदस्थ ध्यानका 'बीज मंत्र' हे

देहाध्याससे व कर्म संयोग कर हो रहा है, जिससे संसार चक्रवालमें, अनंत परिभ्रमण कर रहा है. इस का मुख्य हेतू यह है की—

जो जो पुद्गल की दिशा, ते निजमाने हंस
याही भरम विभाव ते, बढे कर्मको वंस.

जो जो जगतमें पुद्गली पदार्थ हैं, उनको अपने मान रहा है, और उनका स्वभाविक स्वभावसें पलटा पटनेसे अर्थात् पुद्गलोंका संयोग वियोग होनेसे आपनाही संयोग वियोग समजता हैं, मतलवकी अपनी अंनत ज्ञानमय जो चैतन्य अवस्था हैं, उसको कर्मो के नशेसे छकहो भूलगया भ्रमसे पडगया, और अपना स्वभाव को छोड विभाव में राच— माच रहा है, जिसीसे कर्मों की वृधी होती है ओर भव भ्रमण करणा पडता है कहा है—

कर्म संग जीव मुढ है पावे नाना रुप
कर्म रुप मल्के टले चैतन्य सिद्ध स्वरुप

यह सब कर्म की संगती काही स्वभाव है, न की चैतन्यका क्योंकि चैतन्य तो सिद्ध स्वरुपी परमात्मा रूप है. इसका भव भ्रमणमें पडनेका स्वभाव है हीनही जो होय तो सिद्ध भगवंत को भी पुनर जन्म लेनापडे परन्तु कर्मों संयोगसे मूढ हो एकेंद्रीया-

दिकयोनी में अनेक प्रकार का रूप धारन करता हैं. और जबकर्म रूप मैल दूर हुवा देहाध्यास छूटा की निजरुपको सिद्ध स्वरूप को प्राप्त होजाता हैं.

संसारी जीवों को अनादी कालसे, ज्ञानावरणि यादी कर्मों का सम्बन्ध होने से, आत्मा की अनंत ज्ञानमय चैतन्य शक्ती लुप्त हुइहैं. इस लिये विभाव रूप हो रहाहैं. जैसे कीचड के संयोगसे पाणी की स्व च्छता नष्ट होती हैं, तैसे ही कर्म संयोगसे चैतन्य विभाव रुप हुवाहैं. जब भवस्थिती परिपक्व होतीहै त ब सम्यक्त्वादी सामग्री प्राप्त होतीहैं. तब कर्म सम्बन्ध नष्ट हो शुद्ध चैतन्यता प्रगट होतीहै, उसीहीवक्त जी व सर्वज्ञाताको प्राप्त हो एक समयमें त्रिकाल के सर्व पदार्थ जानने देखने लगता हैं

सिद्धा जैसा जीवहैं, जीव सोही सिद्ध होए
कर्म मैलका अतग, बूजेविरला कोए
कर्म पुद्गल रूप हैं जीव रूप है ज्ञान
दो मिलके बहुरूप हैं बिछडे पद निर्वान

इस लिये यह जीव सिद्ध स्वरुपी हीहैं, क्योंकि जीव ही सिध्द पदको प्राप्तकर शक्ता हैं अन्य नही. दे खनाही हैं की, कर्म और जीव का मूल स्वभाव पह चानना चाहीये; कर्महै सोपुद्गल जणितहैं, पुद्गल मय

रुपी निर्जीव जड पदार्थहैं, और जीव ज्ञान स्वरुप अ-रुपी चेतना वंत हैं इन दोनोका अनादी सम्बन्ध के सबबसेही देहाध्यासके प्रभावसेही भवांतरों में अनेक तरहका कायारूप धारण करता है ऐसे जानने वाले जक्तमें थोडें है जो यह जानेंगे. वोही कर्म सम्बध तोड, निर्वाण प्राप्त करनेका उपाय करेंगे.

गाथा— जीवो उव ओगम ओ, अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो. भोत्ता ससारत्थो सिद्धो, सो विस्स सेड्ढगइ
द्रव्य सग्रह

'जीवा'=यह जीव शुद्ध निश्चयसे आदी मध्य और अंत रहित स्व तथा परका प्रकाशक, उपाधी र-हित शुद्ध ज्ञान रुप निश्चय प्राणसें जीता है. तो भी अशुद्ध निश्चय नयसे, अनादी कर्म बन्धके वशसे, अ-शुद्ध जो द्रव्य प्राण, और भाव प्राण उनसे जीता है.

[1] त्रीकालमें जीवके चार प्राण होते है, १ इन्द्रियोके अगो-चर शुद्ध चैतन्य प्राण, उसके प्रति पक्षी क्षयोपशमी इन्द्रि प्राण. २ अनत वीर्य रुप बलप्राण, उसका अनंत वा हिस्सा मन 'बल' वचन बल, कायाबल, प्राण है ३ अनत शुद्ध चैतन्य प्राण उससे विप्रीत आदी अंत सहित आयुप्राण है और ४ श्वासोश्वासादि खेद रहित शुद्ध चित प्राण उससे उलट श्वासोश्वास प्राण है यह ४ द्रव्य प्राण और ४ भाव प्राणसे जो जीया है और जीयेगा वो व्यवहार नयसे जीव है.

दिकयोनी में अनेक प्रकार का रूप धारन करता हैं. और जवकर्म रूप मैल दूर हुवा देहाध्यास छूटा की निजरुपको सिद्ध स्वरूप को प्राप्त होजाता हैं.

संसारी जीवो को अनादी कालसे, ज्ञानावरणियादी कर्मों का सम्बन्ध होने से, आत्मा की अनंत ज्ञानमय चैतन्य शक्ती लुप्त हुइहैं. इस लिये विभाव रूप हो रहाहैं. जैसे कीचड के संयोगसे पाणी की स्वच्छता नष्ट होती हैं, तैसे ही कर्म संयोगसे चैतन्य विभाव रुप हुवाहैं. जब भवास्थिती परिपक्व होतीहैं तब सम्यक्त्वादी सामग्री प्राप्त होतीहैं. तव कर्म सम्बन्ध नष्ट हो शुद्ध चैतन्यता प्रगट होतीहै, उसीहीवक्त जीव सर्वज्ञाताको प्राप्त हो एक समयमें त्रिकाल के सर्व पदार्थ जानने देखने लगता हैं

सिद्धा जैसा जीवहै, जीव सोही सिद्ध होए
कर्म मैलका अंतरा, बूजेविरला कोए
कर्म पुद्गल रुप है और रुप है ज्ञान-
दो मिलके बहुरूप हैं विछड पद निर्वान

इस लिये यह जीव सिद्ध स्वरुपी हीहै, क्योंकि जीव ही सिध्द पदको प्राप्तकर शक्ता हैं. अन्य नहीं. देरइल्लीही हैं की, कर्म और जीव का मूल स्वभाव पहचानना चाहीये; कर्महैं सोपुद्गल जणितहैं, पुद्गल मय

रुपी निर्जीव जड पदार्थहै, और जीव ज्ञान स्वरुप अरुपी चेतना वंत हैं. इन दोनोका अनादी सम्वन्ध के सवबसेही देहाध्यासके प्रभावसेही भवांतरों में अनेक तरहका कायारूप धारण करता है. ऐसे जानने वाले जक्तमें थोडें हैं जो यह जानेंगे वोही कर्म सम्बध तोड, निर्वाण प्राप्त करनेका उपाय करेंगे

गाथा॥ जीवो उव ओगम ओ, अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो. भोत्ता संसारत्थो सिद्धो, सो विस्स सेड्ढगइ

द्रव्य संग्रह

'जीवा'=यह जीव शुद्ध निश्चयसे आदी मध्य और अंत रहित स्व तथा परका प्रकाशक, उपाधी रहित शुद्ध ज्ञान रूप निश्चय प्राणसे जीता है तो भी अशुद्ध निश्चय नयसे, अनादी कर्म वन्धके वशसे, अशुद्ध जो द्रव्य प्राण, और भाव प्राण उनसे जीता है

[1] त्रींकालमें जीवके चार प्राण होते है, १ इन्द्रियोंके अगोचर शुद्ध चैतन्य प्राण उसके प्रति पक्षी क्षयोपशमी इन्द्रि प्राण. २ अनंत वीर्य रुप वलप्राण, उसका अनत वा हिस्सा मन 'बल' वचन वल, कायावल, प्राण है ३ अनत शुद्ध चैतन्य प्राण उससे विपीत आदी अंत सहित आयुप्राण है और ४ श्वासोश्वासादि खेद रहित शुद्ध चित प्राण उससे उलट श्वासोश्वास प्राण हैं यह ४ द्रव्य प्राण और ४ भाव प्राणसे जो जीया है और जीवेगा वो व्यवहार नयसे जीव हैं

इस लिये जीव है. 'उव ओगम ओ'=शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे परिपूर्ण निर्मल दो उपयोग है, वैसाही जीव है; तो भी अशुद्ध नयसे क्षयोपशमिक ज्ञान और दर्शन युक्त हैं. 'असुति' जीव व्यवहार नयसे, मुर्ती कर्माधीन होनेसे वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, रूप, मुर्ती दिखता है; तोभी निश्चय नयसे असूर्ती इंन्द्रियोंके अगोचर शुद्ध स्वभावका धारक है. 'कत्ता' जीव निश्चय नयसें क्रिया रहित निरूपाधी ज्ञायकैक स्वभावका धारक है। तोभी व्यवहार नयसे मन वचन कायाके व्योपारको उत्पन्न करने वाले, कर्मो सहित होनेके सबबसे, शुभाशुभ कर्मोका कर्ता हें 'सदेह परिमाणो' जीव निश्चयसे स्वभावसे उत्पन्न शुद्ध लोकाकाशके समान *असंख्यात प्रदेशका धारक है तोभी सरीर नाम कर्मोदय से उत्पन्न संकोच विस्तारके स्वाधीन हो. देह प्रमाणे होता हें. जैसे दीपक भाजन प्रमाणें प्रकाश

* केवल ज्ञानी आयुष्य कर्म थोडा रहे, और वेदनी अधिक रहे, तब दोनोको बराबर करने अठ समयमें समुत्घात होती है आत्म प्रदेशका १ समय चउदे राजु लोकमें उंचा नीचा का दंड २ समय कपाट ३ समय मथन ४ समय अतर पुरे (उस वक्त सर्व लोकमें आत्मा व्याप जाती है) ५ स अतर सारे ६ मथन सारे ७ कपाट सारे ८ मदंड सारे

कर्ता है. 'भोत्ता' जीव शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे, रागादी विकल्प रहित, उपाधी सें शुन्य हैं. और आत्म स्वभाव से उत्पन्न हुवा सुख रूपीअमृत को भोगवने वाला है, तोभी अशुद्ध नयसे पूर्वोक्त सुख रुप भोजन; के अभावसे शुभा शुभ कर्म से उत्पन्न हुये सुख और दुःखका भोगवने वाला है. संसारत्थ' जीव शुद्ध निश्चय नय सें संसार रहित, नित्यान्द रुप एक स्वभावका धारक हैं, तोभी अशुद्ध नय से द्रव्य— क्षेत्र— काल— भाव— और भव इन पांच प्रकार के संसार में रहत्ताहैं. सिद्धो' जीव व्यवहार नय से निज आत्म की प्राप्ती स्वरूप जो सिद्धत्व हैं, उसके प्रतिपक्षी कर्मोदय से असिद्ध हैं तोभी निश्चय नय से अनंत ज्ञानादी गुण के स्वभावका धारक होने से सिद्ध हैं. विस्स सोड्ढ गइ' जीव व्यवहार से चार गतिमें भ्रमण करने वाले कर्मोदय से उंची नीची तिरछी दीशामें गमन करने वाला हैं. तोभी निश्चय से केवल ज्ञानादी अनंत गुणोंकी प्राप्ती रुप जो मोक्ष हैं. उसमेंजाती वक्त स्वभावसेही उर्ध गमनकर्ता हैं.

शुद्ध चैतन्य उज्वल द्रव, रह्यो कर्म मल छाय.
तप सयमसे धोवतां, ज्ञान ज्योती वट जाय

'ऐसा जाण मुमुक्षु प्राणीयों को देह पिण्ड कर्म

पिण्ड से आत्मा चैतन्य को अलग करने का ज्ञान युक्त तप संयम करो. कि जिससें कर्म रहीत शुद्ध, चैतन्य,* ज्ञान स्वरूप वन जाय. क्यों की ज्ञानादी रत्नों का भाजन चैतन्यही है, ज्यों चांदी खटाइ सें धोनेसें उज्वलता आतीहैं. तैसें चैन्तय उज्वलहो—

ज्ञानथकी जाणे सकल, दर्शन श्रधा रूप.
चारित थी आवत रूके, तपस्या क्षपन स्वरूप.

ज्ञान से चैतन्य की और कर्म की प्रणती पहचाने; दर्शन से उसेजिनोक्त आगम प्रमाणे सत्य श्रधे. चारित्रसे जीव और कर्मका अलग करनेके मार्ग लगे. और तप करके जीव और कर्म अलग करे यह उपाय.

जीव कर्म भिन्न २ करो, मनुष्य जन्मको पाय.
ज्ञानात्म वैराग्य से. धैर्य ध्यान जगाय.

मनुष्य जन्ममेंही होता है. इस लिये हे मोक्षार्थीयों! यह इष्टार्थ सिद्धीका अवसर मनुष्य जन्मा दी सामग्री प्राप्त हुइ है तो अब वैराग्य धैर्य युक्त धारण कर ज्ञान युक्त ध्यानस्त वन जीवको कर्मसे अलग करे.!!

* जैसे स्फटिक रत्न स्वभावसेही निर्मल उज्वल होता है. परंतु उसके नीचे अन्य रक्तादी रंगका पदार्थ रखनेसे वो रंगमय दिखता है तैसेही आत्मा कर्मोदय प्रमाणेही भासता हैं परतु है निर्मल.

यों जीव और कर्मकी भिन्नता जाणनेका, तथा उन्हे भिन्न २ करनेका उपाय संक्षेपमें कहा, औरभी ग्रंथकार कहते हैं.*

* पिंडस्थ ध्यानमें सास्थित होनेसे आत्माकी ज्ञान जोतीको प्रकाशित करनेका सरल उपाय एक ग्रन्थकार ऐसा कहते है की— शुभध्यानमें कहे मुजब, द्रव्यादी शुभ सामुग्री युक्त ध्यानस्त हो, अत करण में विचारे बाहिर श्वास निकलते की मै स्वस्थान छोड बाहिर आया, और पुन अन्दर श्वास जाती वक्त विचारे की, मै अन्दर चला यों विचारही विचारसे सिरस्थानसे कठस्थान और कठस्थानसे नाभीकमलस्थान पे जा विराजमान होवे और वहां स्थिर हो अन्दरको द्रष्टीको खुली कर देखने ऐसा भाषा होगा की मै नाभी कमल पेही संस्थित हूं, यो जब अपनी आत्माका सुक्ष्म स्वरूपका भान होवे तब उस सुक्ष्म स्वरूपकी द्रष्टी खुली कर नाभीके आजु बाजु चारही तर्फ अवलोकव करे, यों धैर्य और द्रढ निश्चयके साथ अवलोकन करनेसे जो अन्धकार देखाय तो, उसी वक्त द्रढ निश्चयसे कल्पना करे, की इस अन्धकारका शिघ्र नाश होवो, और अनंत प्रकाशी सूर्य मंडलका मेरे हृदय में प्रकाश होवो यों कहता हुवा सुक्ष्म रूपसेही आकाशकी तर्फ (उंचा) अवलोकन करे, के उसी वक्त सूर्य जैसा प्रकाश अत करण में दिखने लगेगा, यों हमेशा अभ्यास रखनेंसे अतर आत्मा की ज्ञान ज्योतीमें दिनो दिन विशुद्धता की अधिकता होती है और अतारिक गुप्त वस्तुओं जाणनेमें आने लगती हे और अनेक गुप्त शक्तीयों प्रगट होती है

पिण्डस्थ ध्यानमें ९ तत्वके विचार करनेसे भी ज्ञान ज्योती प्रकाश होता है, ऐसा भी एक ग्रन्थकार लिखते हैं, सो ध्यानस्त

ऐसेही पिण्डस्थ ध्यानमें "सप्त भंगीसे आत्म-तत्व" विचारे. १ प्रत्येक पदार्थ अपने २ द्रव्य चतुष्टय

हो, द्रढता पूर्वक पहले पृथवी तत्वका विचार करता गोलाकार पृथवी के मध्य क्षीर सागर और उसके मध्यमें जंबुद्विपका कमल ठरावे मेरु पर्वत को किरणिका ठेहरा उसमें सिंहासनकी कल्पना कर उसपे आप बेठे फिर दूसरा अग्नी तत्वका विचार करता हृदयमें १६ पंखुडीके कमलपे 'अ' स्वरसे लगा १६ मा अः स्वरकी स्थापन कर मध्यमें 'र्हं' बीज स्थापे, फिर विचार करे की इसमे धुम्र निकलने लगा, और महाज्वला प्रगट हो कमल को भस्म कर भसके अभावसे अग्नी शांत हुइ फिर ३ वायुका विचार करे के महा वायु प्रगट हो मेरुको कम्पाने लगा. और पहलेकी भस्म उडा ले गया जिससे वो जगा साफ होगइ फिर ४ पाणी तत्व विचारे की आकाश मे गर्जारवहो बुंद पडने लगा और महामेघ वर्षके उस स्थानको अत्यत स्वच्छ कर दीया और मेघ भगगया फिर ५ मा आकाश तत्व विचारेकी अब मेरी आत्मा सप्त धातू मय पिंड रहित, पूर्ण चन्द्रके समान प्रकाशित निर्मल सर्वज्ञ देवतुल्य हुइ यह द्रढतासे निश्चयात्मक बननेसे हुवेहू बनाव द्रष्टी आता है.

¶ अपने २ द्रव्य चतुष्टयसे सर्व पदार्थ सत्य हैं. जैसे आत्मा ज्ञानादी गुणका भाजन (आधार) ही है. परन्तु ज्ञानादी गुणोंमें जो समय २ मे फेरफार होता है सो पर्यायोंका होता है, न की स्वभावोंका २ आत्माके असंख्यात प्रदेशोमें जो ज्ञानादी गुण रहे है सो स्व क्षेत्र है ३ पर्यायोमे जो उत्पात व्यय क्षिण २ में होता है, सो स्व काल हे और ४ आत्माके गुणोंका और पर्यायोंका जो कार्य धर्म है सो स्वभाव है

(द्रव्य क्षेत्र काल भव) की अपेक्षा से असति रूपहैं. जैसे आत्मा में ज्ञानादी गुण का सदा आस्तीत्व होता हैं. इस लिये * स्यात् आस्ति होय २ और वोही पदार्थ अन्य (पर) द्रव्य चतुष्टय की अपेक्षा से नास्ति रूप हैं. जैसे आत्मा जडता (अचेतन्यता) रहित हैं, इसलिये स्यात् नास्ति होय ३ सर्व पदार्थ अपनी २ अपेक्षा सें आस्ति रूप हैं. और परकी अपेक्षासे नास्ति रुप हैं. जैसे आत्मा में चैतन्यता की आस्ति और जडता की नास्ति, इस लिये एक ही समय में स्यात् आस्ति नास्ति दोनो होय. ४ पदार्थ का स्वरूप एकांतता से जैसा का वैसा कहा नहीं जाय, क्योंकि जो आस्ति कहेंतो नास्तिका और नास्ति कहे तो आस्ति का अभाव आवे. इसलिये एक ही समय में दोनो भाव प्रकाशे नही जाय; केवल ज्ञानी एक समयमे वरोक्त दोनों भावकों जाणतो शक्तें है. परन्तु वाणी द्वारा वागर नहीं शक्तेंहैं तो अन्य की क्या कहना; इसलिये स्यात् अवक्तव्यं, ५ एकही समयमें आत्मा में सर्वस्व पर्यायों का सद्भाव आस्तित्व हैं और पर पर्यायों का सद्भाव नास्तित्व हैं और दोनो भाव

---

* स्याद् या स्यात शद्बका अर्थ 'होगा' अर्थात् हां' एसेभी होगा ऐसा होता है.

एकही वक्त कहें नहीं जाय, आस्तिक है तो नास्तिका आभाव आवें, मृशा लगे, इसलिये स्याद आस्ति अवक्तव्य होय ६ और इसही तराह जो नास्ति कहै तो आस्तिक अभाव आवे इसलिये स्यात् नास्ति अवक्त होय. ७ आस्ति के कहने से नास्ति का अभाव, नास्तिके कहने से आस्तिका अभाव, और पदार्थ एकही काल में आस्ति नास्ति दोनो तरह हैं परन्तु कहेजाय नहीं क्यों की वाक्या तो कर्म वृती है इसलिये स्यत् आस्ति नास्ति अवक्तव्य होय यह आस्ति नास्ति अश्रिय स्यात् वाद मत सें आत्मास्वरूप दर्शाया.

एसेही नित्य, अनित्य; सत्य, असत्य; वगैरे अनेक रीतीसे आत्म स्वरूपके विचारमें जो निमग्न हो पूद्गल पिण्ड से आत्माकी भिन्नता लेखे, निश्चय आत्मिक बने.

यह सब पिण्डस्थ ध्यानमें चिंतवन करनेका

मनहर—पाणी हारी कुंभरु, नटवर-वृतमें, कामीको-कन्ता, सती-पती चहाइ, गौ-वच्छ, बालक-मात, लोभी-धन, चकवी-सूर्य, पपैया-मेहाइ; कोकिल-अम्ब, नेसायर-चन्द्र ज्यों, हंसो-दधी, मधू-मालती, ताइ, भयवत-सरण, आर्यकी औषधी, 'अमोल' निजात्म त्यों नित्य ध्याइ. १

मुख्य हेतु, सर्व वस्तुओंमे मन रमण करता है उससे निवार, एक आत्माके तर्फ लगानेके लियेही है. आत्माके तर्फ मन लगनेसे अन्य पुद्गलोको ग्रहण नही करता हैं, जिससे नवीन कर्मका वन्ध नहीं होता है. ज्यूंने कर्म क्षिण २ में अलग हो आत्म ज्योती पूर्ण प्रकाश पाती है. तब सर्व कार्य सिद्ध होते हैं.

ऐसे पिण्डस्थ ध्यानका संक्षेपमें विचार इत्ना ही है की, ज्ञानादी अनंत पर्याय का पिण्ड एकमे आत्मा हूं. और वर्णादी अनंत पर्यायका पिण्ड, कर्म तथा उससे उत्पन्न हुवा सरीर है. इस लिये दोनो के स्वभाव भिन्न भिन्न होनेसे दोनो अलग २ हैं. ऐसा निश्चय होयसो पिण्डस्थ ध्यान. इस ध्यानसे भेद विज्ञान प्राप्त होता है जिससें आत्म स्वभावमें, अत्यत स्थिरता भाव युक्त, क्षांत, दांत, आदी गुण स्वभाविक जाग्रत होनेसे, सर्व भयसे निवृत्ती होती है उन्हे महा भयंकर स्थानमें, क्षुद्र प्राणीयोंके समोह में या प्राणांतिक उपसर्गके प्रसगमेभी किंचितही क्षोभ प्राप्र नहीं होता है, अखंडित ध्यानकी एकाग्रता से वो स्वल्प कालमें इष्टार्थ साधते हैं



तृतीय पत्र "रूपस्थध्यान"

३ "रुपस्थध्यान"=रूपी परत्माके गुणमें स्थिर होना' सो रूपस्थध्यान, अर्हंत पाहुडमें कहा है–

जें जाणइ अरिहंते, दव्व गुण पज्जवेहिय;
ते जाणइ नियऽप्पा, मोह खलु जाइय लयं.

अर्थात्–जो अर्हंत भगवंतका स्वरूप, द्रव्य, गुण, पर्याय, करके जाणेगा, वोही आत्माके स्वरूप को जाणेगा. और जो आत्माको पहचानेंगा वोही मोह कर्मका नाश करेगा.

अर्हंत, अरिहंत. और अरूहंत यों ३ शब्द हैं. १ देविन्द्र नरेंद्रादिक के पूज्य, व अतिशयादी ऋद्धी युक्त सो अर्हंत. २ कर्म व राग द्वेषरूप शत्रुके नाश करे उन्हे, अरिहंत कहते है, और ३ जन्मांकुर, व रोगादी दुःख के अंकुरके नाश करले वालेको अरुहंत कहते है.

श्री अर्हंत भगवंत, अनंत-ज्ञान-दर्शन-चारित्र, और अनंत तप, यह अनंत चतुष्टय कर युक्त है, समव सरणके मध्यमें, अशोक वृक्षके नीचे, मणी रत्नो जडित सिंहासणके उपर, चार अंगुल अधर, छत्र, चमर, प्रभामंडल की विभूती युक्त द्वाद्दश (१२) जात

उसे अक्षेपनी कथा कहनी. इसके ४ भेद [१] प्रथम साधूका धर्म ५ महावृत, ५ सुमती, ३ गुती, (यह १३ चारित्र) आदी कहे, जो साधू होने समर्थ न होवे उनके लिये श्रावकके १२ वृत* आदी कहे, के यथा शक्त धारन करनेकी सूचना करे. [२] निश्चय में, और व्यवहारमें, प्रवृत्तनेंकी रीती स्द्वाद शैलीसे कहे, की निश्चय मे मोक्ष ज्ञानादी त्रय रत्नकी आराधनासें और व्यवहार मे रजुहरण मुहपति आदी साधूके चिन्ह व शुद्ध क्रियासे, निश्चय विना व्यवहार, और व्यवहार विन निश्चय की सिद्धी होनी मुशकिल है, व्यवहारसे शुद्ध प्रवृत्ती कर, निश्चय सिद्धीकी क्षप करनेसें सर्व सिद्धी होती है, [३] श्रोताओको शंशयका उच्छेदन करनेको अपने मनसेही प्रश्न उठाके, आपही उसका समाधान करें की जिससे इष्टार्थ सिद्ध होवे, तथा प्रश्नका उत्तर मर्मिक शब्दमे दे समाधान करे [४] सत्य सरल सबकों रुचें ऐसा सद्बोध करे. परन्तु

* १ त्रस जीवकी हिंसा नहीं करे, स्थावरको मर्याद करे २ बडा झूट नहीं बोले ३ बडी चोरी न करे ४ परस्त्रीका त्याग करे परिग्रह की मर्याद करे ६ दिशाकी मर्याद करे, ७ उपभोग परिभोगकी मर्याद करे, ८ अनर्था दड त्यागे, ९ सामायिक करे, १० दिशावकाशी करे, नेम चितारे, ११ पोषा करे, १२ मुनीराज को १४ प्रकारका सुजता दान उत्कृष्ट भावसे देवे

पक्षपात राग द्वेष बडे, या आत्म श्लाघा, परनिंदा होवे ऐसा उपदेश नहीं करें. "पापकी निंदा करें परंतु पापी नहीं."

२ "विखेवणी" अर्थात विक्षेपनी. संयम या श्रधासे चलित प्रणामीं कों. पुनः सद्बोध कर आत्मा स्थिर करे, सो विक्षेपनी धर्म-कथा इसके ४ भेद[१] अन्य मत्त के परिचय सें. तथा ग्रन्थावालोकन से. किसी की श्रधा भृष्ट हुइ होय तो. उसे जैन मत का गहन सुक्ष्म ज्ञान बता के, अन्य मत की बातों से मिला के, प्रत्यक्ष फरक बतावे; कि जिसकी अक्कल तुर्त ठिकाणें आजावें. एसा बोध करें. [२] एकांत अन्यमतमें ही, किसी का मन लगा होय तो. उसे उसी के मत के शास्त्रों में जो साधू ओं की कठिण क्रिया, तथा जैन मत से मिलती बातों, होवे. सो बता के उनसे पूछे की ऐसे चलने वाले जैन है, या अन्य? यों सत्यता द्रष्टीसे बता के जैन का द्रढ श्रधालू करे [३] जब उनकी श्रधा जैन मत पे जमी देखें. तब उसके हृदय का मिथ्या कंद निकंद करने. न्याय प्रमाण के शास्त्रों सें खुल्लम खुल्ला मिथ्यात्व व का स्वरुप बता शल्योधार कर निर्मळ करे. [४[जिन का निर्मळ हृदय होगया हो- उनके हृदय मे पीछा मिथ्यात्व प्रवेश

न कर ऐसा सम्यक्त्व का विस्तारसे यथा तथ्य रुची कारक स्वरुप बता के तथा अनेक प्रश्नोतर कर- पक्का करे, की वो किसी का डगाया डगे नहीं

३ "संवेगणी" अर्थात सं=सीधे, वेग=रस्ते पे लावे सो संवेगणी कथा इसके ४ भेद (१) जिन २ वस्तूवोंपे ससारी जीवोंका प्रेम हे, उनकी अनित्यता बतावे की देखो! देखते २ वस्तूवोंके स्वभावमें, स्वरुपमें कैसा फरक पडता हे. ताजी वस्तु और बासी वस्तुकों देखनेसे मालम होता हे. वस्तूका स्वभाव क्षिण भंगूर हैं, अर्थात क्षिण २ में पलटता हैं क्यों कि जो गुण और जो स्वाद गरममें था, वो ठन्डी हुये पीछे न रहा; ऐसेही इस शरीर कों देखो उत्पन्न हुये पीछे जवानी तक, कैसी सुन्दर ताभे वृधी होती है फिर वृधवस्था में कैसी हीनता होती हे, और सरीर नष्ट हो जाता हे ऐसे सर्व जगत्के सर्व पदार्थ जानना. क्षिण २ में नवे २ पुद्गल उत्पन्न होते हैं; और ज्युने विनाश होते है सब पदार्थोंमे कुछ एकही दम फरक नहीं पडता हे, परन्तु पडता २ ही पडता है, और एकदम पानीके परोटे जैसे विनाशको प्राप्त होते हैं. ऐसा पूद्गलोंका स्वभाव जाण, ममत्व निवारे फिर मनुष्य जन्मादी सामुग्रही प्राप्त हुइ हे उसकी दुर्ल-

भता बतानेकी * चोरासी लक्ष जीवा योनीमें अनंत परिभ्रमण करते महा पुण्योंदय सें सब भवभ्रमणका नाशका करने वाले, मनुष्य जन्म, शास्त्र श्रवण, शुद्ध श्रधा और धर्म स्पर्श्यनेकी समग्री, महा मुशीबतसे मिली है. इसे व्यर्थ गमा देगा, उसे किता पश्चताप करना पडेगा? और ऐसी वक्त जो काम करनेका है. वो कर लिया तो कैसा आनंद पावेगा? इत्यादी बात सें वैराग्य प्राप्त कर धर्ममें संलग्न करे. [२] अल्पज्ञ जीवोंकों लालच लगने से धर्म वृधी करेगे, ऐसे अवसर पे देवादिक की ऋधि की भोगकी, वैक्रयादी शक्ती दीर्घ आयुष्य, निरोगता, अहार वगैरे की वरणन करे. जो विशेष, और निर्दोष, धर्म करते हैं, उनको उत्तमोत्तम सुख मिलते हैं और जो संसारकी काम भोगमें लुब्ध रहते हैं. पापरंभ करते है. वो नर्कमें जाके दुःख

* णिचिदर धाउ सत्त, तरुदश वेग लिंदिया सु छच्चेव.
सुरणिरय तिरियच उरो, चउदश मणुये सु सद सहस्सा

अर्थ—७ लक्ष नित्य नीगोद ७ लक्ष इतर निगोद ७ लक्ष पृथवी ७ लक्ष पाणी; ७ अग्नी ७ लक्ष वायु. १० लक्ष प्रत्येक वनास्पति २ लक्ष बेंद्री २ लक्ष तेंद्री २ लक्ष चोरिन्द्री, ४ लक्ष नर्क ४ लक्ष देव ४ लक्ष तिर्यंच पचेन्द्री, १४ लक्ष जात मनुष्य की यह ८४ लक्ष भव जाती है

भोगवते है क्षेत्र वेदना परमाधामीकी वेदना वगैरे वरणन करे, क्षिणिक सुखके लिये सागरोपमका दुःख पावे. इत्यादी रीत समजाणे से वो पापको छोड धर्म मार्गमे उद्यमवंत होवे. [३] "न पेम रागो परमत्थी बन्धा" अर्थात जगतमें प्रेमराग (स्नेह फास) जैसा और बन्धन नहीं है, प्रेम राग रूप फासमें फसे जीव अपना सुख दु:ख, भले बुरेका विचार नहीं करते स्व जन मित्रका पोषण करने अनेक आरंभ करते है, परन्तु उनकी स्वार्थता को नहीं पहचानते हैं. देखीये, जब 'कुंकू पत्री' देने हैं. तब कित्ना परिवार भेला होता हैं. ऐसेही संकट पडे तब, स्वजनकी सहायता लेने 'संकट पत्री' देवो तो कित्ने स्वजन आयेंगे* अजी! आने तो दूर रहे, परतु माल खाने वाले ही कहेगे की क्या लड्डु किये विन नाक जाता था" इत्यादी कह उलटा अपमान करते है, ऐसे मतलबीयों को पोष, पापका भारा अपने सिरले, नर्क तिर्यचादी गति मे किये, कर्म के फल एकलेही

* एक मराठी कवीने कहा है—सपदा रहु आशीयारगं, सोयरे जमा होती-त्या घरी -। गरीयास ती रष्ट होउनी, बघू सोयरे जाती सोडूनी

भुक्तते है.† पापका हिस्सा कोइ भी ले नहीं शक्ता ह्यांही देखीये, चोर को ही शिक्षा होती हैं- उसके कुटम्ब (माल खाने वाले) को नहीं. ऐसा जाण कर्म वन्ध सें डरे, धर्म करे. सो सुखी होवें. इत्यादी समजने सें उसका मोह कम हो. वो धर्म में संलग्न करे. [४] कुटंब से ममत्व कमी हुये पीछे सर्व पुद्गलों पर से ममत्व कमी कराने वोध करे. की-यह जीव अनाद काल से नशेंमे वेशुद्ध हो, अपना निज स्वरुप कों भुल, पर पुद्गलों के विषय त्री योग की रमणता कर रहे हे, परन्तु यों नहीं विचारते हैं की. 'पराये अपने कव होंगे.' इस संसार व्यवहार में अव्वी जो कोइ एक वक्त दगा देदेवें तो सुज्ञ मनुष्य दूसरी वक्त उसकी छांह मे भी खडा नहीं रहता हैं. और इन पुद्ग-

† दो भाइयों के आपसम वहुत मम था- एकके नारु (वाले) का रोग हुवा दुसरेने जमीकंद और ह र ाय के औषध ाये वो मरके नर्क में नेरीया हुवा औ। दुसरे भाइने रोग कष्ट सहा, सो अ ाम कष्ट से परमा धामी दव हुवा; और अपने भाइ के जीव कों मारनें लगा और कहा की तेनें मेरे मेममें लूब्ध हो, वहुत जमी कंद का आरंभ किया उसके फल भागर नेरी या वोला भाइ मेंने तेरे लियेही पाप किया और तुंही मुजे मरता है यह कैसा अन्याय यम वोला—हम न्यायान्याय कुछ नहीं समजते है तो किये कर्म के फल तुमेही भोगवणें पडेंगे " करता सो भोगता '

लों ने अपने साथ अनंत वक्त दगा किया कभी शुभ संयोग मिल हंसा दिया तो कभी अशुभ संयोग सिला रोवा दिया कभी नवग्रयवेक तक उचा चडाया और कभी सातमीं नर्क के तले नीगोद मे दवाया कभी सब के मनको रमणीक बनाया, और कभी भिष्टा रुप बना, अपने उपर सब को थुकाय. ऐसी २ अनंत विटंबना इन पूद्गलो ने अपनी अनंत वक्त करी हैं? और भी जहां तक इन की संग नहीं छूटेगा वहां तक पुद्गलों का जो स्वभाव है की पुद्=पूरे (मिले) और गल=गले (विछडे). वो कादापि नहीं छोडने के फिर कौन मुर्ख बने की उनकी संगत में लुब्ध हो, अपनी फजीती करावें. ऐसा जान, जो अपनी आत्मा को सुख चाहवो तो. पुद्गलों का ममत्व त्यागो और ज्ञान दर्शन चारित्र यह रत्न त्रय है. इन्के स्वभावमे कभी बी फरक (फेर) नहीं पडता है, ऐसे स्थिर स्वभावी निजात्म गुण हैं. उनको पहचान, अखंड प्रिती करे! की वो अपने रूप चैतन्य को बना, अनंत अक्षय अव्यावाध सुखका भुक्ता बनावे, इस बौद्धसे मोक्ष के तर्फ श्रोताओंका मन खेंचे

४ निव्वेगणी-अर्थात निर्वृतनी संव्वेगणी में ससारका यथार्थ स्वरूप दर्शाया और निव्वेगणी में,

भुक्तते है.† पापका हिस्सा कोइ भी ले नहीं शक्ता ह्यांही देखीये, चोर को ही शिक्षा होती हैं- उसके कुटम्ब (माल खाने वाले) को नहीं. ऐसा जाण कर्म बन्ध सें डरे, धर्म करे. सो सुखी होवे. इत्यादी समजने सें उसका मोह कम हो. वो धर्म में संलग्न करे. [४] कुटंब से ममत्व कमी हुयें पीछे सर्व पुद्गलों पर से ममत्व कमी कराने बौध करे. की–यह जीव अनाद काल से नशेंमे बेशुद्ध हो, अपना निज स्वरुप कों भुल, पर पुद्गलों के विषय त्री योग की रमणता कर रहे है, परन्तु यों नहीं विचारते हैं की. 'पराये अपने कब होंगे.' इस संसार व्यवहार में अब्बी जो कोइ एक वक्त दगा देदेवें तो सुज्ञ मनुष्य दूसरी वक्त उसकी छांह में भी खडा नहीं रहता हैं और इन पुद्ग-

† दो भाइयों के आपसमें बहुत प्रेम था- एकके नारु (वाले) का रोग हुवा दुसरेने जमीकंद और हरकाय के औषध ररये वो मरके नर्क में नेरीया हुवा औ। दुसरे भाइने रोग कष्ट सहा, सो अकाम कष्ट से परमा धामी देव हुवा; और अपने भाइ के जीव कों मारनें लगा और कहा की तेनें मेरे प्रेममें लूब्ध हो, बहुत जमी कंद का आरंभ किया उसके फल भोगव नेरी या बोला भाइ येन तेरे लियेही पाप किया और तुंही मुजे मरता है यह कैसा अन्याय यम बोला–हम न्यायान्याय कुछ नही समजते है तो लिये,कर्म के फल तुमेही भोगवणें पडेंगे "करता सो भुगता '

लों ने अपने साथ अनंत वक्त दगा किया कभी शुभ संयोग मिल हंसा दिया तो कभी अशुभ संयोग मिला रोवा दिया कभी नवग्रयवेक तक उंचा चडाया और कभी सातमीं नर्क के तले नीगोद मे दवाया. कभी सव के मनको रमणीक बनाया, और कभी भिष्टा रूप बना, अपने उपर सब को थुकाय ऐसी २ अनंत विटंवना इन पूद्गलो ने अपनी अनंत वक्त करी हैं ? और भी जहां तक इन की संग नहीं छूटेगा वहां तक पुद्गलों का जो स्वभाव है की पुद्=पूरे (मिले) और गल=गले (विछडे) वो कादापि नहीं छोडने के फिर कौन मुर्ख वने की उनकी संगत में लुब्ध हो, अपनी फजीती करावें. ऐसा जान, जो अपनी आत्मा कों सुख चाहवो तो. पुद्गलों का ममत्व त्यागो. और ज्ञान दर्शन चारित्र यह रत्न त्रय हैं. इन्के स्वभावमे कभी बी फरक (फेर) नहीं पडता है, ऐसे स्थिर स्वभावी निजात्म गुण हैं. उनको पहचान, अखंड प्रिती करे! की वो अपने रूप चैतन्य को बना, अनंत अक्षय अव्या वाध सुखका भुक्ता बनावे, इस बोद्धसे मोक्ष के तर्फ श्रोताओंका मन खेंचे.

४ निव्वेगणी-अर्थात निर्वृतनी संवेगणी में संसारका यथार्थ स्वरूप दर्शाया और निव्वेगणी

संसारसे निवृत्तनेका स्वरूद दर्शावें. संसारसें रोकने वाले कर्म है. की इस भवके किये, इसही भवमें भोगवे, जैसे हिंशा से सूळी (फासी) झूटसे अप्रतीत, काराग्रह, चोरीसे कैद, खोडा वेडी, विभचारसे फजीती व गर्मियादी रोगसे सडके मरना. ममत्वसें कूटम्बादिकके निर्वाहाका महाकष्ट सहना,-वगैरे २, और भी जगत्वासी जीव जित्ने कर्म करते है, वे सव सुखके लिये करतें है, परन्तु सुखी वहुतही थोडे दिखते है, इससे प्रतक्ष समज होती है की जिस उपाय से सुख होता है. वो नहीं जानते हैं; और दुःखका उपाय कर सुख चहाते हें, सो कहांसें होय; अग्नीसे शीतलता कदापी न मिल सकेगी! तैसें जो धनसे सुख चहाते है. तो धन में सुख कहां है, विचारीये * धन उत्पन्न करते (कमाते) शीत, ताप, क्षूद्या, त्रषा, वगैरे, अनेक कष्ट सह संग्रह करते हे. और ज्यों ज्यों लक्ष्मीकी अधिकता होती है, त्यों त्यों तृष्णाभी अधिक वढती जाती हैं, और "तृष्णायां परमं दुःखं" अर्थात त्रष्णाही

*श्लोक—वित आर्जिताना दुःख आर्जितानां च रक्षण,
आय दु ख व्यय दु ख किमर्थ दु ख साधन.
अर्थ—धन कमाते दु ख, कमाये पीछे रक्षण करनेका दु ख,
और चला जाय तो भी दुःख फिर दु खका साधन क्यों करते हो ?

नहीं श्वेत, नहीं सुगन्धी, नहीं दुर्गन्धी, नहीं मिरच जैसे तीखे, नहीं कडुवे, नहीं कसयले, नही खट्टे, नहीं मीठे, नहीं कठिण, नही नरम (कोमल) नहीं भारी (वजनदार) नहीं हलके, नहीं ठन्डे, नहीं उष्ण (गरम) नहीं स्निगन्ध (चीकणे) नहीं लुरके इत्यादी किसी भी प्रकार के नहीं हैं अव उनको जन्मनाभी नहीं, मरना भी नही, किसीका संग भी नहीं; नहीं है वो स्त्री, नहीं है पुरूप, नहीं है नपुशक, परन्तु सर्वे पदार्थके जाण पिरिज्ञाता = संपूर्ण पणे जाणते हुये, सदा स्थिरभूत विमाराजनहे, उनको ओपमा दी जाय ऐसा पदार्थ एकही जक्त में नहींहै, क्योंकि वो तो अरूपीहैं, और ओपमा देने लायक व वचनसें कहे जावें वो पदार्थ रुपी हैं, इस लिये अरूपी को रूपी की ओपमा छाजती नहीं है, और उनकी भी अवस्था किसी प्रकारके विशेपण देने लायक हेही नहीं, इस लिये ही कहा जाता कै की, उनको जान ने के लिये, बताने के लिये, कोइभी शब्द शक्तीवंत नहीं है. फक्त व्यक्ती रूपही गुणोचार न कर सक्तेहैं

गाथा—जहा सव्व काम गुणियं, पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोइ
तण्हा छुहा विमुक्को, अच्छेज जहा अभियोतत्ति १८

संसारसे निवृत्तनेका स्वरूद दर्शावे. संसारमें रोकने वाले कर्म हे. की इस भवके किये, इसही भवमें भोगवे, जैसे हिंशा से सूली (फासी) झूटसे अप्रतीत, कारायह, चोरीसे कैद, खोडा वेडी, विभचारसे फजीती व गर्मियादी रोगसे सडके मरना. ममत्वसें कूटम्वादिकके निर्वाहाका महाकष्ट सहना, वगैरे २, और भी जगत्वासी जीव जित्ने कर्म करते है, वे सव सुखके लिये करतें है, परन्तु सुखी वहुतही थोडे दिखते है, इससे प्रतक्ष समज होती है की जिस उपाय से सुख होता है. वो नहीं जानते हें; और दुःखका उपाय कर सुख चहाते हैं, सो कहांसें होय; अग्नीसे शीतळता कदापी न मिल सकेगी! तैसे जो धनसे सुख चहाते है. तो धन में सुख कहां है, विचारीये * धन उत्पन्न करते (कमाते) शीत, ताप, क्षूद्या, त्रषा, वगैरे, अनेक कष्ट सह संग्रह करते हैं. और ज्यो ज्यों लक्ष्मीकी अधिकता होती है, त्यों त्यों तृष्णाभी अधिक वढती जाती हैं, और " तृष्णायां परमं दुःखं " अर्थात त्रष्णाही

---

*श्लोक– वित्तं मार्जिताना दु ख मार्जिताना च रक्षण,
आय दु ख व्यय दु ख किमर्थ दु ख साधन.

अर्थ–धन कमाते दु.ख, कमाये पीछे रक्षण करनेका दु ख, और चला जाय तो भी दु ख फिर दु खका साधन क्यों करते हो ?

प्रवेशही नहीं करनेदे, जिधर द्रष्ट करे, उधर वोही वो द्रष्ठ गत होए. ऐसा लव लीन हुवा जीव द्रढाभ्यास से, उसही स्वरूप को, ज्ञान द्रष्टी कर देखने लगे, तव सिद्ध स्वरूपकी और अपने श्वरूप की तुल्यता करे, की इनमें और मेरेमें क्याफरक हैं. कुछ नहीं, जो रूप यह है वोही यह है. मेरा निजश्वरूप ही परमात्मा जैसा है. सर्वज्ञ सर्व शक्ती वान निष्कलङ्क, निराबाध चैतन्य मात्र सिद्ध वुद्ध प्रमात्मा में ही हूं. ऐसे भेद रहित वुद्धि की निश्चलता स्थिरता होय, अपको आप सरीर रहित या कर्म कलंक रहित शुद्ध चित्त, अनन्द मय जानने लगे. ऐकांतताको प्राप्त होवे फिर द्वितिय पनें बिलकुल रहे नहीं. उस समय ध्याता और ध्येय-का एकही रूप बन जाता है.

ऐसे जिनके सर्व विकल्प दूर हो गये हैं. रागादी दोषोका क्षय हो गया है, जानने योग्य सर्व पदार्थको यथा तथ्य जानने लगे. सर्व प्रपंचोसे विमुक्त हो गये. मोक्ष स्वरूप होगये. सर्व लोकका नाथपणा जिनकी आत्मामें भाष होने लगा, ऐसे परम पुरुषको रुपातीत ध्यानके ध्याता कहीए.

इस ध्यानके प्रभावसे, अनादी जक्कड घन्ध जो कर्म का बन्ध है, उसे क्षिण मात्रमे छेद, भेद

इय सव्व कालातित्ते,आउलं निव्वाण मुवगया सिद्धा
सासय मव्वा वाहय, वट्टइ सुही सुहं पत्तो. १९

उववाइ सूत्र

अर्थात — यथा द्रष्टांत कोइ पुण्यवन्त, श्रीमंत सर्व प्रकार के सुख की समग्री युक्त वो इच्छित — रागणी यादी श्रवण कर, नाटकादी अवलोकन कर, पुष्पादी सूंघकर, षड रस भोजन इछित भोगवकर, और इछित सर्व-सुखों का भोगोपभोग ले कर त्रप्त हो, निश्चिंत्त सुख सेजा मे अनन्द के साथ बेठा हैं, सर्व कामना-रहित संतुष्ट हुवाहैं, किसी भी तरह की जिसे इच्छा न रही हैं. तैसेही सिद्ध भगवन्त सिद्ध स्थान में सर्व-काम भोग से त्रप्त; निरिछित हो; अतुल्य अनोपम, अमिश्र, शाश्वत, अव्याबाध, निरामय, अपार,-सदा सुख से त्रप्त हुये की माफिक, सदा - विराजमानहै. उनको कदापी कोइभी काल में, किसी भी प्रकार की, किंचित मात्र इच्छा उत्पन्न होती ही नहीं हैं, ऐसे पर्मानन्द-परमसुख में अनंत काल संस्थित रहते हैं.

ऐसे २ अनेक सिद्ध परमात्माके गुण, रटन मनन निध्यासन्न, एकाग्रतासे लवलीन हो ध्यान करे, उस वक्त अन्य कल्पना को किंचित मात्र अपने हृदय में

माल देवे त्यो ज्ञान देवे, ९ [§] पदानुसारणी=एक पद के अनुसारसे सर्व ग्रन्थ समज जाय. १० सभिन्न श्रुत[¶]=सुक्ष्म शब्दभी सुणले, तथा एक वक्तमें अनेक शब्द सुणे, ११ दुरास्वाद=भिन्न २ स्वादको एकही वक्त में जाणले, तथा दूर रहा हुवा रसको स्वादले, १२-१६[‡] श्रवण, दर्शन, घ्राण, स्वाद, स्पर्श्य, इन ५ ही इन्द्री की तिव्र शक्ती होवे, १७ प्रत्येक बुद्ध=उपदेशविन अन्य सयोगसे वैराग्य आवे, १८ वादीत्व शक्ती इन्द्रादी देवका भी चरचामें पराजय करे.

२ 'क्रिया ऋद्धि' के ९ भेद-१ जलचर=पाणी पें चले पर डुवे नहीं, २ अग्नी चरण=अग्नीपे चले पर जले नहीं, ३-६ पुफचरक=फुलपे, पतचरण-पत्तेपे, बीजचरण-बीजपे, और ततू चरण=मकडीके जालेके तंतूपे चले पर वो बिलकुल दबे नहीं, ७ श्रेणी चरण पक्षीके तरह उडे, ८ जंघा चरण=जंघाके हाथ लगानेसे और ९ विद्याचर-विद्याके प्रभावसे क्षिण मातमे अ-

§ पदानु सारणी के तीन भेद-प्रती सारी पहले पद मिला वे, अनुसारी-छेले पद मिलावे, उभयासारी-बिचके पद मिला ग्रन्थ पूर्ण करे

¶ १२ जोजन तकका शब्द सुणले

‡ पंच इन्द्रीके विषयको ९ जोजनके अतरसेही पेछान ले

ण केवल ज्ञान और केवल दर्शनको संपादन कर, निश्चय से मोक्ष सुख पावे. (यह ध्यान आगे कहेंगे उस सुक्लध्यान के पेटे में हैं.)

ऐसे शुद्ध ध्यानके प्रभावसे ध्याता पुरुषकी आत्मा निर्मल होते अष्टऋद्धी आठ प्रकारकी आत्म शक्ती प्रगट होती है सो–

१ "ज्ञान ऋद्धि" के १८ भेद– १ केवल ज्ञान, २ मय पर्यव ज्ञान, ३ अवधी ज्ञान, ४ चउदे पूर्वी, ५ दश पूर्वी, ६* अष्टांग निमित, ७ 'बीजबुद्धी'=शुद्ध क्षेत्रमें योग्य वृष्टीसे धान्यकी वृधी होय, त्यों सहजानंदी आत्ममे ज्ञानकी वृधी होय ८ 'कोष्टक बुद्धि'= ज्यो कोठारमें वस्तु विणशे नहीं, त्यों ज्ञान विणशे नहीं. तथा राजाका भंडारी भंडारमेसे वक्तोवक्त यथा योग्य

* निमित के ८ अंग–१ अंतरिक्ष=अकाशमें चद्र सूर्य ग्रह नक्षत्र बादल आदी देखके, २ भूम=पृथ्वी कपनेसे (आदीसे पृथ्वी गत निध्यान जाने) ३ अंग=मनुष्यादीके अंग फरकनेसे, ४ स्वर दुर्गादी पक्षीके शब्दसे, ५ लक्षण=मनुष्य पशु के लक्षण देख, ६ व्यजन तिल मसादी व्यजन देख. ७ उत्पात=रक्त दिशादी देख, ८ स्वपन–स्वपनसे, इन आठ कामोंसे होने हुये शुभाशुभ हो तब को जाणे परतु मकाशे नहीं

हो जाय, परंतु सरीरसे सुगन्ध आवे. कान्ती वडे. ३ तत्ततवे' ज्यों तपे लोहेपे पडा हुवा पाणी सुख जाय तैसे तिव्रक्षूद्या लगने से थोडा अहार करे जिससे लघु नीत वडीनीत की बाधा न होवे, और देवतासे भी ज्यादा सरीरमें वल आवे. तथा अनेक लब्धीओं प्राप्त होवे. ४ 'महातप' मास क्षमण जावत् छमासी तप करे, क्षिणंतर रहित श्रुतज्ञान में तल्लीन बने रहे, जिससे परम श्रुत, अवधी, मन पर्यव ज्ञानकी प्राप्ती होवे, ५ 'घोरतप' महा वेदना उत्पन्न हुये भी किंचित ही कायरता न करे, औषध न लेवे, ग्रहण किया तप न छोडे, उग्रह (वीकट) अभिग्रह धारण करे, सरीरकी संभाल न करे, ममत्व रहित विचरे, ६ घोर पराक्रम' स्वशक्ती तप संयमके अतीशयसे जगत् त्रयको भयभ्रंत कर सके, समुद्र शोक शके और पृथवी उलटी कर शकें इत्यादी महाशक्तीवंत होवे. ७ 'घोरगुण ब्रम्हचारी' नववाड विशुद्ध नव कोटी युक्त शुद्ध शील वृतादीके प्रसाद से त्रण जगत्के महारोगको उपशमा के शांती वरता सके, सर्व भये निवार सके, व्यंतरभय, जंगम, स्थावर विष, वगेरे उपसर्ग उनपे किंचितही असर पराभव न कर सके, यह रहे वहां मार मारी दुर्भिक्षा दी उपद्रव न होवे. इत्यादी महा प्रभाव वंत होवे.

नेक योजन चले जाय.

३ 'वैक्रय ऋद्धिके' ११ भेद—१ अणिमा-सुक्ष्म सरीर बनावे. २ महिमा—चक्रवृतीकी ऋद्धि बनावे. ३ लघिमा—हवा के जैसा हलका सरीर करे, ४ गरिमा—वज्र जैसा भारी सरीर करे, ५ प्राप्ती—पृथवीपे रहे मेरुचूलकाका स्पर्श्य करले. ६ प्राकाम्य--पाणीपे पृथवीकी तरह चले, और पाणी में डूबे. जैसे पृथवीमें डूबे, ७ ईशत्व तीर्थंकरकी तरह समवसरणादी ऋद्धि बनावे, ८ वशत्व—सबको प्यारा लगे, ९ अप्रतिघात—पर्वतके अन्दर से भेदके निकल जाय. १० अन्तर्धान=अद्रश (गुप्त) हो जाय, और ११ कामरूप—इच्छित रूप बनावे.

४ तप ऋद्धि के ७ भेद—१ उग्रतप एक उपवास का पारणा कर दो उपवास करे दो के पारणे तीन उपवास यो जावजीव लग चडाता जया सो उग्रतप, और जीवतव्यकी आशा छोड तपकरे सो उग्रोग्र तप, तथा एकांत्र उपवास करे उसमे* अंतराय आ जाय तो बेले २ पारणा करे, यों चडाते जाय सो 'अवस्थितोग्रतप' २ 'दीप्ततवे' तप करके सरीर तो दुर्बल

* पारणाका जोग नहीं बने. तथा अन्य कारणसे उपवासमें अंतराय आजाय तो फिर बेले २ पारणा करे, फिर अंतराय आवे तो तेले ? करे यों जावजीव चडाते जाय,

श्री उत्तराध्ययन जीके दशमें अध्ययनमें कहा है:-

गाथा नहू जिणे अज्ज दिस्सइ, बहू मए दिस्सइ मग्गदेसिए, संपइ नेया उए पहे समय गोयम मा पमायए ३१.

अर्थात् अब्बी इस पंचम् कालमें, नहीं देखते हे निश्चयसे श्री जिन, तिर्थंकर भगवान् व केवल ज्ञानी परन्तु बहुत हें. मोक्ष मार्ग के उपदेशनें बताने वाले जिनोक्त सिद्धांत तथा सद्बोध कर जीवोको मुक्ती पन्थ मे चलानें वाले, 'सद्गुरु' उनके पाससे न्याय मार्ग मोक्ष पन्थ प्राप्त करनेमे, हे गोतम (जीव) समय मात्र प्रमाद आलश मत कर! इस गाथानुसार अबी तो भव्य मोक्षार्थि जीवोको फक्त जिनोक्त शास्त्र, और सद्बोधके सद्गुरुओंकाही आधार रहा है, मोक्षार्थियोंकी इच्छा सिद्धी करने वाला ज्ञान है. वो इस वक्त सूत्र व ग्रन्थोमे हें, और उसकी रहस्य गीतार्थो बहू सूत्रीयो उत्पात बुद्धी और दीर्घ द्रष्टी वालोके पास है. की जिनोंने अपने गुरुओके पाससें यथा विधी धारण की हे, और वो न्याय मार्गमें लोकीक लोकोत्तर मे शुद्ध प्रवृत्तीसें प्रवृत्त रहे, क्षांत, दांत, निरारंभी, निष्परिग्रही हैं. उनके पास शास्त्राभ्यास करना क्यो कि शास्त्र समुद्र अति गहन गुढार्थो करके भरा है, उसकी ५

५ 'बल ऋद्धि' के ३ भेद १ मन बलीये-राग द्वेष सकल्प विकल्प परिणाम रहित मन रहे, २ बचन बलीये-अन्तर महुर्तमें द्वादशांगी का अभ्यास करे, बहुत काल पढते भी श्रम पैदा न होवे, ३ 'काया बलीये'-मास वर्ष पर्यंत कायुत्सर्ग करे तो भी थके नहीं ऐसे महाशक्तीवंत.

६ 'औषध ऋद्धि' के ८ भेद १ आमोसही-चरण रज पग(धूल) धूलके स्पर्श्य से, २ खेलोसही-श्लेषम थूक आदी स्पर्श्य से, ३ जलोसही-सरीरके पसीने के स्पर्श्य से, ४ मलोसही-कर्ण चक्षु नाशीकादी सरीरके मैलके स्पर्श्य से ५ विपोसही-भिष्ट मूलके स्पर्श्य से और ६ सव्वोसही-सर्व स्पर्श्यसे (इन ६ का स्पर्श्य रोगीके होनेसे उसका)सर्व रोग नाश होवे, ७ असीविप-विप अमृत रूप प्रगमें तथा वचन श्रवण मात्रसे सर्व विष विरला जाय ८ 'द्रष्टी विप'-कृपा द्रष्टी मात्रसे विप अमृत मय हो जाय और कोप कर देखे तो अमृत विषमय होजाय, महा विकारी निर्विकारी बने ऐसे महा शक्तीवंत.

७ 'रस ऋद्धि' के ६ भेद-१ अस्सी विपा'-कोप वंत वचन मात्र से और २ द्रष्टि विषा'- द्रष्टी मात्र से दुसरे के प्राण नाश करशके ३ खीरासवी नि

और अहिंशा सत्य दत्त, ब्रम्हचार्य अममत्व यह पंच महावृत धारन किये, इत्ने गुणके धारक होवे सोही, सत्य, शुद्ध, यथा तथ्य, श्री वितराग प्रणित धर्म फरमा सक्के है, वो कैसा धर्म फरमायंगे, तो की प्रतिपूर्ण न्युन्याधिकता रहित देशवृत्ती (श्रावकका) या सर्ववृति (साधूका) निरुपम औपमा रहित वैसा धर्म अन्य कोइ भी प्रकाश नही शक्के है, ऐसे गुणज्ञोंके पाससे ज्ञान संपादन करना

अन्न, धन, आदी सामान्य वस्तुभी दातारके पाससे ग्रहण करतें अनेक लवुता करते है तथा सरोवरमे से भी विना नमन किये पाणी प्राप्त नहीं हो सक्ता है तो ज्ञान जेसा अत्युत्तम पदार्थ विना लघुता नम्रता किये कहांसे प्राप्त होगा इस लिये, ज्ञान प्राप्त करनेकी श्री उत्तराध्ययनजीके पहले अध्यायमे यह रीती फरमाइ है:—

गाथा आसण गउ न पुच्छेज्जा, नेव सिज्जागउ कयाइवि
आगमुकुडु उ सतो, पुच्छेज्जा पजंलि उडो २२
एव विणय जुत्तस्स सुत्त अट च तदुभय
पुछ माणस्स सीसस्स वागरेज्ज जहा सुये २३

अर्थात्—अपने आसण (बिछोन) पे बेठा हुवा तथा सेजामे सूता हुवा कदापि प्रश्नादिक नहीं पूछे

समज होना है. सोही आतम कल्याण करने वाली है.

इस वक्त कित्नेक ले भगूओं. अभीमान के मारे गुरु गम विन, पुस्तकी विद्या पढ २ पंडितराज बन बैठे हैं, उन्होंने वहुतसे स्थान अर्थका अनर्थ कर शास्त्रका शस्त्र वना दिया है; अनंत भव भ्रमण मिटाने वाला पवित्र अहिंशा मय परम धर्म को हिंशामय कर अनंत भवका वढाने वाला बना दिया है; इस लिये ही चेताना पडता हे की मोक्षार्थियोंको अव्वल. ज्ञान दाता गुरूके गुणोंकी परिक्षा शास्त्रानुसार कर, उनके पाससे ज्ञान ग्रहण करना चाहीये.

श्री सुयगडायंगजी सूत्रके ११ में अध्ययनमें धर्मोपदेशकके लक्षण इस प्रमाणें फरमायें हैं:—

गाथा आय गुत्ते सया दते, छिन्न सोए अणासवे.
जे धम्मं सुद्ध मइकाति, पडि पुन्न मणालिसं. २४

अर्थात् मन, वचन, काया, रूप, आत्माको पाप मार्गमें जाती हुइ रोक, अपने वशमें करी है कूमार्गमें आत्माको नहीं जाने देते है, सदा पंच इन्द्रि, और मनको, विषय सें निवार धर्म ध्यान में लगा रख्खा है. संसारका जो आरंभ परिग्रह रूप प्रवाह हैं, उसे वंद किया है. मिथ्यात्व, अवृत्त, प्रमाद. कपाय, और अशुभ जोग, इन पंच आश्रवों करके राहित हुये हैं,

गये) हो. तथा किसीने प्रश्न पूछा, उसका उतर नहीं आया हो. तब पूर्वोक्त विधीसे गुरू महाराजके सन्मुख आके—

द्वितीयपत्र—"पुच्छणा"

२ 'पूछणा' अर्थात् पूछा करे की-हे कृपाल आपने अनुग्रह कर मुजे अमुक पढाया था. उसमें इस प्रकार संशय उत्पन्न होता हे. सो हे पुज्य, उसका निराकरणा- निवारण करने आपको तकलिफ देतां हु सो माफ किजीये. और मुजे मार्ग बताइ ये, इत्यादी नम्रता युक्त, अपने मन की शका खुली २ गुरुजी कें सन्मुख प्रकाश करे, और गुरु महाराज उत्तर देवें, वो आप एकाग्रता सें- उत्सुकता से जी। तहेत इत्यादी सकोमल-मीठे वचनो सें बधाता हुवा ग्रहण करें जहां तक अपने चितका पूरा समाधान न होवें, वहां तक तर्क उठा २ के पूछताही जाय, शरमाय नहीं, डरे नहीं, घबराय नहीं निश्चल चित्त सें पूरा निराकरण-कर*संदेह रहित होवें, की कोइ भी उस बात कों पूछें ते आप उसके हृदय सचोट ठसा सके, ऐसा निश्चय करे

* चोयणा प्रति चायणो करनेसे ज्ञानी बहुत खुशी होते है और शास्त्रपण उसका खुलासा करते है

क्यों कि आसण यह अभीमान जनक हैं, और अभिमान ज्ञानका शत्रु हैं. और सूता हुवा ज्ञान ग्रहण करनेंसे. अविनय और प्रमाद होता है. यह ज्ञानके नाश करनेवाले हैं, इस लिये जब प्रश्न पूछनेकी या ज्ञान ग्रहण करनेकी इच्छा होय, तब, आसन अविनय मान और प्रमादको छोडके जहां गुरू महाराज विराजे होयँ उनके सन्मुख नम्रता युक्त आवे, और दोनो घुटने जमीको लगा, दोनो हाथ जोड मस्तकपे चडा, तीन वक्त (उठ बेठ) नमस्कार करें, और दोनो घुटनें जमीनको लगाये, दोनो हाथ जोडे, नमा हुवा सन्मुख रहके, उच्च बहुमान बचनोसे प्रश्नोत्त करे, सूत्र अर्थादिक दिल चायसो पूछे. और क्या उत्तर मिलता है, ऐसी उत्कंठा युक्त एकाग्र उनके सन्मुख द्रष्टी रख, वो फरमावे सो, जी तहत, वचनसें ग्रहण करे, जित्ना अपनको याद रहे, उत्नाही ग्रहण करे. ज्यादा लोभ नहीं करे. ऐसी तरह विनय युक्त पूछनेसे, गुरु महाराजनें अपने गुरूके पास से जेसा ज्ञान धारन किया. वैसाही उसे देवेगे (पढावेंगे).

जो सद्गुरूके पाससे ज्ञान गृहण किया है, उसकी पुनरावृत्ती करते (फेरते) किसी तरह की शंका उत्पन्न होवें, या कोइ शब्द विस्मरण हो गया (भूल

ऐसी 'गडवड' भी नही करें, ज्ञान फेरती वक्त ' अणुप्पेहा' अर्थात् उपयोग रक्खे जो जो अक्षरोंका मुख से उच्चार होवें उसका अर्थ अपने मनमे, विचारता जाय उसपे, द्रष्टी फेलाता जाय, इसमें वहुत गुण हैं.

सूत्र "अणुप्पेहाएणं, आउयवज्जाउ सत्र कम्म पगडीउ धणीय वंधाउ, सिढिल बधण बद्धा उपकरेइ, दिह काल ठिइयाउ, रहस्स उ काल ठिइयाउपकरेइ; वहु पएस गाउ, अप्प पएस गाउपकरेइ, आउयं चणं कम्मं, सियवंधइ, सियनोवंधइ असायावेयणि जचणं कम्मं, नो भुज्जो २ उवचिणाइ; अणाइयंचणं, अणवगदग्गं, दीह, मद्धं, चउरंत संसार कंतारं, खिप्पा मेव वीइ वयइ' ३२ उत्तरा० अ० २९

अर्थात्—उपयोग युक्त ज्ञान फेरनेसे, या शब्द क अर्थ परमार्थ दीर्घ द्रष्टीसे विचारनेसे जीव आठ कर्म मेंसे आयुष्य कर्म छोड बाकीके ७ कर्मकी प्रकृतियों जो पहले निवड (मजवूत) बांधी होय, उसे स्थिल (ढीली) करे, (जलदी छूट जाय ऐसी) वहुत काल तक भोगवणा पडे, ऐसा वंध वांधा होय तो, थोडेही कालमें छुटका होजाय ऐसी करे तिव्र भाव (वीकट रससें उदय आने) की होवें, उसे मद भाव (

और जो अभ्यास कर निश्चय कर निसंदेह ज्ञान किया है उसें

तृतिय पत्र–"परियट्टणा"

३ 'परियट्टणा' अर्थात् वारवार फेरता (याद करता) रहे. क्यों कि अव्वी इतनी तिव्र बुद्धि नहीं है की जो एक वक्त पढ, पीछा याद नहीं करे, तो विस्मरण (भूल) नहीं होवें, और वारंवार फेरनेमें वहुत फायदा है—

श्री उत्तराध्ययन जी सूत्रके २९ में अध्यायमें भगवंतने फरमाया है

"परियट्टणं या एणं वंजण लद्धि च उप्पाएइ" अर्थात् ज्ञानको वारंवार फेरनेसे अक्षरानुसारणी लब्धी उत्पन्न होती है. जिससे एक अक्षर, व पदके अनुसारेसे, दूसरे आगे पीछे के अक्षरोंका ज्ञात होता है, अपनी विना पढी ही विद्या मे काही अन्यके भूले हुये अक्षरोंको, आप वता सके, ऐसी शक्ती उपजे.

और जो ज्ञान फेरे, वो ऐसा नहीं फेरे की, जेसें वच्चे 'गुणनी' करते हैं, की पढे है वो कह दे, परंतु उसके मतलबका अर्थ नहीं समझे, 'मैं जल मे आय,'

तीसरे से यों योगों का पटला होताही रहताहैं. विचार पटलनेसे ही, पृथक वितर्क ध्यान इसका नाम हैं. ८, ९, १०, ११, इन गुण स्थानमें मुनीको होता हैं. इस ध्यानसे चित्त शांत होजाताहैं, आत्मा अभ्यंत्र द्रष्टीको प्राप्त होता हैं, इन्द्रियों निर्वीकार होती हैं, और मोह का क्षय तथा उपसम होता हैं

द्वितीय पत्र–"एकत्व वितर्क"

२एकत्व वितर्क=इस का विचार पहले पाये से उलट हैं, अर्थात पहले पाये में पृथक२ (अलग२)वीतर्क तर्कों कही, और इसमें एकत्व ऐक्यता रूप वितर्क तर्को है यह विचार स्वभावीक होता हैं, इस पाये वाले ध्यानीयों का विचार पटता नही हैं, एक द्रव्य को व एक पदार्थ को व एक अणुमात्र कों, चिन्तवते, उसीमें एकाग्रता लगावे, मेरू परे स्थिरी भूत हो जावें यह ध्यान फक्त १२में गुण स्थान में होता हैं, इस ध्यान मे संलग्न हुये पीछे, क्षिणमात्र में मोह कर्म की प्रकुतियों का नाश करे, उसही के साथ ज्ञान वराणिय, दर्शना वर्णिय, और अंत्तराय, यह तीनही कर्म प्रलय होजाते हैं अर्थात चारही घन घाती कर्म क्षपाते है, (यहां तेरमा गुण स्थान प्राप्त होता है

भोग वाय ऐसी करें. *आयुष्य कर्म कदाचीत कोइ बंधे, कोइ नही वांधे. असाता वेदनी (रोग दुःख देने वाले) कर्म वारंवार नही बांधे; और चार गती रुप संसार कंतार (जंगल) का पन्थ-मार्ग आदी रहीत हैं. और मुशकिल से पार होय ऐसा हैं. उसे क्षिप्र (शिघ्र) अतिक्रमें (उल्लंघे)-अर्थात जल्दी पार पावें मोक्ष प्राप्त करें देखयें श्री महावीर वृधमान श्वामीने खुद, शास्त्र द्वारा विचार ना (ध्यान) का कित्ने विस्तारसें गुणा नुवाद किया हैं. ऐसी उत्तम विचार शक्ती है, ऐसा जाण खूब उपयोग युक्त ज्ञान कों वारंवार फेरना चाहीये.

जो ज्ञान फेर कर पक्का किया उस का रस हूबेहु प्रगमा उसका लाभ दूसरे कों देणे के लिये—

चतुर्थ पत्र "धम्मकहा"

४ 'धम्मकहा' अर्थात् धर्मकथा (वाख्यान) करें. धर्म कथा श्री ठाणायंग सूत्र में ४ प्रकार की कहके; एकेक के चार २ भेद करनें सें १६ प्रकार होतें हैं, सो-

[१]अखेवणी-अर्थात् अक्षेपनी. जो बोध श्रोताकों सुणावे उसकी असर श्रोताके मनमें हूबेहू होवें, पीछा वमन न होवे. ऐसा पक्का ठसजाय रुचजाय, पचजाय,

* आयुष्य कर्म का बन्ध एक भवमे दोवक्त नहीं पडता हैं.

प्राप्त करते हैं. ऐसा परमोपकार का कर्ता केवल ज्ञान हैं, केवल ज्ञानीही तीसरे पायको प्राप्त होते है.

तृतीय पत्र–"सुक्ष्म क्रिया."

३ सुक्ष्म क्रिया–अप्रतिपाति यह तेरमें गुणस्थानमें प्रवतमे केवल ज्ञानीयों को होता हैं, सुक्ष-थोडी क्रिया-कर्म की रज रहें, अर्थात् जैसें भुंजा हुवा अनाज खानेसे पेट तो भरा जाता हे. परंतु घाया हुवा उगता नहीं हैं, तैसेही अघातीये कर्म की सत्तासें चलनादी क्रिया कर सक्ते हैं, परंतु वो कर्म भवांकुर उत्पन्न नहीं कर सक्ते हे. आयुष्य है वहांतक है. और उनके योगसे सुक्ष्म इर्या वही क्रिया लगती है, अर्थात् मन वचन कायाके शुभ योगकी प्रवृती होते, अहार, विहार, निहारादी करतें सुक्ष्म जीवोंकी विराधना होनेसे क्रिया लगे, उसे पहले समय वन्धे, दूसरे समय वेदे. और तीसरे समय निर्जरे, (दूर करे) जैसे कांचपे लगी हुइ रज, हवासे दूर होय; त्यों क्रिया दूर हो जाती हैं. और अप्रतिपाति कहीये, आया हुवा ज्ञान पीछा जाता नहीं हे; अर्थात्, मति आदी चार ज्ञान तो प्रणामों की वृधीसे वढते हैं, और हीनतासे चले भी जाते हैं, परंतु केवल ज्ञान आया [illegible] जाता नहीं हे, और

प्राप्त करते हैं. ऐसा परमोपकार का कर्ता केवल ज्ञान हैं, केवल ज्ञानीही तीसरे पायको प्राप्त होते है.

तृतीय पत्र-"सुक्ष्म क्रिया."

३ सुक्ष्म क्रिया-अप्रतिपाति यह तेरमें गुणस्थानमें प्रवतमे केवल ज्ञानीयों को होता हैं, सुक्ष-थोडी क्रिया-कर्म की रज रहें, अर्थात् जैसे भुंजा हुवा अनाज खानेसे पेट तो भरा जाता है. परंतु बाया हुवा उगता नहीं हैं, तैसेही अघातीये कर्म की सत्तासें चलनादी क्रिया कर सक्ते हैं, परंतु वो कर्म भवांकुर उत्पन्न नहीं कर सक्ते है. आयुष्य है वहांतक है. और उनके योगसे सुक्ष्म इर्या वही क्रिया लगती है, अर्थात् मन वचन कायाके शुभ योगकी प्रवृती होते, अहार, विहार, निहारादी करतें सुक्ष्म जीवोंकी विराधना होनेसे क्रिया लगे, उसे पहले समय बन्धे, दूसरे समय वेदे. और तीसरे समय निर्जरे, (दूर करे) जैसे कांचपे लगी हुइ रज, हवासे दूर होय, त्यो क्रिया दूर हो जाती हैं और अप्रतिपाति कहीये, आया हुवा ज्ञान पीछा जाता नहीं है, अर्थात्, मति आदी चार ज्ञान तो प्रणामों की वृधीसे वढते हैं, और हीनतासे चले भी जाते हैं, परंतु केवल ज्ञान आया हुवा पीछा जाता नहीं है, और

संपूर्णता है. इस लिये हानी वृधीभी नहीं होती है.

चतुर्थ पत्र-"समुछिन्न क्रिया."

४ समुछिन्न क्रिया-अनिवृती=यह चौथा पाया चउदमें (छेले) गुणस्थान में होता है, चउदमें गुणस्थानका नाम अयोगी केवली है, अर्थात्-वो मन, वचन, कायाके योग रहित हो जाते हैं, जिससे 'समुछिन्न क्रिय' अर्थात-सर्व क्रिया नष्ट हो जाती है. जहां योग और लेश्या नहीं वहां क्रियाका कामही नहीं रहता हैं; वो अक्रिय होते हैं, और 'अनिवृती' सो शैलेसी (मेरु पर्वत जैसी स्थिर) अवस्थाको प्राप्त होते है, जिससे वो शुद्ध चित पूर्णानन्द, परम विशुद्धता-निर्मलता होती है; अघातिक कर्मका नाश हो, शुद्ध चैतन्यता प्रगट हो जाती है, फिर वो उस स्वभावसे कदापि निर्वृतन नहीं हैं. मोक्ष पधारे उसही स्थितीमें अनंत काल कायम बने रहते हैं, यह शुक्लध्यान का चौथा पाया.

द्वितीय प्रति शाखा-"शुक्लध्यानस्य लक्षण"

सूत्र-सुक्कसणे झाणस्स चत्तारि लक्खणा पन्नंत तंजहा.
हैं, ... विवेगे, विउसग्गे, अवहे, असम्मोहे.
गके भवार्थ-शुक्लध्यान ध्याताके चार लक्षण (पहचा-

न) भगवंतने फरमाये सो कहते है. १ विवक्त=निवृत्ती भाव, २ विउत्सर्ग=सर्व सङ्ग परित्याग, ३ अवस्थित= स्थिरी भूत, और ४ असोह=मोह ममत्व रहित.

प्रथम पत्र "विवक्त"

१ विवक्त शुक्लध्यानीका सदा यह विचार रहता है

गाथा—एगो में सासउ अप्पा, नाण दंसण संजउ
सेसामें बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लरकणा.

अर्थ—मै एक हूं मेरा दूसरा कोइ नहीं है. मै दूसरे किसीका नही हूं. अर्थात मुजे किसीभी द्रव्यनें उत्पन्न नहीं किया. जीव द्रव्य अनादी अनंत है इस को उत्पन्न करनेकी या नाश करनेकी शक्ती, किसी भी अन्य द्रव्यमें नहीं है तेरोही यह कधी उत्पन्नभी नहीं हुवा, क्यों कि अनादी है और कधी नाश भी नहीं होनेका, क्यों कि अवीन्यासी और अनंत हू.-इस लियेही कहा है की "सासउ अप्पा" अर्थात् आत्मा शाश्वती हैं, जो उपजाता है, उसका नाशभी होता है, आत्मा उत्पन्न नहीं हुइ, इसी लिये इस का नाश भी नहीं है. आत्म शाश्वती हे आत्मा-असंग है अ-भंग है, अरंग है, सदा एकही चैतन्यता गुणमें रमण कर्ता है. पर सङ्ग की इसे कुछ जरूरती नहीं है आ-

त्मा का निज गुण ज्ञान और दर्शन है. वो अनादी अनंत है. यह ज्ञान और दर्शन कहने रूप दो है. परन्तु सद्भुत्व से एकही है. क्यों कि इकेला ज्ञान कोइ स्थान विशेष काल ठहर शक्ता नहीं है, ज्ञानके साथ ही दर्शन उत्पन्न होता है. ज्ञानका अर्थ जानना, और दर्शनका अर्थ श्रधना, ऐसा होता है, येही जीवके लक्षण हैं. इन सिवाय और जो कूछ है.* सुक्ष्म (अद्रष्ट) पदार्थ, व बादर (द्रश्य) पदार्थ यह सब चैतन्य द्रव्य से स्वभावमें और गुणमें अलग है क्यों कि "सब संजोग लक्खणं" अर्थात यह पुद्गल है, इससे इनमें संजोगिक विजोगिक स्वभाव सहजही है, यह इधर उधर से आके मिलभी जाते हैं, और विछडभी जाते हैं. इनका क्या भरोसा ? ऐसा जान शुक्ल ध्यानी स्वभावसे निवृती भावको प्राप्त होते है, अन्य प्रवृतीको आत्म स्वभावमे प्रवेश करनेका अवकाश ही नहीं मि-

*पुद्गल ६ प्रकारके होतेहै, १ बादर बादर जो टुकडे हुये पीछे आपसमें नही मिले जैसे पत्थर काष्ट वगैरे २ बादर=जो टुकडें (अलग२) हुये पीछे मिलजाय जैसे घृत तेलदूध वगैरे ३ बादर सुक्ष्म=दिखे परन्तु ग्रहण नही किये जाय, जैसे धूप छाया चादनी वगैरे ४ सुक्ष्म बादर=सरीर को लगे परन्तु दिखे नहीं जैसे हवा सुगन्ध वगैरे ५ सुक्ष्म=प्रमाणु ओं जो एकके दो नहीं होये ६ सुक्ष्म सुक्ष्म=कर्म वर्गणा के पुद्गल—गोमट सार

लता है. क्यों कि वो पुद्गलीक स्वभावसे स्वभावेही अलग है.

द्वितिय पत्र-"विउत्सर्ग"

२ विउत्सर्ग—शुक्लध्यानी सदा सर्व सङ्गके त्यागी स्वभावसे ही होते हैं. श्री कपिल केवलीजीने फरमाया है—

गाथा—विजहितु पुव्व संजोगं, नासिणेह कहि विकुवेज्जा;
असिणेह सिणेह करेहिं, दोस पदोसेहिं मुचए, भिख्खु
सव्व गंथ कलहंच, विप्प जहे तहा विहं भिख्खू
सव्वेसु काम जाएसु पास माणो न लिप्पई ताइ ४

अर्थ—सर्व ग्रन्थ—अर्थात् वह्य संजोग पूर्वात मात पितादिका पश्चात स्वशुर पक्षका; और अभ्यंतर राग द्वेष का तथा कपाय रूप प्रणतीका यह दोनो महा क्लेशका कारण भाप (मालम) हुवा, जिससे विप्य जहितु दोनो प्रकारके सम्बन्ध से स्वभाविकही ममत्व दूर हो गया, सम्बन्ध छूट गया. और शब्दादी सर्व काम, तथा गंधादी सर्व भोग पाश (वन्धन) जैसे मालम होनेसे, उनसे स्वभाविकही अलिप्त हुये, राग द्वेष रहित हुये, (पुव्व संजोग) यह पुर्व अनादी अनंत परिभ्रमण कराने वाले सम्बन्धसे पीछा कदापि कोइभी प्रकारसे

त्मा का निज गुण ज्ञान और दर्शन है. वो अनादी अनंत है. यह ज्ञान और दर्शन कहने रूप दो है. परन्तु सत्त्व से एकही है. क्यों कि इकेला ज्ञान कोइ स्थान विशेष काल ठहर शक्ता नहीं है, ज्ञानके साथ ही दर्शन उत्पन्न होता है. ज्ञानका अर्थ जानना, और दर्शनका अर्थ श्रधना, ऐसा होता है, येही जीवके लक्षण हैं. इन सिवाय और जो कुछ है.* सुक्ष्म (अद्रष्ठ) पदार्थ, व बादर (द्रश्य) पदार्थ यह सब चैतन्य द्रव्य से स्वभावमें और गुणमें अलग है क्यों कि "सब संजोग लक्खणं" अर्थात यह पुद्गल है, इससे इनमें संजोगिक विजोगिक स्वभाव सहजही है, यह इधर उधर से आके मिलभी जाते हैं, और बिछडभी जाते हैं. इनका क्या भरोसा ? ऐसा जान शुक्ल ध्यानी स्वभावसे निवृती भावको प्राप्त होते है, अन्य प्रवृतीको आत्म स्वभावमे प्रवेश करनेका अवकाश ही नहीं मि-

*पुद्गल ६प्रकारके होतेहै, १बादर बादर जो टुकडे हुये पीछे आपसमें नहीं मिले जैसे पत्थर काष्ट वगैरे २बादर=जो टुकडें (अलग२)हुये पीछे मिलजाय जैसे घृत तेलदूध वगैरे ३बादर सुक्ष्म= दिखे परन्तु ग्रहण नही किये जाय, जैसे धूप छाया चांदनी वगैरे ४सुक्ष्म बादर=सरीर को लगे परन्तु दिखे नहीं जैसे हवा सुगन्ध वगैरे ५ सुक्ष्म=प्रमाणु ओं जो एकके दो नहीं होवे ६सुक्ष्म सुक्ष्म= कर्म वर्गणा के पुद्गल—गोमट-सार

लता है. क्यों कि वो पुद्गलीक स्वभावसे स्वभावेही अलग है.

द्वितिय पत्र-"विउत्सर्ग".

२ विउत्सर्ग—शुक्लध्यानी सदा सर्व सङ्गके त्यागी स्वभावसे ही होते हैं. श्री कपिल केवलीजीने फरमाया है—

गाथा—विजहितु पुव्व संजोगं, नासिणेह कहि विकुवेज्जा;
असिणेह सिणेह करेहिं, दोस पदोसेहिं मुच्चए, भिख्खु
सव्व गंथ कलहंच, विप्प जहे तहा विहं भिख्खू
सव्वेसु काम जाएसु पास माणो न लिप्पई ताइ ४

अर्थ—सर्व ग्रन्थ—अर्थात् वह्य संजोग पूर्वोत मात पितादिका पश्चात स्वशुर पक्षका; और अभ्यंतर राग द्वेष का तथा कषाय रूप प्रणतीका यह दोनो महा क्लेशका कारण भाष (मालम) हुवा, जिससे विप्य जहितु दोनो प्रकारके सम्बन्ध से स्वभाविकही ममत्व दूर हो गया, सम्बन्ध छूट गया. और शब्दादी सर्व काम, तथा गंधादी सर्व भोग पाश (वन्धन) जैसे मालम होनेसे, उनसे स्वभाविकही अलिप्त हुये, राग द्वेष रहित हुये, (पुव्व संजोग) यह पुर्व अनादी अनंत परिभ्रमण कराने वाले सम्बन्धसे पीछा कदापि कोइभी प्रकारसे

सम्बन्ध नहीं करे, और (अम्णिह सिणेह करेहिं) अर्थात अस्नेहीयोसे वीतराग से स्नेह करे, की जो कदापि क्लेश और बन्धन का कर्ता नहीं होता है, सदा वाह्याभ्यंतर शांती और मुक्ती का दाता है. ऐसा सम्बन्ध स्वभाविक होनेसे सर्वथा राग द्वेष की प्रणती रहित हुये, उससें ज्ञानादी त्रि रत्नकी ज्योती स्वभाविक ही प्रदिस हुइ. अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप रूप चतुष्टय भुक्ता हुये.

तृतीय पत्र-"अवस्थित"

३अवास्थित स्थिरी भूत रहैं, अनंत चतुष्टय की प्राप्ती सें सर्वज्ञ, सर्व, दर्शी, निरमोही बने, अनंत शक्ती प्रगटी जिससे सर्व इच्छा निर मुक्त, "मेरू इव धीरा" अर्थात् ज्यों प्रचन्ड वायू से भी मेरू पर्वत चलायमान नहीं होता हैं, तैसेही महान प्राणांतिक कष्ट प्राप्त हुये भी प्रणामों की धरा कदापि चलविचल नहीं होती हैं. सदा अचल रहहे.

श्री उत्तराध्येयनजी सूत्र के दूसरे अध्याय में कहा है—

गाथा—समणं संजयं दंतं, हणीज्ज कोइ कत्थइ

नत्थी जीवरस नासति, एव पेहाज संज्जय. उत्तराध्येयन

अर्थात्-कषाय नष्ट होने से श्रमण हुये, स्वयं आत्मा का सधने से संयती हुये, रागादी रिपुके नष्ट होने से दमित हुये, ऐसे ऋषीराज माहाराज धीराज किसीभी 'कर्मोदय के योग सें कोइ किसी प्रकार का दुःख दे, प्राणांत होवें ऐसा उपसर्ग करे, तब वो यह विचार करें की, मेरी आत्मा अनुपसर्ग है. अखंड अविन्यासी हैं"

"नैवंछिदन्ति शस्त्राणी नैवंदहंति पावकं"यह आत्मा शस्त्रसे छेद भेद जाती नहीं हैं. अग्नीमे जले नहीं, पाणी में गले नहीं. इस लिये मुजे किसा भी प्रकार का उपसर्ग कोइ भी उपजाने स्मर्थ नहीं हैं, "नत्थी जीवस्स नासत्ती" जीवका नाश कदापी हेही नहीं, इस लिये में अम्मर हूं यह मनुष्य पशु या देव जिसका नाश कर ने प्रवृत हुये हैं, वो तो नाशिवंतकाही नाश करते हैं. आज कल या किसी भी अगमिक काल में, इसका नाश जरूर ही होगा मै ने क्रोडोयत्न 'किये तो रहे नहीं, ऐसा निश्चय जिन्नकी आत्मा में होने से उन को किसी भी प्रकार की बाधा पीडा दुःख माल्लुम पडताही नहीं हैं.यथा द्रष्टान्त, जैसें गज सुकुमल मुनिश्वर के सिर (मस्तक) पे खीरे (अग्नीके ... ... में तडर करती खोपरी जलके

भस्म भूत होगइ, परन्तु उनोंने नाक में शल्य ही नहीं डाला खन्धक ऋषि राज के सर्व सरीर की त्वचा (चमडी) जैसे मूरे पशु क चर्म उदेड तैसे उदेडी (निकाल) डाली, वहां रक्तकी प्रनाल वह गइ परन्तु. उन्होने जरा सी साट (शब्द) भी नहीं किया स्कन्ध ऋषिके५०० शिष्यों कों, तैली तिल कों पीलता हैं त्यों घानी में पील डाले, परन्तु वो नेत्र में जरालाली भी नही लाये, मेहतारज ऋषिवरके सिरपे आला चर्म वान्ध, धूप मे खडे कर दिये. जिससे जिनकी ऑखो छिटक पडी; परन्तु मनमें जरासी दुभाव नहीं लाये. ऐसे२ अनेक दाखले शास्त्रसे दिये हुये हैं. ऐसे महान घोर उपसर्ग में प्रणामोंकी धारा जिनोंने एकसी बनी रक्खी, यह सहज नहीं है. तो मोक्ष प्राप्त करनाभी सहज नहीं है. उन्ह महात्मा को यही निश्चय होगया था की "नत्थी जीवस्स नासत्थी" जीव अजरामर है. इसका नाश कदापि होताही नहीं हैं. जो जले गले हैं वो अलगही है. और मै अलगही हूं. फक्त द्रष्टा हूं. ऐसे प्रणामो की स्थिरी भूत एकत्र धारा प्रवृतनेसे, उन्होने किंचित कालमे अनंत कर्म वर्गणाका क्षय किया. अनंत, अक्षय, अव्याबाध मोक्षके सुख प्राप्त किये.

———∽⁂∽———

चतुर्थ पत्र-"अमोह"

४ अमोह—अर्थात् शुक्लध्यानी स्वभाव सेही मोह रहित निर्मोही होते है. "मोह बन्धति कर्माणी, निर्मोहो वीमुच्यते" अर्थात्-मोह कर्म बन्ध करता हैं और निर्मोहपणा कर्म के बन्धन से छुडाता है, ऐसा निश्चय होनेसे शुक्लध्यानी के निर्मोही अवस्था स्वभाव सेही प्राप्त हो जाती है, मोह उत्पन्न करने जैसा कोइ भी पदार्थ-उनको भाप नही होता है.

उत्तराध्येयनजी सुत्रमे चितमुनीश्वरने कहा है.

गाथा—सव्व विलं वियं गीयं, सव्व नट्टं वीडं वियं;
सव्वं आभरण भारा, सव्वे काम दुहा वहा.

अर्थात्="सर्व गीत-गायन है सो विलाप जैसे है," क्यों कि विलाप शब्दका और गीत शब्दका उत्पन्न होनेका और समाव होनेका स्थान एकही है. [मुख और कान] और दोनोही राग द्वेषकी प्रणतीसे पूर्ण है, गायन भी प्रेम का दर्शक और उदासी का दर्शक दोनो तरहका होता है तैसेही रूदनभी प्रेम दर्शक और उदासी दर्शक दोनो तरहका होता है, यह भाव मोह गींर्व जीवके मानने उपर है. गीतो मोह मद से भरे हुये, कर्म वीकार से उद्भवे हुये, चितको

विचित्रता उपजाने वाले, इत्यादी अनेक असद्भावका कारण है. ऐसा जाण या केवल ज्ञानसे प्रत्यक्ष देख, देवता, किन्नर या मनुष्यादी सम्बन्धी गीत श्रवण करते हुयेभी स्वभावसे किंचित राग द्वेषको प्राप्त नहीं होते हैं. सर्व नृत्य-नाटक हो रहें हैं सो विटंबना मात्र है. जैसी वीटंवना जीवोंकी चतुर्गति परिभ्रमण में होती हैं, वैसीही वीटंवना कर्माधीन हो वेचारे करते है. कधी पुरुष, कधी स्त्री, कधी उंच, कधी नीच, ऐसा अनेक विचित्र रूप धारण कर अनेक जनके वृन्दमें या अनेक देवोके वृन्दमें हांस रुदन नृत्य आदी कर बताते है, और भवोंकी विचित्रता को भूल दोनो (नृतिक और प्रेक्षक) हर्षानन्द में गर्क होते है, जाणे चतुरगतिकी विटम्बना सेही त्रस्त नहीं हुये. सो अब-स्वतः नाच या नृत्य देख त्रसी करते है, यह विटम्बना जगत्की देख सर्व जगत्का नाटक ज्ञान कर देख हूयेभी राग द्वेषमय नहीं होते है, "सर्व आभरण-भूषण भार (वजन) भूत हैं" पृथवीसे उत्पन्न कंकर पत्थर लोहदिक-सामान्य धातू और पृथवीसेही उत्पन्न हुये रजत (चांदी) सुवर्ण या हीरा पन्ना रत्नादी पदार्थ उत्पन्न होते हैं. ऐसे दोनो एक से भार भुत होते भी. सरागी जीवों कंकर-पत्थर का वजन देने से दुःख मानते हैं. और

सुवर्ण रत्नके भूषणों से लदे हुये फिरते हर्ष मानतेहै. वितरागी पुरूष यथार्थ द्रष्टी से देखते हुये विभुषित पे और नग्न पे स्वभाव से ही रागद्वेष रहित मध्यस्थ भवमें रहते हैं. और जिले जक्तमे दुःख है, वे सव काम भोग से ही उत्पन्न होते है और जो काम भोग का अर्थि हैं वोही अनंत दुःख मय संसार भार को वहाता है—उठाता हैं, काम भोग की अभीलाषा वालाही दुःख पाताहैं यह सर्व तमाशा प्रत्यक्ष जगत् मे दिख रहा हैं, ऐसा जाण ज्ञानी महात्मा स्वभा से ही सर्व अभीलाषा रहित हो शांतवनें हैं, सर्वथा मोहका नाश होने से वितरागी वने हैं.



तृतीयप्रतिशाखा शुक्लध्यानस्य आलम्बन

सूत्र—सुक्करसण झाणस्स चत्तारी आलंवणा पन्नते तंज्जहा खंत्ती, मुत्ती, अज्जव, मद्दव

अर्थ—शुक्लध्यान ध्याता को चार प्रकारका आधार हैं

१ क्षमका, २ निर्लोभताका, ३सरलताका, और ४ नम्रताका.

प्रथम पत्र—'क्षमा"

विचित्रता उपजाने वाले, इत्यादी अनेक असद्भावका कारण है. ऐसा जाण या केवल ज्ञानसे प्रत्यक्ष देख, देवता, किन्नर या मनुष्यादी सम्बन्धी गीत श्रवण करते हुयेभी स्वभावसे किंचित राग द्वेषको प्राप्त नहीं होते हैं. सर्व नृत्य-नाटक हो रहे हैं सो विटंवना मात्र है. जैसी वीटंवना जीवोंकी चतुर्गति परिभ्रमण में होती हैं, वैसीही वीटंवना कर्माधीन हो वेचारे करते है. कधी पुरुष, कधी स्त्री, कधी उंच, कधी नीच, ऐसा अनेक विचित्र रूप धारण कर अनेक जनके वृन्दमें या अनेक देवोंके वृन्दमें हांस रुदन नृत्य आदी कर बताते है, और भवोंकी विचित्रता को भूल दोनो (नृतिक और प्रेक्षक) हर्षानन्द में गर्क होते है, जाणे चतुरगतिकी विटम्वना सेही त्रस्त नहीं हुये. सो अब स्वतः नाच या नृत्य देख त्रती करते है, यह विटम्वना जगत्की देख सर्व जगत्का नाटक ज्ञान कर देख हूयेभी राग द्वेषमय नहीं होते है, "सर्व आभरण-भूषण भार (वजन) भूत हैं" पृथवीसे उत्पन्न कंकर पत्थर लोहदिक सामान्य धातू और पृथवीसेही उत्पन्न हुये रजत (चांदी) सुवर्ण या हीरा पन्ना रत्नादी पदार्थ उत्पन्न होते हैं. ऐसे दोनो एक से भार भुत होते भी. सरागी जीवों कंकर पत्थर का वजन देने से दुःख मानते हैं. और

सुवर्ण रत्नके भूषणों से लदे हुये फिरते हर्ष मानतेहै. वितरागी पुरूष यथार्थ द्रष्टी से देखते हुये विभुषित पे. और नग्न पे स्वभाव से ही रागद्वेष रहित मध्यस्थ भवमें रहते हैं. और जित्ने जक्तमें दुःख है, वे सव काम भोग से ही उत्पन्न होते हैं और जो काम भोग का अर्थि हैं वोही अनंत दुःख मय संसार भार को वहाता है–उठाता हैं, काम भोग की अभीलाषा वालाही दुःख पाताहैं यह सर्व तमाशा प्रत्यक्ष जगत् में दिख रहा हैं, ऐसा जाण ज्ञानी महात्मा स्वभा से ही सर्व अभीलाषा रहित हो शांतवनें हैं, सर्वथा मोहका नाश होने सें वितरागी वने हैं.



तृतियप्रातिशाखा शुक्लध्यानस्य आलम्बन

सूत्र–सुक्कस्सणं झाणस्स चत्तारी आलंवणा पन्नते तंज्जहा खत्ती, मुत्ती, अज्जव, मद्दव

अर्थ–शुक्लध्यान ध्याता को चार प्रकारका आधार हैं.

१ क्षमका, २ निर्लोभताका, ३सरलताका, और ४ नम्रताका

प्रथम पत्र– 'क्षमा"

क्षमा श्रमण क्षमा स्वभावमें, स्वभावसे रमण करते अन्यकी तर्फसे, पर पुद्गलोंसे, या स्व प्रणतीकी वेप्रीतता से, जो चितको क्षोभ उपजे, ऐसे पुद्गलोंका सम्बन्ध मिलनेसे निजात्म के, या पर आत्मके, ज्ञान दर्शन चारित्र रूप पर्यायकी, संकल्प विकलपता कर घात करें नहीं, करावे नहीं, करतेको अच्छा जाने नहीं अपने क्षमा रूप अमुल्य गुणका कदापि नाश होने देवे नहीं, शुभाशुभ संयोगोंसे चित वृतीको स्थिर रक्खे, और पुद्गलोंके स्वभावकी तर्फ द्रष्टी रखके विचारे की जैसा २ जिस २ वक्त, जिन २ पुद्गलोंका जिस२ तरह प्रणती में प्रगमनेका द्रव्यादिक संयोग होता है, वो उसी वक्त प्रगमें विन कभी रहताही नहीं हैं. यह जगतका अनादी स्वभाव हैं. शुक्लध्यानीकी इस स्वभावसे प्रणति स्वभाविक विरक्त होनेसे वो स्वभाव उनमें नहीं प्रणमता है, ऐसे अनेक प्रणतीयों जक्त मे भ्रमण करती हुइ वितरागीकी आत्मका स्पर्श कर खराव नहीं कर शक्ती है. जगत्का जो कार्य है सो तो, अनादी से चला आता हें, और अनंत काल तक चलाही करेगा. मन, बचन, कायाके, शुभाशुभ पुद्गलोका चक्कर भ्रमताही रहता है, मिथ्या भ्रमसे भ्रामित जीव, दुविचार, दुउच्चार, और दुआचार, द्वरा; करना, कराना,

और अनुमोदना कर ज्यों चीगटा घडा उडती हुइ रज- को अकर्पण करता है, और मलीन होता है. तैसेही वो उन पुद्गलोंको अकर्पण कर मलीन होते है; जिससे नि- ज स्वभावका अच्छादन हो, पर स्वभावमें रमण कर, विभाको प्राप्त होते है. और ज्ञानी कांचके घडेकी तरह निर्लेप या लुक्खे (चिकास रहित) होनेसे वो ज- गत्में भ्रमते हुये पुद्गल उनके आत्मापे ठेहर नहीं स- क्ते हैं. क्यो कि वो मनादी त्रियोगकी अशुभ प्रवृत्तीसें स्वभावेही अलग रहे निजात्मिक ज्ञानादी गुणमें रमण करते है, मतलब की, इस जगत् मे अनेक जीव बोलते है, और अनेक जीव सुणते हैं उसपे अपन ध्यान नहीं देते है, तो वो पुद्गल अपनको राग द्वेषके उत्पन्न कर्ता नहीं होतें है, और उन्ही शब्द को आपन अपनी तर्फ खेचे की यह गाली मुजेही दी की, तुर्त वो पुद्गल अपनी आत्मा मे प्रणम, अपन को द्वेषी बना देते हैं. अब अपन जरा दीर्घ विचार सें देखें तो, अ- पनी निंदा कोइ करताही नही है, क्योकि, निंदा हो- य ऐसा अपना निजात्मा का स्वभाव ही नहीं हैं, आ- त्मा तो ज्ञानादी अनंत गुणो का सागर है, और ज्ञा- नादी गुणों की कोइ निंदा करताही नहीं हैं, निंदा तो विषय, कषायादी प्रकृत्ती यों की होती है

विषय कषायादी प्रणती कर्म जनित हैं, और कर्म पुद्गल रुप हैं, आत्मासे उसका स्वभाव विभ्रित हैं. और इसीही लिये निन्दा पात्र हैं, उनकी निन्दा तो होवेगी. तूं चैतन्य रुप उनसे अलग हो फिर उनकी प्रणती में प्रणम मलीन क्यों होता हैं, बुरा क्यों मानता हैं, जिनकों जग बुरा कहते हैं, उन्हीं को वो वच न लगो. और उन्ही दुर्गुणोका नाश होवो, की जिस से मेरा भला होवे. ऐसी भलाइ होनेके स्थान, कोण मुझ बुराइ करेगा, अर्थात् कोइ नहीं. ऐसे और इससे भी अत्युत्तम विचार अव्वल सेही शुक्लध्यानी की आत्मामें ठसे रहते है, और प्रत्यक्षमें देख रहे है की, क्रोध विश्वानल रूप हों, जीवोंको छिन्न भिन्न कर रहा है, और मेरी आत्मा उस लायसे अलगहो, ज्ञानादी गुण रूप समुद्र के महा ओघमें डूब रही है, इसे वो अग्नी स्पर्श करही नहीं सक्ती है. आंच लगही नहीं सक्ती है, सदा संबूड, निबुड, शांत शीतली भूत अखन्डानन्द में रमते है.

द्वितिय पल-"निर्लोभ"

२मुत्ती=मुक्त=हुये, छूटगये, अर्थात् लोभ त्रष्ण

शुक्लध्यानी ने स्वभावसे जडा मूलसे उच्छेदन कर, संतोपमें संस्थित हुये हैं. ज्ञानी ज्ञानसे प्रत्यक्ष जानते हैं की इस जक्तमें कोइभी ऐसा पदार्थ नहीं है, की जिसकी मालकी अपने जीवने नहीं करी, या उनका भोगोपभोग नहीं किया, अर्थात् सब पुद्गलकी मालकी अनंत वक्त कर आया है, और सब पुद्गलोंका भोगभी अनंत वक्त लें आया है अश्चर्य यह है कि, एक वक्त अहार करके निहार करी हुइ वस्तुकों देखते ही, घ्रणा, दुगंच्छा उत्पन्न होती है, और जिन वस्तुओंका अनंत वक्त अहार कर निहार कर आया उन्होंकाही पीछा भोगोपभोग करने बहुतसे जीव तरस रहे हे, तडफ रहें हें, उनकी त्रष्णासे व्याकुल हो रहें हैं, त्रप्ती आइही नहीं है, तो अब क्या विना संतोप किये कदापी त्रप्ती आवेगी? हा हा! क्या जब्बर मोहकी छटा! के जीवों बिलकूल वे विचार वन रहेहै, और इस वृतमान कालके सरीर के पुद्गल, तथा पहले धारन किये हुये, सब सरीरके पुद्गल जितने जगत्में जीव है, उन सबका भक्ष बना है. सब ने अहार कर के निहार कर दिया है. तैसेही अब जीवोंके धारण किये सरीरके पुद्गलोंका, आपन भी अनंत वक्त भक्षण कर लिया, जगत् की सब ऋद्धिके मालक अपन बने, और जगत्के ज

अनंत पर्याय रूप इस संसारमें अपन वास अपन बने, और सर्व संसार पर्याय अपन में प्रणम आये, सर्व खाद्य खाये, सर्व पेय पीये, सर्व भोग प्रणमी, परन्तु गरज कुछ नहीं सरी, आखीर वैसेके वै भोगते, से. इस लिये मै न किसका हुवा, न मेरा कोइ हुवा, न मुजे कोइने खाया, और न मैने किसीको खाया. पुद्गलही पुद्गलका भक्षण करता है, और छोडता है. और वो भाव पुद्गलोंमें ही प्रगमते हैं. तैसेही निर्गमते है, मुजे उससे जरूरही क्या, मै चैतन्य, यह पुद्गल, ज्यों नाटकिया नाना तरह का रूप धारण कर प्रेक्षक को खुश करने अनेक चरित्र करता है. रोता हैं, हंसता है, वगैरे, परंतु प्रेक्षक को उसके झगडे देख सुख दुःख अनुभवनेकी क्या जरूरत है, तैसेही यह जगत रूप नाटकका मैं प्रेक्षक हूं. इसका विचित्रता देख मुज उसके विचारमे लीन हो, दुःखी वननेकी कुछ जरूरत नहीं है. यह भाव या इससे भी अत्युत्तम भाव शुक्ल ध्यानीके हृदय में स्वभावसेही प्रवृतते है, जिससे सहजही सर्व सङ्गके परित्यागी हो सिद्ध तुल्य सदा निर्छित भावमें त्रसपणें आत्म स्वभावमें रमण करते है.

———

तृतीय पत्र-"आर्यंव"

२ अज्जव-आर्जव-सरलता युक्त. प्रवृतनेका स्वभाव, शुक्लध्यानीका स्वभाविकही होता है. सुयगडांग सूत्र में फरमाया है. की 'अज्जुधमं गइ तच्चं, अर्थात् आर्य सरल आत्माही धर्म मार्गमें गति प्रवृती कर शक्ती हैं, ज्ञानी समजते हैं, की वक्र आत्माका धणी, अन्यको ठगने जाते अपही ठगाता हे, और एक वक्त ठगाया हुवा, प्राणी कर्मानुयोगसे भवांतरोकी श्रेणीयोंमें अनंत वक्त ठगाता है, सर्व पुद्गल परतणी में प्रणमे हुये पदार्थ कुटिलता से भरे हुये हैं. सकर्मि आत्मा उनमें प्रणाम प्रवृताती हुइ, उनमेंसे पुद्गलोंका अकर्षण कर उस रूप वनती हे उसे 'मायाशल्य' कहते है, मयाशल्य मिथ्या दर्शनका मूल है, मायाशल्यसे आत्माके ज्ञानादी गुणका अच्छादन होता हे ढांकता है, 'शल्य' कॉटे को कहते हे, जैसा सरीरके अन्दर रहा हुवा कॉटा तन्दुरुस्तीकी हरक्तत करता हे, तैसे मायारूप शल्य (कॉटा) जिनके ह्रदय से नहीं निकला हैं, उनके ध्यानमें दुरस्ती न रहती है, जैसे सीधे म्यान में बांकी तरवार प्रवेश नहीं करती हैं, तैसेंही वक्र प्रकातिका धणीके ऱ्हदयमें शुक्लध्यान प्रवेश नहीं

करता है, ऐसा निश्चय होनेसे शुक्लध्यानीके न्हदयसे माया स्वभावसेही नष्ट होती है.

और भी शुक्लध्यानी विचारते हैं, की कपट किस्के साथ करे, क्योंकि चैतन्यके निज गुण तो कपटसे वंचित (छलित) नहीं होते हैं, आत्माका निज स्वभाव तो सरल शुद्ध पवित्र हैं, उसे छोड मलिनतामें पडनाही अज्ञान दिशा है. ऐसा जान, शुक्लध्यानी स्वभासेही, परम ज्ञानी, परमध्यानी, निष्कपटि, निर्विकार आत्म गुणमें सदा लीन. वाह्याभ्यांतर शुद्ध सरल प्रवृती रहती है.

चतुर्थ पत्र-"मार्दव."

मद्दव–मार्दव किया है, मान का. शुक्ल ध्यानी का, अभिमानका. मर्दन स्वभाव से ही होता हैं, क्यों कि वो जानते है; की. इस जक्त में वडा मीठा, और वडा जब्बर शत्रू "अभीमान" हैं, उंचा चडा के नीचे डाल देता हैं. देवलोक के सुख से जो गर्क हो रहे है; उन्हे तिर्यंच गति में डालता हैं, इत्यादी अनेक विटंवना अभीमान से होती है, और भी विचारते हैं, की अभीमान किस बात करना, तथा मान यह हैं क्या? देखीये. अभी किसी निरक्षर, मुर्ख मनुष्य को

कोइ पण्डित कहें. तो वो चिडता हैं. निरधन को श्री मंत कहने से वो बुरा मानता हैं, कहता है क्या हमारी मस्करी करते हो. बस तैसेही ज्ञानी के कोइ गुण ग्राम करे तो वो योंही विचार ते हैं, यह संपूर्ण गुण तो मेरी अत्मा में हेही नहीं, तो मुजे उन बचन को सुण अभीमान करने की क्या जरुर हैं. यह मेरी प्रसंस्या नहीं करता हैं, परंन्तु मुजे उपदेश करता है, की, सत्य सील, दया, क्षमा, दी गुण तुम स्विकारो! शुक्ल ध्यानी सर्वो तम गुण संपन्न हो के भी, उन्हे गुण का गर्व किंञ्चित मात्र कदापी नहीं होता है, इस लिये वो सदा निर्भीमानी रहते हैं. तथा विचारना चाहीये की, जो गुण ग्राम करते हैं, वो तो गुण के करते हैं, और उसका अभीमान गुणों को तो होताही नहीं हैं, फिर बीच में मुजे करने की क्या जरुर हैं, संसार में सुनतें हैं की, असुक ने असुक अच्छी वस्तु की सराःवणा (परशंस्या) करी जिस्स से यह विगड गइ (निजर लग गइ) बस तैसेही गुणानुवाद करने से तूं फोमायगा तो तेरे इ गुणों का खरावा होगा. ऐसा जान के खरावा क्यों करना.

औरभी जो सद्गुणोंकी प्राप्ती हुइ है, वो अ सुधारा करने हुइ है, और उसीसे बीगाडा —

कैसी जब्बर भूल. इत्यादी निश्चय शुक्लध्यानी पुरुषे को स्वभाविक होनेसे सदा स्वभाविक उनकी आत्म निर्भिमानी, नम्र भूत हुइ है.

इन चार वस्तुओंका आलम्बन शुक्लध्यानीको सहज स्वभाविक होनेसे अखंड अप्रति पाती. ध्यानमें रहते है.



चतुर्थप्रतिशाखा "शुक्लध्यानस्य अनुप्रेक्षा"



सुक्कसणं झाणस्स, चत्तारी अणुपेहा, पन्नंता तंजहा अवायाणुप्पेहा, असुभाणुप्पेहा, अणंतवित्तीयाणुप्पेहा, वीप्परीणामाणुप्पेहा.

अर्थात्—शुक्लध्यान ध्याताकी ४ अनुप्रेभा विचारना १ अपायानुप्रेक्षा=दुःखसे निर्वृतनेका विचार. २ अशुभानुप्रेक्षा=अशुभ प्रवृती आदीसे निर्वृतनें का विचार: ३ अनंत वृतीयानुप्रेक्षा=अनंत प्रवृतीने निर्वृतने का विचार. और ४ विप्रामाणानुप्रेक्षा=विप्रित प्रणाम सेनिर्वृतनेका विचार. यह ४ प्रकारका विचार शुक्लध्यनीका स्वभाविक होता है.

प्रथम पत्र "अपयानुप्रेक्षा"

१ अपयानुप्रेक्षा—संसारमें परिभ्रमण करते हुये जीवको मिथ्यात्व २ अव्रत, ३ प्रमाद, ४ कषाय और ५ योग यह अनंत विटंवना देने वाले है. १ श्री वीतराग दिशा निजात्मके अनुभवमें जो विप्रीत रुची उसमें अभीनिवेश (अग्रह) उत्पन्न करनेवाला तथा बाह्य विषय में, पर सम्बन्धी शुद्ध आत्म तत्व सें लगाके, संपूर्ण द्रव्योंमें जो विप्रीत अग्रह करे, सो मिथ्यात्व. २ अभ्यंतर मे आत्म प्रमात्मा के स्वरूपकी भावनासे उत्पन्न हुवा, जो परम सुख रूप अमृत समान भोजन प्रासन करनेकी रुची होए उसे पलटावे. तथा बाह्य विषय में वृतादी धारन नहीं करने रूप जो प्रवृती सो अव्रत. ३ अभ्यंतर में प्रमाद रहित जो शुद्ध आत्मा है उसके अनुभवसे चलाने रुप जो प्रणती, तथा बाह्य विषय मे जो मूल और उत्तर गुणमे अतीचार उत्पन्न करने वाला जो है, सो प्रमाद ४ अभ्यंतर मे परम उपशम मूर्ती केवल ज्ञानादी अनत गुण स्वभावसेही धारन करने वाला, निजात्म परमात्मके स्वरूपको क्षोभ के करने वाले, तथा वाह्यमें विषयके सम्बन्धसे क्रूरता आदी आवेश रूप जो क्रोधादी है, सो कषाय.

और ५ निश्चय में क्रिया रहित आत्माको भी जो व्यवहार से विर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशम से उत्पन्न मन वचन, और कायाके पुद्गल वर्गणाका अवलम्बन करने वाला कर्मोंको ग्रहण करनेमें कारण भूत आत्माके प्रदेशोंका संचलन, सो योग.

यह पांच अश्रव संसारी जीवों के अनादी से प्रणातिमें प्रणम रहेहै, जिस से अनंत ससर प्रणति प्रणमने का कार्य होता हैं, शुक्ल ध्यानी नें पंचही आश्रवों का स्वभाव सेही नाश कर १क्षयिक, सम्यकत्व २यथा ख्यात चारित्र ३ अप्रमादी; ४ क्षिण, कषायी, और स्थिर स्वभावी हैं, इन पंच गुणोंको स्वभावी प्राप्त करते हैं.

द्वितिय पत्र "अशुभानु प्रेक्षा"

२ अशुभानु पेक्षा—जीवों का शुभाशुभ होने के दो मार्ग है. १ निश्चय और २ व्यवहार. निश्च सो निजगुण में प्रवृती करने को कहते हैं. और व्यवहार बाह्य प्रवृती को कहते हैं, छद्मस्तों के लिये अव्वल व्यवहार हैं, अर्थात् व्यवहार शुद्ध कार्म कर आत्म साधन करते निश्चय की तर्फ द्रष्टी रखते हैं; और सर्वज्ञ निश्चय की प्रवर्ती करते हुये भी, व्यवहार को नहीं

चीगाडते हैं, ऐसेही कर्म सम्बन्ध भी जाना जाता है, व्यवहार में कर्म के कर्ता पुम्लहैं जैसे त्रीयोग रहित शुद्ध आत्मा की जो भावना हैं, उस से वे मुख होके, उपचरित असद्भुत व्यवहार से ज्ञाना वर्णियादी द्र-व्य कर्मोका, तथा उदारिक, वेक्रय, और अहारिक यह तीन सरीर,-अहार, सरीर, इन्द्र, शाश्वोश्वास, मन और भाषा, यह पर्याय, इत्यादी योग्य से जो पुद्गल पिण्ड नो कर्म है, उनकी तथा उसी प्रकार से, उप चरित असम्दूत बाह्य विषय, घटपटादी का भी येही कर्ताहैं. यह तो व्यवहार की व्याख्या कही. अब निश्चय अपे क्षा से चैतन्य कर्मका कर्ताहें, सो इस्तरह की-रागादि विकल्प रूप उपासी से रहित, और क्रिया रहित, ऐ से जीव ने जो रागादी उत्पन्न करने वाले कर्मों का उपारजन किया, उन कर्मो का उदय होने से, अक्रि य निर्मल आत्मा ज्ञानी नहीं होता हुवा, भाव कर्म का या राग द्वेष का,कर्ता होता हैं और जब यह जीव, तीनो योग्यके व्यवहार रहित, शुद्ध तत्वज्ञ एक स्वभाव मे परिणमता हैं, तब अनत ज्ञानादी सुख का, शुद्ध भावों का छद्मस्त अवस्था मे भावना रूप विविक्षित, एक देश शुद्ध निश्चय से कर्ता होता हैं, और मुक्त अवस्था में तो, निश्चय से अनंत ज्ञानादी शुद्ध भावो

का कर्ताहीहैं.

इस लिये शुद्धाशुद्ध भावोंकी जो प्रणती है, उसका कर्ता जीव जाणना. क्यों कि नित्य निराकार निष्क्रिय, ऐसी अपनी आत्म स्वरूपकी भावना से रहित जो जीव है, उसीको कर्मका कर्ता कहा है, पर प्रणितीही शुभाशुभ बन्धका मुख्य कारण है. जिससे निर्वृत अपनी आत्मामें ही भावना करे, और व्यवहारकी अपेक्षासे सुख और दुःख रूप पुद्गल कर्मोंका भोगवता है. उन कर्म फलोंका भुक्ताभी आत्माही है. और निश्चय नयसे तो, चैतन्य भावका भुक्ता आत्मा हैं, वो चैतन्य भाव किस सम्बन्धी है, ऐसा विचार करीये तो, अपनाही सम्बन्धी है. कैसे है की, निज शुद्ध आत्माको ज्ञानसे उत्पन्न हुवा, जो परमार्थिक सुख रूप अमृत रस उस भोजनको न प्राप्त होते, जो आत्मा है, वो उपचारित असद्भूत व्यवहारसे इष्ट तथा अनिष्ट, पांचो इंद्रिय के विषय से उत्पन्न होते हुये सुख, तथा दुःख भोगवता है, ऐसेही अनुपचारित, असद्भूत व्यवहार से अंतरंग में सुख तथा दुःखको उत्पन्न करनें वाला, द्रव्य कर्म सत्ता असत्ता रूप उदय है, उसको भोगवता है, और वोही आत्मा हर्ष तथा शोक को प्राप्त होता है, और शुद्ध निश्चय में तो प्र-

मात्म स्वभावका जो सम्यक श्रधान ज्ञान और क्रिया उससे उत्पन्न अविन्यासी अनन्द रूप एक लक्षणका धारक सुखमृतको भोगवता है.

सारांश—जो स्वभावसे उत्पन्न हुये सुखामृत के भोजनकी अप्राती से, आत्मा इन्द्रिय जनित सुखको भोगवता हुवा, ससारमें परिभ्रमण करता है, और स्व स्वभाव उन्पन्न हुये, इन्द्रियांके अगोचर सुख है, सो ग्रहण करने योग्य है शुक्लध्यानके ध्याता उन्हे स्वभाव सेही ग्रहण करते है, जिससे संसार रूप वृक्ष शुभाशुभ कटु मधु, उच्चता नीच्चता, रूप फलोंका दाता पुद्गल प्रणतीसे प्रणमा हुवा जो स्वभाव है उसका सहजही त्याग हो जाता है शुद्ध आत्मानंद चैतन्य मय स्व भावमें सदा रमण करते हे.

तृतीय पत्र-"अनंतवृतीयानुप्रेक्षा'

३ अनंत वृतीयानु प्रेक्षा—अनत संसार मे परिभ्रमण करनेकी जो प्रवृती हे. उससे निवृतनेका स्वभाविक ही विचार होवे, की इस संसार मे अनत पुद्गल प्रावृतन किये. वो ८ प्रकारसे होता हे, १ द्रव्यसे बादर पुद्गल प्रवृतन सो उदारिक वैक्रय, तेजस, कारमाण मन, वचन, और श्वाश्वोश्वास यह ७ तरह के हे,

उनके जित्ने पुद्गल जक्तमें हैं, उन्ह सबको स्पर्श्ये. २ द्रव्यसे सुक्ष्म पुद्गल प्रावृतन सो पूर्वोक्त सातही प्रकार के पुद्गलोंमे से प्रथम सर्व जगत्में रहें. उदारिककेसब पुद्गल अनुक्रमें स्पर्श्ये, किंचितही नहीं छोडे, फिर वैक्र य के फिर तेजसके यो ७ ही के अनुकर्में स्पर्श्यें. ३ क्षेत्रसे बादर पुद्गल प्रावृतन सो मेरु प्रवृतसें दशाही दिशा आकाश की असंख्यात श्रेणी मकडीके जालेके तं तवेंकी तरह फैली है, उन्ह सबपे जन्म मरण, कर स्पर्श्यें, ४ क्षेत्रसे सुक्ष्म पुद्गल प्रावर्तन सो पूर्वोक्त श्रेणियोंमे से पहले एकही श्रेणि ग्रहण कर उसपे अनुक्रमें (मेरुसे अलोक तक) जन्म मरण कर स्पर्श्यें जराभी नहीं छोडे, फिर दूसरी श्रेणिभी इस तरे यो सब श्रेणि स्पर्श्यें, ५ कालसे बादर पुद्गल प्रावृतन सो समय आंवालिका स्तोक लव महुर्त दिन, पक्ष, मांस, ऋतु, आयन, वर्ष, युग, पूर्व, पल्य, सागर, सर्पणी, उत्सर्पणी और कालचक्र, इन सबकालमें जन्म मरण कर स्पर्श्यें, ६ काल से सुक्ष्म पुद्गल प्रावर्तन सो, पहले सर्पणी काल बेठा, उसके पहले समय जन्म के मरे फिर दूसरी वक्त सरपणी लगे तब उसके दूसरे समयमे जन्मके मरे,
बलक्षा का समय पूरा होवे वहांतक
उसके पहली आंवालिका मे जन्मे

में यो स्तोकका काल पूरा करे. ऐसे अनुक्रमे सब काल जन्म मरण कर स्पर्श्यें ७ भावसे बादर पुद्गल प्रावर्तन सो ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श. इन २० ही बोलके सर्व पुद्गलोंको स्पर्श्यें, ८ भावसें सुक्ष्म पुद्गल प्रावृत सो पहले एक गुणे काल वर्णके जगत् में जित्ने पुद्गल हैं, उन सबको स्पर्श्यें, फिर दुगणे कालेकों. यों त्री गुणों जावत असंख्यात गुणे काले वर्ण के पुद्गल स्पर्श्य यो सर्व काले वर्णके पुद्गल स्पर्श्यें पीछे, हरे वर्णके पुद्गल कालेकी तराह, अनुक्रमें स्पर्श्यें इसी तरह २० ही तरहके पुद्गलको अनुक्रमें स्पर्श्यें.

यह ८तरह पुद्गल प्रावर्तन करे उसे एक पुद्गल प्रावृतन कहना, ऐसे अनत पुद्गल प्रावर्तन एकेक जीव संसार में करते हैं;और अपने जीव ने भी कियेहैं ऐसी भव भ्रमणा मे भ्रमण करते २अनंतानंत पुण्योदय होने से, मनुष्य जन्म से लगा शुक्लध्यानारूढ होने जित्ने अत्युत्तम समग्रीयों प्राप्ती हुइहै यह उन्ह पुद्गलों के प्रावृतन से निर्मुक्त कर,-अखंडित, अचल, निरामय, मोक्षके सुख देने वाली हे ऐसा निश्चय शुक्ल ध्यानी कों स्वभावसेही होता हैं. और अनंत जीव अनंत पुद्गलो का प्रावृतन करते विभाव रूप विचित्रता कों प्राप्त होते है वो प्रति""या उनकी शुद्ध आत्मामें

मेंहीहै. परन्तु पर. गुणों से ढके हुयेथे, जिस से इत्ने
दिन पैछान में नही आये अब उन्ह पुद्गलो से विप्रित
शक्ति धारण करने वाले. गुणका संयोग होने सें, निजगु
ण प्रगटे, जैसे वायु के जोग से वद्दल विखर तें है, और
सूर्य का प्रकाश होताहै, तैसे पुद्गल पर्याय रूप वद्दल
वैराग्य वायू से दूर होने से अनंत ज्ञान जोती का अ
णोदय हुवा जिस से पूर्ण प्रकाश होने का निश्चय हुवा
तथा पूर्ण प्रकाश हुवा जिस से कालांतरों सर्व पुद्गल
परिचय से दुर होवूंगा सत्य चित्य आनन्द रूप प्रगटे
गा.तब निरामय नित्य अटल सुखका सुक्ता बनूंगा.

पुष्प फल

यह चार प्रकार का विचार शुक्ल ध्यानी के हृद
मे स्वभाव से ही सदा प्रणति में प्रणमता रहता हैं,
के प्रबल प्रभाव से उनकी आत्मा सर्व विभावों
प्रणती के सम्बन्ध रूप सें, निवृत, सर्व कर्म सें
क हो अत्यंत शुद्धता. परम पवित्र कों प्राप्त हो-
अक्षय अव्याबाध मोक्ष के सुख में तल्लीन रह

यह शुक्लध्यानीके ४ पाये, ४ लक्षण,
र ४ अनुप्रेक्षा, यों १६ भेदका

मैं एक अल्पज्ञ विषय कषायका सदन अनेकदुर्गुण करपूरित ऐसे गहन ध्यानका यथार्थ वर्णव करने अमसर्थ हूं क्यों कि शुक्लध्यान मेरें अनुभव के वाहिर है. मैंने जो कुछ लिखा है सो जिनोक्त सूत्र व कित्नेक ग्रंथों के अनुसार और कित्नेक स्थान सद्भाविक बौध रूपभी लेख आया है, इस लिये पाठक गणसे नम्र क्षमा याचता हूं. और ऐसीही क्षमा इस ग्रन्थकी सर्व अशुद्धीयों के लिये चाहता हूं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के महत मुनी श्री खुबा ऋषिजी महाराजके शिष्य आर्य मुनी श्री चैना ऋषिजी महाराज और उनके शिष्य बाल ब्रह्मचारी मुनी श्री अमोलख ऋषि जी रचित 'ध्यानकल्पतरू' ग्रन्थका शुक्लध्यान नामक चतुर्थ शाखा समाप्तं

ध्यान कल्पतरू समाप्तम्